भास तथा हर्ष के उदयन चरितात्मक रूपकों में नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालयीय
पी-एच०डी० (संस्कृत)
उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2004

शोध निर्देशक :-
डा० कैलाश नाथ द्विवेदी
एम०ए० साहित्याचार्य, साहित्यरत्न, पी-एच०डी०, डी०लिट्
(पूर्व प्राचार्य मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोंच, जालौन)
अजीतमल (औरैया) 206121

-: शोधकर्त्री :-
कु० प्रतिभा
एम०ए० (संस्कृत)
द्वारा डा० ओंकार प्रसाद त्रिपाठी
(सेवानिवृत्त हिन्दी प्राध्यापक)
अतर्रा, कालेज अतर्रा, बाँदा

डा0 कैलाशनाथ द्विवेदी
एम0ए0, पी0एच0डी0, डी0लिट्0, साहित्याचार्य, सा0रत्न0,
पूर्व प्राचार्य
मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, कोंच

☎ (05683) 284065
शास्त्रीनगर, अजीतमल
जनपद–औरैया (उ0प्र0)
पिनकोड– 212601

दिनांक :– 28. 12. 2004

प्रमाण – पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कु0 प्रतिभा ने मेरे निर्देशन में "भास तथा हर्ष के उदयन चरितात्मक रूपकों में नारी पात्रों का तुलानात्मक अध्ययन" शीर्षक शोध प्रबन्ध तैयार किया है। बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी के शोध अधिनियम के अर्न्तगत वांछित अवधि तक शोध छात्रा ने महाविद्यालय के शोध केन्द्र के अतिरिक्त मेरे सानिध्य में उपस्थित रहकर अपना शोध कार्य सम्पन्न किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कु0 प्रतिभा का मौलिक कार्य है। मै इसको मूल्यांकन हेतु अग्रसारित करता हुआ शोध छात्रा के उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामना करता हूँ।

(कैलाशनाथ द्विवेदी)
(शोध निर्देशक)

आत्मिकी

संस्कृत साहित्य अपनी नाट्य काव्य कृतियों की अक्षुण्ण निधि से समृद्ध है, जिसे महाकवि भास, अश्वघोष, कालिदास, हर्ष, भवभूति, राजशेखर आदि अनेक रससिद्ध रूपककारों ने युग युगान्तर के लिए अविनश्वर बना दिया है । प्राचीन संस्कृत नाट्य साहित्य में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका पर यथोचित प्रकाश डाला गया है । अधिकांश रूपकों में भारतीय नारी को आदर्श की पराकाष्ठा एवं सुन्दरता की देवी के रूप में प्रस्तुत किया गया है । उसके जीवन के सभी पहलुओं में आदर्श एवं सौन्दर्य झलकता है । प्राचीन भारतीय नारी की इस गौरवमयी परम्परा का वर्णन भास एवं हर्ष के प्रशंसनीय उदयन रूपकों में किया गया है । यद्यपि संस्कृत के समृद्ध रूपक साहित्य में नाटककार भास तथा हर्षवर्धन की नाट्यकृतियों पर पर्याप्त अध्ययन किया गया है, किन्तु लोकजीवन की व्यापक पृष्ठभूमि पर नारी पात्रों की तुलनात्मक भूमिका का नाट्य शास्त्रीय, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से अनुसंधान पूर्ण अध्ययन होना अभी अवशेष है । नाट्यशास्त्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अन्य विविध दृष्टियों से भास तथा हर्ष के उदयन चरित्रात्मक रूपकों में नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन करना ही मेरे शोध का उद्देश्य है, जिससे तत्कालीन समाज में नारी जीवन की भूमिका की गवेषणा कर समुचित मूल्यांकन किया जा सके । नाट्य शास्त्रीय आधार पर भास तथा हर्ष ने यद्यपि अपने रूपकों में वस्तु तथा पात्र योजना को साकार तथा सरस स्वरूप प्रदान किया है तथापि दोनों नाटककारों के चरित्र चित्रण एवं पात्र योजना विशेषतः नारी पात्रों के प्रस्तुतीकरण में पृथक–पृथक वैशिष्ट्य परिलक्षित होते हैं । नारी जीवन की परिपूर्णता की दृष्टि से लोक जीवन के विविध क्षेत्रों में चाहे सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक या सांस्कृतिक रहा हो, दोनों नाटककारों की अपनी मौलिक काव्यात्मक दृष्टि से गवेषणा की कसौटी पर इन नारी पात्रों का सम्बन्धित नाट्य ग्रन्थों प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, स्वप्नवासवदत्तम, रत्नावली, प्रियदर्शिका आदि के आधार पर अध्ययन करना सर्वथा समीचीन है । इसी दृष्टिकोण से भास तथा हर्ष के उदयन चरितात्मक रूपकों में नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना मेरे प्रस्तावित शोध प्रबन्ध का लक्ष्य है । प्रतिपाद्य विषय को मैंने इनके तुलनात्मक परिमित परिधि में ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । इनके तुलनात्मक अध्ययन के विश्लेषण में उन महत्वहीन सूक्ष्म विवरणों को छोड़ दिया है जो उपविभाजन और वर्गीकरण की दृष्टि से भी रोचक प्रतीत नहीं होते हैं । भास तथा हर्ष की रचनाओं में से कतिपय प्रकारात्मक रोचक एवं महत्वपूर्ण उद्धरण तुलनात्मक विवरण के लिए स्थान–स्थान पर अवतरित किये गये हैं । इस शोध ग्रन्थ में नारी की विभिन्न अवस्थाओं – पहलुओं का विशद, सूक्ष्म एवं सरल भाषा में विश्लेषण किया गया है ।

हमारा सम्पूर्ण अध्ययन आठ अध्यायों में विभाजित है । प्रथम अध्याय में नाट्य शास्त्रीय दृष्टि नारी पात्रों की भूमिका का अवलोकन किया गया है । नाटक की नायिकाओं तथा नायिका की सखियॉ एवं सेविकाओं पर इसमें प्रकाश डाला गया है । नायिकाओं के सात्विक यौवनालंकारों । यत्नज एवं अयत्नज । का सूक्ष्म निरीक्षण भी इसमें किया गया है साथ ही नाटकों में नारी पात्रों की अभिनेयता पर भी एक दृष्टि डाली गयी है ।

द्वितीय अध्याय में सामाजिक जीवन में नारी की गतिविधियों का चित्रण किया गया है । नारी के विविध रूपों कन्या, सहचारिणी, मॉ, भगिनी, प्रेयसी, पत्नी, सखी आदि तथा खान–पान, पर्दा प्रथा, संस्कार, विवाह आदि का विशद वर्णन है ।

तृतीय अध्याय में नाटकों में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर नारी पात्रों की भूमिका का विश्लेषण किया गया है । इसमें यज्ञादि विधि धार्मिक कियायें, सांस्कृतिक समारोह एवं नारी के आध्यात्मिक दृष्टिकोण की व्याख्या की गयी है ।

चतुर्थ अध्याय में ललित कलाओं के क्षेत्र में नारी पात्रों का नाटकों में स्वरूप अंकित है । विशेष रूप से संगीत, चित्रकला, कार्य साहित्य तथा शिल्पादि का वर्णन किया गया है ।

पंचम अध्याय में नारी वेशभूषा, प्रसाधन एवं अलंकारों का तुलनात्मक अध्ययन चित्रित है । इस अध्याय में नारी के वस्त्र, प्रसाधन एवं अलंकारों को चित्रित किया गया है ।

षष्ठ अध्याय में नारी की मनोवैज्ञानिक दृष्टि पर प्रकाश डाला गया है । विशेष रूप से नारी के काम, कोध, सम्मोह, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, उन्माद, उद्वेग, स्वप्न, स्मृति, मूर्च्छा, परिकल्पना आदि मनोवैज्ञानिक गतिविधियों का विश्लेषण हमने किया है ।

सप्तम अध्याय में जीवन के अन्य विविध राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में नारी पात्रों की भूमिका का अध्ययन किया गया है ।

उपसंहार में हमने अपने शोध अध्ययन के महत्वपूर्ण निष्कर्षो पर दृष्टि डालते हुए शोध निष्कर्षो का मूल्यांकन किया है ।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ को सम्पन्न करने में मैंने संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य लेखकों की कृतियों की सहायता ली है । उनके प्रति मैं हृदय से श्रद्वा सुमन अर्पित करती हूॅ । मैं उन सभी विद्वानों, गुरूजनों तथा आत्मीय जनों के प्रति आभार व्यक्त करती हूॅ जिनके विचारों, सुझावों तथा दिशा निर्देशों से इस कार्य को सम्पन्न करने में सफलता प्राप्त हुई है । विशेष रूप से पितृतुल्य स्नेह देने वाले पूज्य गुरूवर डा0 कैलाश नाथ द्विवेदी को मैं नमन करती हूॅ जिनके विद्वत्तापूर्ण निर्देशन, निरीक्षण, निरन्तर सहयोग एवं आशीर्वाद से मैं इस ग्रन्थ को पूरा कर सकी । डा0 ओंकार प्रसाद त्रिपाठी निवर्तमान रीडर एवं प्राध्यापक हिन्दी, प्रो0 राजाराम दीक्षित संस्कृत विभागाध्यक्ष पोस्ट

ग्रेजुएट कालेज अतर्रा तथा डा0 राम औतार त्रिपाठी पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष पं0 जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय बॉदा अपने पूज्य पिता श्री महेश प्रसाद शुक्ल संस्कृत प्रवक्ता, माता जी श्रीमती शैलेन्द्र कुमारी के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करना चाहती हूँ, जिनकी प्रेरणा व प्रोत्साहन के बिना इस कठिन मार्ग पर अग्रसर और डटे रहना मेरे लिए असम्भव होता । उन्होनें समय – समय पर शोध सामग्री देकर मेरी अमूल्य सहायता की ।

इस पुनीत अवसर पर मैं अपनी पूजनीया नानी श्रीमती फूलमती देवी को कभी नहीं भूल सकती हूँ, जिन्होनें इस शोध ग्रन्थ को पूर्ण करने में अहर्निश प्रोत्साहित किया इस अवसर पर अपनी अनुजा कु0 प्रतिमा को कैसे भूल सकती हूँ, जिसकी मीठी बोली ने मुझे नवीन स्फूर्ति प्रदान की है ।

प्रतिभा
(प्रतिभा)

विषयानुक्रम

पृष्ठ संख्या

भूमिका

विषय - प्रवेश

विषय-प्रवेश

भूमिका -

रत्नगर्भा भारत–भूमि में अनेक रत्न भरे–पड़े हैं, जो यदा–कदा प्रस्फुटित होकर अपनी ज्योतिर्मयी आभा से संसार को आलोकित करते हैं, उन्हीं रत्नों में से श्रेष्ठ रत्न द्वय महान नाटककार भास एवं हर्ष हैं । जिन्होनें अपने नाटकों के द्वारा संस्कृत नाट्य को कृतकृत्य कर दिया है ।

अति पुरातन काल से ही हमारे अशेष जनजीवन पर जिसका प्रभूत मात्रा में प्रभाव पड़ा तथा सम्पूर्ण भारतीय साहित्य एवं संस्कृति जिससे पूर्णतया अनुप्राणित हैं, वह संस्कृत भाषा एवं साहित्य ही इस महान देश की अनुपम निधि है । अपने अपार शब्द एवं अर्थ के मंजुल सामंजस्य को संजोए हुए संस्कृत–साहित्य सामाजिक विषयों की ज्ञान–वृद्वि एवं रसानुभूति को दृष्टि में रखते हुए अनेक काव्यात्मक विधाओं से विलसित है, जिनमें काव्य सहृदय संवेद्य प्रधानतः श्रव्य तथा दृश्य दो रूपों में दृष्टिगत होता है ।

सामान्यतः श्रव्य काव्य में बुद्वि तथा हृदय का सम्बन्ध श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा होकर सुनने या पढ़ने मात्र से सहृदय को अमन्द आनन्दाभूति होती है, जब कि दृश्य काव्य में पात्रों के सरस संवाद सुनने के साथ ही उनकी अभिनयात्मक आंगिक चेष्टाओं को रूपात्मक रूप में नेत्रों से देखकर आनन्दानुभव किया जाता है । यही दृश्य काव्य ही रूपक कहा जाता है, जो नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, वीथी, अंक, प्रहसन 10 भेदों से रसाश्रित होता है।

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।

व्यायोग समवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति ।।[1] (दशरूपक 1/11)

संस्कृत के समस्त रूपक या नाट्य साहित्य को वस्तुतः भारतीय वाङ्मय की उत्कृष्टम साहित्यिक सिद्धि कह सकते हैं, क्यों कि विविध प्रकार के पात्रों के सर्वांगङ अभिनय

आंगिक वाचिक, सात्विक, आहार्य से रूपक में उत्कृष्ट रसानुभूति सहृदय को होती है । इसीलिए "काव्येषु नाटकं रम्यं" कहा जाता है ।

यह नाट्यवेद ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद के रसतत्व से युक्त था ।[2]

संस्कृत नाट्य साहित्य का उद्‌भव एवं विकास -

पौरस्त्य परम्परा नाट्य की उत्पत्ति बृम्हा द्वारा रचित नाट्यवेद से प्रमाणित करती है जिसका भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के माध्यम से इस संसार में प्रचार किया था ।

---

1. नाटकमथ प्रकरण भाण व्यायोग समवकारडिमाः ।

   ईहामृगांकवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ।। (दशरूपक) 1/11 की भूमिका पृ0 25

2. नाट्यशास्त्र 1/17 जग्राह पाठयं ऋग्वेदात सामेभ्यो गीतमेव च ।

   यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ।।

किन्तु नाटक के प्रधान अंगों संवाद, संगीत, नृत्य, अभिनय को ध्यान में रखते हुए विद्वानों ने वैदिक साहित्य का अनुसंधान कर ऋग्वेद के कतिपय संवाद सूक्तों में नाटकीयता पाकर उन्हें उत्पत्ति स्त्रोत स्वीकार [1] किया है, जिनमें यम–यमी संवाद । ऋक0 10/10 । उर्वशी पुरूरवा । ऋग 010/95 । तथा सरमापाणि । ऋग 0 10/108 । जैसे संवादात्मक सूक्त महत्वपूर्ण हैं जो कालान्तर में परिष्कृत एवं परिमार्जित होकर विक्रमोर्वशीयम् जैसे नाटकीय कृतियों में परिणत हुये होगें ।

मनीषी हिलेब्राण्ड, कोनो, कीथ[2] आदि पाश्चात्य विद्वानों ने वैदिक अनुष्ठानों के अभिनयात्मक क्रियाकलापों को नाटकों के उद्भव–स्त्रोत को माना, किन्तु यह मत पूर्णतया निभ्रान्त नहीं कहा जा सकता है ।[3] वैदिक कर्मकाण्ड से धार्मिक नृत्यों (जिनमें मूक आंगिक अभिनय समाविष्ट था) को नाट्योद्भव का एक हेतु माना जा सकता है । इस प्रकार वैदिक साहित्य नाटक के मूल तत्वों से युक्त होकर नाट्योत्पत्ति विशेष आधारोन्मुख रहा ।

रामायण – महाभारत नाटक एवं उसके कुछ तत्वों का उल्लेख प्रस्तुत करते हैं। रामायण में नट, नर्तक, नाटक, रंग, कुशी लव आदि शब्द नाटकों के पूर्व अस्तित्व को परिपुष्ट करते है। [4]

धार्मिक यात्राओं, महोत्सवों आदि का भी नाट्योत्पत्ति पर कुछ प्रभाव परिलक्षित होता है, जिनमें मनोरंजनार्थ राम–कृष्ण की नाट्यपूर्ण लीलायें अभिनीत होती हैं । [5]

1. A Macdonall, " A History of Sanskrit Literature" Delhi 1985, P. 292
2. संस्कृत ड्रामा, संस्कृत नाटक, अनु0 उदयभान सिंह, दिल्ली, 1965 पृ0 8–9
3. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डा0 कैलाश नाथ द्विवेदी, इटावा 1971, पृ0 66
4. महाभारत – सभापर्व 33/51
5. संस्कृत नाटक कीथ, अनु0 उदयभानु सिंह, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ0 46, 54

डा० पिशेल के द्वारा कठपुतलिका नृत्य से तथा कोनों जैसे विद्वानों के द्वारा नाटकों के प्रभाव से नाटकों की उत्पत्ति की सम्भावना करना समीचीन प्रतीत होता है । पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी[1] में "नटसूत्र" का उल्लेख कर नाटकों की पूर्ववर्तिता को प्रमाणित करते हुए हमें निश्चित परिणाम पर पहुँचाया है । पंतजलि के महाभाष्य[2] में भी "बालिबध" तथा "कंसबध" नाटकों का प्राचीन प्रामाणिक कृतियों के रूप में उल्लेख है । इसके अतिरिक्त नाट्यशास्त्र में वर्णित पुरातन प्रेक्षागृहों के अनुरूप 300 ई० पूर्व भी प्राचीन नाट्यशाला छोटा नागपुर की पहाड़ियों में "सीता बेंगा" गुहा में प्राप्त हुई है ।

वैदिक काल से लेकर परवर्ती पुराणेतिहास काव्यकाल तक लोक गीतों, नृत्यों एवं धार्मिक समारोहों से नाट्यकला ग्रहण करता हुआ अनेक शताब्दियों के कमिक विकास को नाट्य साहित्य में संजोये हुए हैं । संस्कृत के अन्य अग्रणी नाट्यरत्नों में मूर्धन्य नाटककार भास एवं हर्ष ने संस्कृत के कुछ रूपक एक ही कथानक पर पुरातन एवं मध्यकाल में लिखे है। जिसमें समय का लेखनी पर प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । नारी पात्रों के इन रूपकों पर छायी हुई है इनके चरित्र के विविध पहलुओं का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है । शोध के पूर्व संस्कृत के इन सुशोभित साहित्य रत्नों का स्मरण उल्लेखनीय है । इनके जीवन का गहन एवं सूक्ष्म अवलोकन अपेक्षित है –

भास -

संस्कृत के प्रवर्तक नाटककारों में भास अग्रगण्य है। इनकी लेखनी में कालिदास प्रभृति परवर्ती नाटककारों पर प्रभूत प्रभाव परिलक्षित होता है । महाकवि कालिदास ने "मालविकाग्निमित्रम्" की प्रस्तावना में भास का प्रतिष्ठित पूर्ववर्ती नाटककार के रूप में उल्लेख किया है । कालिदास के समान भवभूति भी भास से कम प्रभावित प्रतीत नहीं होते । अनेक

अपाणिनीय आर्ष प्रयोगों तथा पुरातन वातावरण को अपनी कृतियों में प्रस्तुत करने के कारण भास कालिदास के पूर्ववर्ती एक प्राचीन श्रेष्ठ नाटककार सिद्व होते हैं ।

1— अष्टाध्यायी 4/3/110

2— महाभाष्य 3/2/111

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र 10/3 में प्रतिज्ञायोगन्धरायण के एक श्लोक को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है, जिससे कौटिल्य के पूर्ववर्ती भास चतुर्थशती ई0पू0 के पश्चात नहीं हो सकते । भास के नाटकों का सामाजिक चित्रण निःसन्देह छठी शती ई0पू0 से चतुर्थ शती ई0 पूर्व तक के भारत का तथा नाटकों का भरत वाक्य भी किसी नन्द राजा को संकेतित करता है । अतः अन्तः एवं वाह्य प्रमाणों के आधार पर भास चतुर्थ शती ई0पूर्व के नाटककार सिद्व होते हैं ।

1910 ई0 तक यूरोप में भास के किसी भी नाटक का अस्तित्व अज्ञात था । 1912 ई0 में जाकर तेरह नाटकों की माला का पहला नाटक टी0 गणपति शास्त्री के संपादकत्व में प्रकाशित हुआ । अन्वेषक ने उसका श्रेय उस कवि भास को दिया, तथापि लेखक के विषय में वे नाटक स्वयं मौन है।, इस तथ्य के कारण उनके उद्गम स्थान का निश्चय करने के लिये यत्नपूर्वक अनुसंधान आवश्यक हो गया । अभी तक प्रस्तुत किये गये प्रमाण पूर्णतः सन्तोषजनक नहीं हैं ।

प्रकाशन के पहले हम भास के विषय में जो कुछ जानते थे वह उनकी उत्तम ख्याति मात्र थी । अपनी पहली कृति "मालविकाग्निमित्रम" में कालिदास उस कला के क्षेत्र में अपने महान पूर्ववर्तियों के रूप में सैमिल्ल कविपुत्र आदि के साथ भास का उल्लेख करते हैं जिनके यश के आगे एक नौसिखिये लेखक की कृति का अभिनन्दन कठिन है । सातवीं शती के आरम्भ में बाण का कथन है कि अनेक भूमियों वाली और पताका–युक्त मन्दिरों का निर्माण करने वाले वस्तुशिल्पी की भॉति भास ने सूत्रधार के द्वारा आरब्ध, बहुत भूमिकाओं । पात्रों । वाले और पताकायुक्त अपने नाटक से यश प्राप्त किया ।[1] इस पर से यह सिद्व करना अविवेकपूर्ण होगा कि इन विषयों में भास ने नूतनरीति का प्रवर्तन किया; अन्ततः बाण को अपेक्षित है भास के यश का कीर्तन और एक उपनाम से । जो बहुत नहीं है । श्लिष्ट पदों द्वारा उपमा देकर विद्वता का प्रदर्शन एक शताब्दी बाद वाक्पति ने ज्वलनमित्र, भास रघुवंशकार,, हरिश्चन्द्र, सुबंधु और राजशेखर[2] में अपनी प्रीति प्रकट की है ।

राजशेखर में लगभग 900 ई0 । उन्हें प्रतिष्ठित करने में स्थान देते हैं और उनके एक श्लोक में विचित्र घटना अंकित है । आलोचकों ने भास के नाटक चक्र को परीक्षा के लिये आग में डाल दिया,

1. हर्षचरित – Inv. V - 16x

2. गौडवह – 800

स्वप्नवासवदत्ता को आग न जला सकी[1] "श्लोक में द्व्यर्थकता है । आश्चर्य है कि प्रोफेसर क़ोनो[2] ने इसकी उपेक्षा की है । यह श्लोक अवश्य ही भास के अन्य नाटकों से स्वप्नवासवदत्ता की उत्कृष्टता सूचित करता है । प्रकाशित नाटक इस तथ्य का पूर्णतः समर्थन करते हैं परन्तु यह एक उत्पत्ति की ओर भी इंगित करता है । नाटक में ही आग की चर्चा है, जो राजा के नये विवाह को सम्भव बनाने के लिये मंत्री द्वारा कल्पित की गई थी और वह उपयुक्त वही है कि जिस प्रकार वह आग रानी को नहीं जला सकी, उसी प्रकार नाटक की परीक्षा की आग उसे अभिभूत करने में असमर्थ रही। यह उक्ति वाक्पति के ज्वलनमित्र पद पर आवश्यक प्रकाश डालती है। भास ने अपने नाटकों में आग का प्रायः उल्लेख किया है, इस कारण से इसको अभिप्राय रहित नहीं बना देना चाहिये।

बिना किसी ननुनचि के यह मान लिया जाना चाहिये कि ये तथ्य नाटकों की प्रामाणिकता के अत्यन्त अनुकूल हैं। समग्ररूप से वे स्पष्ट ही एक महान लेखक की कृतियॉ है। प्रविधि में वे कालिदास के नाटकों की अपेक्षा कम परिष्कृत हैं। उनकी प्राकृत कालिदास की रचनाओं या मृच्छकटिकम की प्राकृत की अपेक्षा स्पष्ट रूप से पूर्वकालिक हैं। स्वप्नवासवदत्ता निस्संदेह सर्वोत्तम है, इससे वाक्पति और राजशेखर के उल्लेखों की व्याख्या हो जाती है। सूत्रधार के द्वारा नाटकों के आरम्भ के विषय में बाण का कथन नाटकों से प्रमाणित है, अलंकार शास्त्रियों से भी पर्याप्त साक्ष्य ग्रहण किया जा सकता है। भामह जिनका समय आठवीं शती ई0 का आरम्भ हो सकता है। प्रतिज्ञायौगन्धरायण की तीव्र आलोचना करते हैं। वामन आठवीं शती में उस नाटक स्वप्नवासवदत्ता और चारूदत्त से उद्धरण देते हैं। अभिनवगुप्त। लगभग 1000 ई0। स्वप्नवासवदत्ता का दो बार नाम लेते है, और चारूदत्त का उल्लेख करते हैं। ये निर्देश स्वतः निर्णायक नहीं है क्योंकि केवल उद्धरण देने या पर्यालोचन करते समय भी वे उन नाटकों के रचयिता के रूप में भास का उल्लेख नहीं करतें, किन्तु उनसे सूचित

1— चन्द्रधर गुलेरी, IA,X/11-52 PP

2— I.D.P.S.T. भास नाटक चक्र की एक ही नाटक समझकर उन्होनें भी भूल की है।

होता है कि आलोचकों को इन नाटकों की जानकारी थी और वे इन से उद्धरण देने को प्रस्तुत थे। इसका अर्थ यह है कि वे इस मत को स्वीकार करते थे कि ये नाटक एक महान लेखक द्वारा प्रणीत हैं। भास को स्वप्नवासवदत्ता का कर्ता बतलाया गया है। यदि अन्तः साक्ष्य का समर्थन प्राप्त हो तो उन्हें शेष नाटकों का रचयिता मानने का अधिकार हमें मिल जाता है। ऐसा साक्ष्य उपलब्ध है, भास के कर्तृत्व में संदेह करने वालों के द्वारा भी यह अस्वीकार नही हैं। उनकी प्रविधि में, प्राकृतों में, छंद में, और शैली में समरूपता हैं। अंततः चारूदत्त का साक्ष्य है। यह निःसन्देह और स्पष्टतया मृच्छकटिकम् आदि का रूप हैं। अतएव इससे यह सिद्ध होता है कि भास के नाटक उस कृति की अपेक्षा प्राचीनतर हैं जो वामन को भली –भॉति विदित थी, और जो निश्चय ही बहुत प्राचीन हैं।

प्रामाणिकता के विरूद्ध दिये गये सब तर्क अनिश्चायक हैं। उनका आधार यह तथ्य है कि जहॉ तक नाटक के आमुख के रूप का प्रश्न है, सातवीं शती ई० के महेन्द्र विक्रमवर्मा के मत्तविलास रूपक में वे ही विशेषताएं दिखाई देती हैं जो भास के नाटकों में पाई जाती हैं । दूसरा आधार यह सुझाव है कि राजसिंह का उसी नाम के दाक्षिणात्य राजा । लगभग 675 ई0 । से तादात्म्य होना चाहिए। यह साक्ष्य स्पष्ट ही अपर्याप्त है । भास का यश उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में अधिक फैला हुआ था, क्योंकि वहॉ की जननाट्य या रंगशालाओं में भास के एक नाटक का एक दृश्य खण्डित रूप में बच रहा है, यह समझना आसान है कि सातवीं शताब्दी के कारण बहुत आंशिक हैं । नाटककार व नाटक के नाम के त्याग का अनुसरण नहीं किया गया है । यह बात का निश्चित संकेत है कि मत्तविलास बहुत बाद की रचना है । उक्त राजा की अभिन्नता के सम्बन्ध में किये गये

निवर्तक में प्रामाणिक बल नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि राजसिंह शब्द जानबूझकर अस्पष्ट रखा गया है ।

यह बात ग्रंथकार के अपने नाम और अपने नाटक के नाम के विषय में मौन के अनुरूप ही हैं । तात्कालिक वस्तुस्थिति को बीच में लाना असंगत है, और इसीलिये इसकी अपेक्षा की गयी है ।

इनके अतिरिक्त डा0 कुन्दन राजा "वीणा वासवदत्ता" को तथा पं0 कालिदास शास्त्री "यज्ञफलम्" को भास की रचना मानते हैं, किन्तु इन्हें इनकी मौलिक रचना नहीं कहा जा सकता ।

अश्वघोष -

महाकवि अश्वघोष बौद्ध कवियों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । ये राजा कनिष्क (78ई0) के गुरू और राजदरबारी कवि थे । इनका जन्म स्थान साकेत (अयोध्या) था । इनकी माता का नाम सुवार्णाक्षी तथा जाति ब्राह्मण थी । ये महाकवि के साथ ही साथ भदन्त, आचार्य, महावादी आदि उपाधियों से विभूषित थे ।

आर्य सुवार्णाक्षीपुत्रस्य साकेतस्य भिक्षोराचार्यस्य भदन्ताश्वघोषस्य महाकवेर्वादिनः कृतिरियम् - सौन्दरनन्द । ऐसा लगता है कि ये पहले वैदिक धर्मानुयायी रहे और बाद में बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर बौद्धधर्मानुयायी हो गये । चीनी यात्री इत्सिंग ने अपनी भारत यात्र के अवसर पर अश्वघोष की ख्याति के विषय में लिखा है ।

शूद्रक -

महाकवि शूद्रक प्रसिद्ध प्रकरण रत्न "मृच्छकटिक" के प्रणेता माने गये हैं । शूद्रक के समय के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है । इनके मृच्छकटिक प्रकरण पर भासकृत चारूदत्त नाटक का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है ।

आचार्य वामन ने अपने ग्रन्थ में इसकी चर्चा की है । भास का समय 400 ई0 पूर्व ठहरता है और वामन का 800 ई0 के लगभग सिद्ध होता है । इस तथ्य के आधार पर कतिपय विद्वान "मृच्छकटिक" का रचनाकाल पंचम शताब्दी ईस्वी के लगभग मानते हैं किन्तु अधिकांश विद्वानों का विचार हैं किं मृच्छकटिक की रचना भास के पश्चात हुई और उसका प्रभाव कालिदास पर है, अतएव शूद्रक का समय तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व रहा होगा ।

महाकवि हर्ष -

भारतवर्ष के विशाल इतिहास के अनुशीलन से पता चलता है कि इस देश को विभिन्न कालों में हर्ष नामधारी छः विभिन्न व्यक्ति विभूषित करते थे उनका विवरण इस प्रकार है –

क– संस्कृत – साहित्य के प्रख्यात महाकाव्य नैषधीयचरित के रचयिता का नाम श्री श्रीहर्ष है । वे 12 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपनी विद्वत्ता से कन्नौज के अधिपति जयचन्द की सभा को अलंकृत करते थे । उन्होनें अपने महाकाव्य की सर्ग पर अपने अन्य कृतियों का उल्लेख किया है किन्तु रत्नावली, प्रियदर्शिका तथा नागानन्द का नामोल्लेख उन्होनें नहीं किया है । अतः यह तीनों कृतियाँ उनकी नहीं हैं । इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह भी है कि यह श्री हर्ष राजा नहीं थे । उक्त नाटकों के रचयिता श्री हर्ष राजा थे ।

ख– काव्य प्रकाश प्रदीप के लेखक गोविन्द ठाकुर के छोटे भाई का भी नाम श्री हर्ष था। यह बड़े अच्छे विद्वान थे जैसा कि उनके बड़े भाई ने लिखा है । ये 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मौजूद थे । यह भी राजा या सम्राट नहीं थे ।

ग– धारा नगरी के प्रसिद्ध शासक भोज के पितामह मुञ्जराज के पुत्र का नाम भी हर्ष था । मुञ्ज का शासनकाल दसवीं शताब्दी का अन्तिम चरण 974–94 ई0 माना गया है ।

घ— काश्मीर के एक शासक का भी नाम श्रीहर्ष था । इसका शासनकाल 11 वीं शताब्दी है । प्रसिद्ध इतिहासकार विल्सन इन्हीं को रत्नावली का रचयिता मानते हैं । किन्तु ये कवि थे इनमें कविता शक्ति थी, इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं उपलब्ध होता ।

ङ— कुछ लोगों का यह भी मत है कि द्वितीय शताब्दी के श्री हर्ष विक्रमादित्य ही रत्नावली के रचचिता हैं ।[1] भास । धावक । इन्हीं का सभाकवि था । यहाँ यह ध्यान रखना है कि हर्ष विक्रम संवत्सर के प्रवर्तक विक्रमादित्य से भिन्न है ।

च— कन्नौज तथा थानेश्वर के शासक हूण—हरिण—केशरी प्रभाकरवर्द्धन के द्वितीय पुत्र भी श्री हर्ष थे । बाण इन्हीं के सभा पण्डित थे ।

इनमें कौन हर्ष रत्नावली के रचयिता हैं — इस पर विचार किया जायेगा । रत्नावली के रचयिता के रूप में अधिकांश स्थलों पर हर्ष का राजा के रूप में उल्लेख हुआ है ।[2] अतः ऊपर निर्दिष्ट प्रथम दो हर्ष रत्नावली के रचयिता नहीं हो सकते क्योंकि वे दोनों ही राजा नहीं थे । अब अवशिष्ट तीन के विषय में विचार करना बाकी है । प्रसिद्ध इतिहासकार विल्सन का मत है कि काश्मीराधिपति हर्ष ही रत्नावली के रचयिता हैं । इनका शासनकाल 12वीं शताब्दी है ।

---

1. दृष्टव्य — रत्नावली की भूमिका, लेखक शारदारञ्जनराय ।
2. दृष्टव्य — दामोदर गुप्त कृत "कुट्टनीमतम्" ।

किन्तु भोजराज के "सरस्वतीकण्ठाभरण" में रत्नावली के श्लोक उद्धृत हैं। भोजराज काश्मीराधीश श्री हर्षदेव के पितामह अनन्तदेव के समसामयिक थे। अनन्तदेव का समय ईस्वी सन 1065 के आस–पास माना जाता है। ऐसी अवस्था में काश्मीराधीश को रत्नावली का रचयिता कैसे माना जा सकता है ? इसके अतिरिक्त दशरूपक (दशम ईस्वी का अन्तिम भाग तथा एकादश ईस्वी का प्रारम्भ) तथा दामोदर गुप्त के कुट्टनीमतम् 1800 ईस्वी में भी रत्नावली के उद्धरण दिये गये हैं। अतः यह पूर्ण निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि काश्मीराधिपति भोजराज रत्नावली के रचयिता नहीं हो सकते। विल्सन का मत भ्रामक है इन्हीं कारणों से मुञ्जराज के पुत्र श्री हर्ष भी रत्नावली के रचयिता नहीं हो सकते। मुञ्जराज का काल दशम ईस्वी का अन्तिम चरण । 074 – 94 ई0 । माना गया है।

अब पॉचवें और छठे श्री हर्ष के विषय में विचार करना बाकी है। ऊपर पॉचवे स्थान पर वर्णित हर्ष विक्रमादित्य भी रत्नावली आदि के रचयिता नहीं हो सकते। यदि इन्हें इसका लेखक माना जाये तो अन्य लोगों की तरह कालक्रम की गड़बड़ी इनके साथ नहीं हो सकती। निश्चय ही इन नाटकों का उद्धरण करने वाले व्यक्तियों से ये काफी प्राचीन हैं किन्तु इनके कवि या लेखक होने के विषय में कोई प्रमाण नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि यदि ये रत्नावली आदि के लेखक कवि थे, तो इनके समय के बाद में होने वाले कालिदास तथा बाण आदि महाकवियों ने अन्य यशस्वी कवियों के साथ इनके नाम का उल्लेख नहीं किया। इससे इतना निश्चय है कि ये हर्ष के नाम के साथ उपलब्ध ग्रन्थों के लेखक नहीं हैं।

उपर्युक्त विवरण से इतना निश्चय हो जाता है कि रत्नावली की प्रस्तावना में[1] जिस श्री हर्ष का नाम इसके रचयिता के रूप में दिया गया है वे कन्नौज तथा थानेश्वर के

अधिपति हूणहरिण केशरी प्रभाकरवर्द्धन के पुत्र महाराज हर्षवर्द्धन हैं, जिन्हें शीलादित्य के नाम से भी जाना जाता था ।

श्री हर्ष प्रभाकरवर्द्धन तथा योगमती के पुत्र थे । इनके बड़े भाई राज्यवर्द्धन इनमें पाँच वर्ष बड़े तथा बहन राज्यश्री दो वर्ष छोटी थी । इनका जन्म 590 ईस्वी के आस–पास हुआ था । राज्यश्री का विवाह कन्नौज के राजा अवन्तिवर्मन

1– दृष्टव्य – रत्नावली की भूमिका, ले0 शारदारञ्जनराय पृ0 6

के पुत्र गृहवर्मन् के साथ हुआ था । प्रभाकरबर्द्धन की मृत्यु के बाद राज्यवर्द्धन राजगद्दी पर बैठा, किन्तु दुर्भाग्यवश गद्दी पर बैठते हुये उसे विपत्तियों का सामना करना पड़ा । प्रभाकरबर्द्धन की मृत्यु का समाचार सुनकर दुर्वत्त मालवनरेश ने कन्नौज के शासक गृहवर्मा पर चढ़ाई कर दी, । युद्व में गृहवर्मा मारा गया । उसकी पत्नी राज्यश्री वन्दिनी बनाकर जेल में डाल दी गई । इस समाचार के मिलते ही युवक शासक राज्यवर्द्धन तिलमिला उठे । उन्होनें राज्य का प्रबन्ध अपने छोटे भाई हर्षवर्द्धन को सौंप कर मालवाधीश पर चढ़ाई कर दी । युद्ध में मालवाधीश मारा गया किन्तु मालवाधीश के मित्र, बंगाल के राजा शशांक ने धोखा देकर मार्ग में ही राज्यवर्द्धन का बध कर दिया । जब यह समाचार हर्षवर्द्धन को मिला तो वह घबड़ाये नहीं । उन्होनें धैर्य से काम लिया । सर्वप्रथम उन्होनें जाकर बहन राज्यश्री का उद्धार किया । जो जेल से भागकर विन्ध्य के जंगल में चिता पर जलने की तैयारी में थी । उन्होनें यथासमय शशांक का भी वध कर अपने भाई की हत्या का समुचित बदला चुकाया ।

राजगद्दी पर बैठने के कुछ ही वर्षो के भीतर हर्ष ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत को अपने राज्य में मिलाकर एक सूत्र में आबद्ध किया । समूचे उत्तरी भारत का शासक कहे जाने पर महत्वाकांक्षी हर्षवर्द्धन की कामना समूची भारत वसुन्धरा का एकछत्र सम्राट बनने की हुई । फलतः उन्होनें 620 ई0 के आस–पास सुदूर दक्षिण –भारत पर भी चढ़ाई की । किन्तु परम प्रतापी चालुक्य वंशी पुलकेशिन द्वितीय ने नर्मदा के दक्षिण से हर्ष को उखाड़ फेंका । हर्ष के जीवन की यह सबसे अधिक जबरदस्त हार थी । इसके बाद कदाचित हर्ष ने भारत के एकछत्र सम्राट बनने की कल्पना छोड़ दी । हर्ष ने अपने राज्यारोहण । 606 ई0 । के काल से अपने नाम एक नये संवत्सर का प्रवर्तन किया था ।

पुलकेशिन द्वितीय से हार जाने के बाद हर्ष ने दूसरा आक्रमण नहीं किया । अप्नी हेकड़ी प्रदर्शित करने की भूल न की, उन्होनें अब शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने का

निश्चय कर लिया था । कदाचित बहन राज्यश्री के प्रभाव से हर्ष ने इसी काल में किसी समय बौद्ध धर्म को स्वीकार करने, उसके प्रचार आदि में योगदान किया था । महाकवि बाण के कथनों से यह भी निर्दिष्ट होता है कि हर्ष ने विवाह नहीं किया था "गृहीतब्रम्हचर्यमालिडि.तं सरस्वत्याः । "

"स्त्रीपर इति सरस्वत्या" । द्वितीय उच्छवास । यही कारण है कि उसकी सन्तनि चर्चा कहीं नहीं मिलती ।

हर्ष के समय में ब्राह्मण धर्म तथा बौद्ध धर्म एक दूसरे के प्रतिपक्षी तथा विनाशक न थे । हर्ष स्वयं धर्म के विषय में स्वेच्छ्या दीक्षित हो जाते थे । हर्ष शिव तथा विष्णु का भी आदर करता था । बौद्धों के साथ ही वह शिव तथा विष्णु के उपासक ब्राह्मणों को भी सहस्त्राधिक मुद्रा तथा प्रचुर सम्पत्ति दान में देता था । बौद्ध धर्म स्वीकार करने के पूर्व वह स्वयं शैव था । ह्वेनसांग का कहना है कि हर्ष अपनी युवावस्था के बाद बौद्ध हुआ था । वह पॉच वर्ष में एक बार अना सब कुछ दान कर देता था।

अन्य भारतीय राजाओं की भांति हर्ष भी अनेक कवियों का आश्रयदाता था। विश्वविश्रुत कादम्बरी के रचयिता महाकवि बाण इसकी सभा की कविलड़ी के मध्यमणि थे। मयूर तथा मातंग दिवाकर आदि कवि अपनी प्रतिभा की पूरी चमक—दमक के साथ हर्ष की राजसभा को आलोकित और सरस बनाते थे ।[1] आचार्य मम्मट के "काव्य प्रकाश" के अनुसार महाराज हर्ष ने धावक अथवा बाण की काव्य कला से सुप्रशन्न हो उन्हें पर्याप्त धन दिया था । सोड्ढल ने अपनी अवन्ति सुन्दरी कथा में हर्ष के इसी कवितानुराग की प्रशंसा करते हुए लिखा है –

श्री हर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु
नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु ।
श्री हर्ष एष निजसंसदि येन राज्ञा
सम्पूर्णतः कनककोटिशतेन बाणः ।।

हर्ष बड़े–बड़े महाकवियों का केवल आश्रयदाता ही नहीं था, अपितु वह स्वयं भी एक महाकवि था । वीरता, लक्ष्मी के साथ ही वह सरस्वती का भी कृपापात्र था । उसकी सभा का महारत्न बाण अपने हर्षचरित नामक ग्रन्थ में हर्ष की काव्य–प्रतिभा का अनेकशः उल्लेख करता है।[2] बाण के अतिरिक्त

1– अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातंग दिवाकरः ।

श्री हर्षस्याभवत सभ्यः समो बाणमयूरौः ।। । राजशेखर ।

2– राज्ञां सम्भाषणेषु परित्यक्तमपि मधु वर्षन्तम्, काव्यकथास्वपीतमप्यमृत मुद्धमन्तम, श्रीसरस्वत्योकरोवदनोप भोगविभागसूत्रेणैव .... हारदण्डेन परिवलितकन्धरम्।" प्रज्ञालोकमिवदर्शयन्तम् । मुखनिवासिनी सरस्वतीं दधानम्। चूणामणिरोचिषा सरस्वतीर्ष्याकुपित लक्ष्मी प्रसादलग्नेनचरणालक्तकेनेव लोहितायत ललाटतटम्। स्त्रीपर इति सरस्वत्याः । संगीतगृहमिव सरस्वत्याः । अस्य .... प्रज्ञाया शास्त्राणि, कविवतस्य वाचः .... न पर्याप्तो विषयः । (हर्षचरित द्वितीय उच्छवास)

चीनी यात्री इत्सिंग का यात्रा विवरण भी हर्ष की कविता शक्ति तथा उसकी कृति नागानन्द का स्पष्ट निर्देश करता है । यह चीनी बौद्ध सन्यासी अपने धर्मग्रन्थों को पढ़ने की कामना से हर्ष की मृत्यु के बाद सातवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में भारतवर्ष आया था । उसने अपने यात्रा विवरण में लिखा है – "राजा शीलादित्य" । हर्ष । ने बोधिसत्व जीमूतवाहन की कथा को नाटक के रूप में परिणत किया और उस नाटक का संगीत आदि सामग्री के साथ नटों के द्वारा अभिनय कराया।" इस कथन से इतना एकदम साफ हो जाता है कि महाराज हर्ष ने "नागानन्द" नाटक का निर्माण किया था ।

महाराज श्री हर्ष के नाम से तीन रचनायें प्रसिद्ध हैं – 1– प्रियदर्शिका, 2– रत्नावली तथा 3– नागानन्द । तीनों रूपकों से घटना चक्र, शब्दावली, भाव, शैली तथा शब्द विन्यास की शैली से निश्चयपूर्वक यह कहा कजा सकता है कि इन तीनों ग्रन्थों का लेखक कोई एक ही व्यक्ति है। अन्तरंग परीक्षा के आधार पर इन तीनों रूपकों के लेखन कम का भी निर्णय किया जा सकता है। प्रियदर्शिका और रत्नावली दोनों ही प्रणयकथा को लेकर लिखी गयी नाटिकायें हैं । उदयन ही इन दोनों का नायक है । घटना विन्यास तथा शब्दावली प्रयोग प्रियदर्शिका की अपेक्षा रत्नावली में अधिक सुघटित तथा साफ सुथरा है । अतः रत्नावली का बाद की रचना होना सुनिश्चित है । नागानन्द के अभिनय विषय की गम्भीरता को देखते हुये इसे हर्ष की अन्तिम रचना माना जा सकता है । हर्ष ने बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद ही इसे लिखा होगा ।

इनके अतिरिक्त भी हर्ष की और रचनायें होनी चाहिए । बल्लभदेव की सुभाषित वली में अन्य श्लोकों के साथ हर्ष के नाम से एक और श्लोक मिलता है जो उनके उंक्त रूपकों में नहीं है । श्लोक इस प्रकार है –

"अशठमलोलमजिह्मं त्यागिनमनुरागिणं विशेषज्ञम् ।

यदि नाश्रयति नरश्रीः श्रीरेव हि वञ्चिता तत्र ।। "

इससे प्रतीत होता है कि उनकी कुछ और कृतियां हैं जो आजकल अनुपलब्ध हैं ।

इन बाह्य प्रमाणों के अतिरिक्त आभ्यन्तर प्रमाण भी यही सिद्ध करते हैं कि रत्नावली, नागानन्द एवं प्रियदर्शिका के रचयिता हर्षवर्द्धन ही हैं । तीनों के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात साफ हो जाती है कि रूपक एक ही लेखक, महाराज हर्षवर्द्धन की सुयोग्य कृतियाँ हैं । तीनों की शब्दावली, वाक्य विन्यास तथा घटना–संयोग की समानता एवं भूमिका तथा भरतवाक्य का भावसाम्य यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त प्रमाण हैं कि ये तीनों एक ही लेखक की कृतियॉ हैं ।

भवभूति -

भास तथा कालिदास के पश्चात परवर्ती प्रसिद्ध नाट्य कृतियों में अपने परवर्ती नाटककारों में से भास के अतिरिक्त कालिदास की कृतियों का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है ।

आचार्य वामन 800 ई0 ने "काव्यालंकार सूत्रवृत्ति" में भवभूति के एक पद्य –

"इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयोः" 1उत्तर $^{1}/_{38}$1 को उद्धृत किया हैं।

इसके अतिरिक्त "गोडवहो"[1] प्राकृत काव्य में वाक्पतिराज ने भवभूति की प्रशंसा की है, जिसमें वाक्पतिराज से इनकी पूर्व वर्तिता तथा राजायशोवर्मा के राज्यकार पूर्वार्द्ध में इनकी प्रसिद्धि प्रतीत होती है। अतः म0म0 वासुदेव वि0 मिराशी का यह अनुमान और विचार समीचीन प्रतीत होता है कि भवभूति 700 से 730 ई0 के आस पास अपनी साहित्यिक कियाशीलता से साहित्य संसार में सुपरिचित हो रहे होगे।[2]

महाकवि भवभूति के नाटकों की प्रस्तावना से हमें इनका कुछं परिचय प्राप्त होता है। विदर्भ राज्यस्थ पद्मपुर नामक नगर के निवासी एक उदम्बर वंशीय ब्राह्मण परिवार में इनका जन्म हुआ था । उनके पिता का नाम नीलकंठ था तथा माता का नाम जतुकर्णी था । भवभूति का प्रारम्भिक नाम श्रीकृष्ण था । वह ज्ञाननिधि के शिष्य थे इनकी तीन नाट्य प्रतियाँ प्राप्त है । 1– महावीर चरित्रम, 2– मालती माधव 3– उत्तरराम चरितम्

1– गोडवहो 7/99 " भवभूति जलनिधिनिर्गत काव्यामृतरसकणाइव स्फुरन्ति, यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथा निवेशेषु ।।"

2. Bhavabhuti - V.V. Mirashi - Delhi 1974 P.11-12 AD Bhavabhuti's literary activity these lay between 700 and 730 A.D.

"महावीरचरितम" भवभूति की प्रथम नाट्य कृति है, जिसमें रामायण के पूर्वार्द्ध की कथा राम विवाह, राम वनवास, सीता हरण एवं राज्याभिषेक का वर्णन सात अंकों में प्रस्तुत हुआ । इस नाटक पर भास के अभिषेक नाटक तथा बाल चरित्रम का प्रभाव परिलक्षित होता है । यद्यपि इसमें नाट्य का पूर्ण परिपाक नहीं हुआ है । यद्यपि वीर रस का परितोष इसमें अच्छा हुआ है ।

"भास के अविमारक" नाटक से प्रभावित 'मालतीमाधव' दस अंकों का प्रेमकथा परक है प्रकरण है जिसमें मालती तथा माधव के प्रणय एवं विवाह का कल्पना वन्य वर्णन है । रोचक कथानक, यथार्थ तथा विशाद – चरित्र चित्रण तथा सुन्दर काव्यात्मक भाषा के कारण यह "महावीरचरित्रम' की अपेक्षा आलोचकों द्वारा अधिक समादृत हुआ है ।

रामायण के उत्तर खण्ड कथानक पर आधारित यह सात अंकों का भवभूति एवं सर्वोकृष्ट नाटक है । कवि ने नाटकीय प्रदान करने के लिये कालिदास के समान की इसकी मूल कथा में मौलिक परिवर्तन किये हैं । रामायण की कथा सीता के पृथ्वी गर्भ में समाने से दुखान्त है, किन्तु भारतीय नाट्य कला के आदर्शानुसार राम सीता का मिलन कराकर कवि ने इसे सुखान्त स्वरूप प्रदान किया है । चित्रदर्शन प्रसंग, राम का वनदेवता से मिलन, दण्डकारण्य में तमसा मुरला के साथ छाया में सीता की उपस्थिति, चन्द्र केतु और लव ने युद्ध कराते हुये नाटक को पराज़ित दिखाना, बाल्मीकि के आश्रम में जनक, वशिष्ठ के साथ ही कौशिल्या, अरून्धती आदि का आगमन तथा सप्तमांक में गर्भाङ्क नाटक ये सभी भवभूति की कथानक में मौलिक कल्पनाएं हैं।

अनेक नाट्य कलात्मक वैशिष्ट्य से युक्त होने के कारण "उत्तररामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते " की सूक्ति उनकी नाट्यकला के चूडान्तनिदर्शन को व्यक्त करती है।

विशाखदत्त -

महाराज पृथु के पुत्र तथा बटेश्वर दत्त के पौत्र का एक मात्र उत्कृष्ट नाटक मुद्राराक्षस प्राप्त होता है। "देवीचन्द्रगुप्तम्" नाटक के प्राप्त अंशों के आधार पर विशाखदत्त का स्थितिकाल छठीं शताब्दी ई0 प्रतीत होता हैं।

मुद्राराक्षस समग्र संस्कृत साहित्य में एक राजनीतिक ऐतिहासिक[1] कथनकयुक्त 6 अंकों का बेजोड़ नाटक है, जिस पर भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण का प्रभाव परिलक्षित है। अन्य नाटकों की भाँति यह रस प्रधान न होकर धटना प्रधान नाटक है जिसमें राजनीति की कुटिल चालों का सजीव चित्रण हुआ है।

भट्टनारायण -

भट्ट एवं मृगराज उपाधियों से विभूषित भट्टनारायण 8 वीं0 शती ई0 के पालवंशीय बंगाल के शासक के अश्रित थे तथा वामन 800 ई0 जैसे आचार्यो ने इनकी नाट्यकृति 'वेणीसंहार' से उद्धरण ग्रहण किये हैं। अतः 725 ई0 के आसपास विद्यमान 'वेणीसंहार' नामक 6 अंकों से युक्त वीर रस का सुन्दर नाटक प्राप्त होता है, जिसका महाभारत से लिया गया है।

कालिदास तथा भवभूति के परवर्ती नाटककारों में शक्तिभद्र 1926 ई0 में मद्रास से प्रकाशित आश्चर्य चूडामडि, दमोदर मिश्र का रामायण पर आधृत अंकों का महानाट्क 'हनुमान्नाटक'[2] राजशेखर 20 वीं शती ई0 पूर्वार्द्ध कृत 'कर्पूरमंजरी',सदृक विशाल मंजिका नाटिका बालरामायण तथा बालभारत या प्रचण्डपाण्डव नाटक, क्षेमीश्वर 10 वीं शती पूर्वार्द्धकृत 'कुन्दनमाला, जिसका 6 अंकों का कथनाक, दिङ.गनाग 10 वीं शती ई0 कृत कुन्दनमाला, जिसका 6 अंकों का

कथानक भवभूति कृत उत्तररामचरितम् के समान रामायण के उत्तरकाण्ड पर आधारित है, अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है।

संस्कृत के प्रतीकात्मक या रूपक कथानक Allegorical नाटकों में कृष्णचन्द्र मिश्र 11 वीं शती ई0 का प्रबोधचन्द्रोदय नामक 7 अंकों का नाटक उल्लेखनीय है जिसमें विवेह, मोह, ज्ञान, बुद्धि, श्रद्धा आदि अभूत भावों को स्त्री पुरूष पात्रों के रूप में प्रयुक्त किया गया है।

परवर्ती पूर्वमध्य एवं मध्यकाल के नाटककारों में जयदेव 12 वीं शती कृत "प्रसन्नराघव" 12 वीं शती ई0 कृत कर्पूरचरित्र, भाण "हास्यचूड़ामणि"

1. Krishna Swami Aiyangar cam .V01.1, Wintiernity-Historical Drama in ssnskrit Literature.P.360.

2. हनुमन्नाटक,श्रीमधुसूदनदास, द्वितीय संस्कृत में मात्र 9 अंक हैं।

प्रहसन समुद्रमन्थन, समवकार, किरातार्जुनीयम् व्यायोग, रूक्मिणीहरण, ईहामृग, त्रिपुरदाह डिम, हस्तिमल्ल, 13वीं शती ई0 के विक्रान्त कौरवम् मैथिलीकल्याण तथा सुभद्रा नाटकः यशपाल 13वीं शती ई0 कृत "मोहपराज्य वेंकटनाथ 14 वीं शती ई0 का "संकल्प सूर्योदय" कवि कर्णपूर 16 वीं शती ई0 का चैतन्य चन्द्रोदय, ज़यसिंह सूरिका "हम्मीरमर्दमर्दन" जगदीश्वर, 1600ई "हास्यार्णव" रामभद्र दीक्षित का "जानकीपरिणय", केरल के राजकुमार रवि वर्मा 13 वीं शताब्दी का "प्रद्युम्नाभ्युद,"रूपगोस्वामी 16 वीं शती कृत "विदग्धमाधव" तथा "ललिता माधव" हरिहर 15 वीं शती ई0 का "प्रभावतीपरिणयम्," प्रभृत नाट्य कृतियाँ उल्लेखनीय है।

अर्वाचीन नाटककरों में "पं0 अम्बिकादत्त व्यासकृत सामवतम्" आर0 कृष्णाचारीकृत वसन्तिका स्वप्न लक्ष्मण सूरि कृत "दिल्ली साम्राज्य, श्री भि0 वेलणकर कृत कालिदास चरितम्, नृत्यशाकुन्तलम्" डा0 कपिलदेव द्विवेदी कृत परिवर्तनम् डा0 राजेन्द्रमिश्र कृत पंचनादयनण्यम्,डा0 हरिदत्त शर्मा कृत लिपणा"एकांकीमय" डा0 रामकृष्ण शर्मा कृत बंगलादेशदेयम् डा0 कैलाशनाथ द्विवेदीकृत, वासुमित्र विजयम् प्रभृति उल्लेखनीय है।

भास एवं हर्ष कालीन सामाजिक एवं धार्मिक अवस्था के अनुसार समाज में नारी की स्थिति एवं उसकी रचनात्मक भूमिका -

सृष्टि प्रकिया में नारी एवं पुरूष प्राकृतिक शरीर रचना की दृष्टि से स्वयं में अपूर्ण हैं। तथा पूर्णता के लिये एक को दूसरे की अपेक्षा होती है। वस्तुतः नारी और पुरूष की इस पूर्णता का प्रतीक ही समाज का विकास है। जिसमें नारी का पुरूष की जननी और पालनकर्मी के रूप में उत्तरदायित्व पुत्र से अधिक होने केग कारण मनु जैसें धर्मशास्त्रियों ने उसे पूज्य एवं महनीय माना है।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।" मनु0 3/56 ।

जहॉ मनु ने नारी को पुरूष की संतति जनन के साथ धर्म कार्यो में पुरूष की सहधर्मिणी[1] कहा है, वहॉ [2] उनिषदों में भी उसे पूज्या प्रतिपादित किया है।

1– मनु0 9/22 प्रजानार्थ स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थञ्च मानवाः।

तस्मात् साधरणो धर्मः श्रुतो पत्न्या सहोदिताः।

2– तैत्तिरीयोपनिषद ,1/11/2 मातृदेवोभव।

पति द्वारा सम्पन्न समस्त कार्यो में उसका अर्धांश होने से नारी को[1] अर्द्धागिनी भी अभिहित किया गया है तथा समाज में कन्या,दुहिता, भगिनी, बधू, पत्नी, माता, मातामही, गुरूपत्नी आदि विविध रूपों मे भी उसका उल्लेख प्राप्त होता है।

नारी संस्कार -

प्राचीन भारतीय समाजमं पुरूषो के समान नारियों को भी नियमतः जातकर्म,अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णभेद, उपनयन[2], विवाह आदि संस्कार सम्पन्न होते थे। उपनयन संस्कार तो कन्याओं का उतना ही आवश्यक था, जितना कि किशोरों का उपनयन संस्कार सम्पन्न होता था, वैदिक– साहित्य [3] एवं सूत्र–साहित्य[4] में भी इनके संस्कारो के सम्बन्ध में संकेत पूर्ण निर्देश प्राप्त होता है। परवर्ती काल में स्त्रियों को संस्कारिता करने के नियमों में शिथिलता आ गयी और बिना वैदिक मंत्रों[5] के ही उनका उपनयन होने लगा तथा विवाह संस्कार में ही सभी संस्कारों का समावेश[6] हो गया। पतिसंग को गुरू कुलवास तथा गृह कार्य को अग्निहोत्र बताया गया है। "मनु02/66"

सम्भवतः प्रथमशती ई0 से वैदिक अध्ययन शून्य होने के कारण कन्याओं का उनपनयन एक बाह्य प्रसाधन मात्र रह गया[7]। अतः

---

1. शतपथ ब्राम्हण 5/2/1/10 "अर्धो हवा एष आत्मनोयज्जाया"।
2. Education in Ancient India, I.A.S. Altekar, P. 209.
3. ऋग्वेद 3/55/16, योग्य युवती का विद्वान [illegible] से विवाह करने का निर्देश । अथर्व० 11/5/18 बृम्हचर्येण कन्या युवानम् विन्दते पतिम । (यजु0 7/1)

4. गोभिल गृह्यसूत्र 2/1/19– "सुसज्जित कन्या को पुरोहित यज्ञोपवीत धारण करायें ।"

पारस्कर गृ0सू0–**स्त्रियः** उपनीता अनुपनीताश्च ।

5. मनु0 2/66 **अमंत्रिका** तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ।

6. मनु0 2/66 वैवा**हिको** विधिः स्त्रीणां संस्कारों वैदिको मतः ।

7. Great Women of **India,** R.C. Majumdar P. 33

याज्ञवल्क्य[1] ने स्त्रियों के जात कर्मादि सभी संस्कारों का उल्लेख न कर मात्र विवाह को मंत्रपूर्वक करने का परामर्श दिया है।[2] अन्य स्मृतिकारों ने याज्ञवल्क्य के दृष्टिकोण का समर्थन किया है, जबकि परवर्ती कतिपय धर्मशास्त्रियों में से 8वीं शती ईसवी के यम ने स्त्रियों के उपनयन संस्कार को वेदाध्ययन के लिए आवश्यक बताया है । स्मृतिकार हारीत भी दो प्रकार की स्त्रियों – 1– ब्रह्मवादिनी, 2– सद्योवधू का उल्लेख करते है, जिनमें ब्रह्मवादिनी का उपनयन, अग्नीन्धन, वेदाध्ययन, भैक्षवर्या आदि गृह में होती थी, जब कि सद्योबधू विवाह काल में ही उपचार रूप में उपनयन संस्कार सम्पन्न हो जाता था।[3]

उपनयन के पश्चात ब्रह्मचर्य आश्रम से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते समय समावर्तन संस्कार भी युवतियों का होता था, जिसमें निर्दिष्ट ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं स्त्री को पृथक–पृथक रीति से कियायें करनी चाहिए ।[4] हरीत के मतानुसार युवती होने के पूर्व कन्याओं का समावर्तन सम्पन्न हो जाना चाहिए ।[5]

समावर्तन के पश्चात युवतियों का पाणिग्रहण अथवा विवाह संस्कार समय पर सम्पन्न होता था । यद्यपि वैदिक कालीन विवाह पद्धति का अधिक परिचय नहीं प्राप्त होता है तथापि मनु,[6] "आश्पस्तम्ब, शाखायन, भारद्वाज,[7] आश्वलायन आदि द्वारा इस सम्बन्ध मे प्रकाश अवश्य डाला गया है । मनु एवं आश्वलायन ने आठ आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन किया है –

1– याज्ञ0 1/13 तूष्णीमेताः कियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समंत्रकः ।

2– वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश, पृ0 402–403
"पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचन तथा ।।"

3– संस्कार रत्नमाला, भाग 1, पृ0 165 "द्विविधा स्त्रियो ब्रम्हवादिन्यः सद्योवधूवश्च । तत्र ब्रम्हवादिनी नामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्षचर्येति सद्योवधूनां तूपस्थिते विवाहे कथनिचदुपनयन मात्रं कृत्वा विवाह कार्यः ।

4– आश्वलायन गृहयसूत्र, 3/8/11

5– संस्कार–प्रकाश–प्राग्राजसः समावर्तनमिति हारीतोक्त्या । पृ0 404

6– मनु0 2/66 संस्कार प्रकाश–पिता पितृव्यो भ्राता वा नैना मध्यापयेत्परः ।

स्वगृहं चैवं कन्यायाः भैक्षचर्या विधीयते ।। पृ0 403

7– आश्व0 गृ0सू0 1/4/21

1– ब्राह्म, 2– दैव, 3– प्रजापत्य 4– आर्ष 5– गान्धर्व 6– असुर 7– पैशाच 8– राक्षस । इनमें से यद्यपि प्रथम चार को समुचित माना गया है, तथापि समाज में ब्राह्म विवाह को सर्वश्रेष्ठ समझकर साधारण रीति से ग्रहण किया जाता था ।

नारी शिक्षा -

पुरूषों की भांति, अनेक नारियों की शिक्षा के संदर्भ में वैदिक साहित्य[1] प्राप्त होते हैं। उत्तर वैदिक काल में भी स्त्रियों की उच्च शिक्षा का पता अनेक[2] संदर्भो के आधार पर चलता है । कौषीतकि ब्राह्मण में पाश्यास्वस्ति नाम की एक परम योग्या नारी का उल्लेख है, जिसने अध्ययन के लिए उत्तर दिशा में प्रस्थान करते हुए अपनी विद्वता से वाक । ज्ञान की देवी । उपाधि को विभूषित किया था ।[3] यह भी द्रष्टव्य है, पुरूषों के द्वारा अध्ययन न किये जाने योग्य विषयों ललित कलाओं, नृत्य एवं गान आदि में नारियों असाधारण प्रवीणता[4] प्राप्त की थी ।

परवर्ती सूत्र[5] एवं स्मृति साहित्य में नारी शिक्षा निरन्तर चलने के अनेक संदर्भ प्राप्त होते हैं। हेमांद्रि के मतानुसार कुमारियों को विद्या एवं धर्म के साथ नीति पढ़ना चाहिए, क्योंकि शिक्षित कन्या अपने पिता और पति के परिवार का हित करती है । पाणिनि काल में विदुषी नारियां शिक्षिका के रूप में अध्यापन कार्य करती थी, जिसका संकेत उपध्यायाी[6] एवं आचार्या जैसे विशिष्ट पदों से प्राप्त होता है । पाणिनि ने वेद की विविध

---

1. ऋग्वेद[1]/179/1–2 लोपामुद्रा ऋक्. 5/7/9 ऋषिका एवं ब्रम्हवादिनी यजु0 7/1, अथर्व0 11/6.

2. बृहदारण्यकोपनिषद् 3/6/3, 8, 2/4/3, केनोपनिषद, 3/12.

3. कौषीतकि ब्रा0 7/6.

4. तैतिरीयसंहिता 6/1/6/5.

5. गोभिलगृहयसूत्र 1/3, आश्व0 श्रौ0 सू0 1/2, गृ0सू0, 1/3/10, आपस्तम्बपारस्कर 09/2/1. 11/3/12.

6. पंतजलि महाभाष्य 3/8/22 उपेत्याधीपते अस्याः सा उपाध्याया ।

शाखाओं का अध्ययन करने वाली छात्राओं को उल्लेखित किया है यथा – कण्ठ शाखा की अध्येत्री नारी "कठी" ऋग्वेद का अधिक अध्ययन करने वाली "बृहवृची" कही गई है ।

। दृष्टव्य काशिका एवं बाल मनोरमा ।

महाभाष्य से ज्ञात होता है कि अपिशालि के व्याकरण ग्रन्थ का अध्ययन करने वाली ब्राम्हण नारी "आपिंशाला[1]" काशकृत्स्ना शिष्या को "औदमेध्या" कहा गया है अष्टाध्यायी 4/1/18 ।

इन संदर्भो से सिद्ध होता है कि उस समय नारियाँ विदुषी ही नहीं, अपितु अनेक शुष्क शास्त्रों – व्याकरण मीमांसा आदि के अध्ययन के प्रति भी अभिरूचि रखती थी । नारी शिक्षा का जो स्वरूप हमें वैदिक एवं वैदिकोत्तर काल में प्राप्त होता है । अनेक धार्मिक एवं सांस्कृतिक कृत्यों के सम्पादन में इनके सुनिश्चित होने का स्पष्ट पता चलता है।[2] शिवा नामक एक वनवासिनी नारी ने वेदों का अध्ययन कर अंततः आध्यात्मिक उत्कर्ष प्राप्त किया था।[3] स्पष्टवादिनी एवं विदुषी गन्धारी के "यतो धर्मस्ततो जपः" जैसे शब्द महाभारत[4] की शिक्षा के सार प्रतीत होते हैं।

नारियों को शिक्षा के अन्तर्गत अनेक लोक एवं परलोक विषयक विषयों का ज्ञान कराया जाता था । उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्त्री को भी वेद संहिता, ब्राम्हण, आरण्यक, उपनिषदों,[5] ग्रन्थों के साथ सभी वेदांगों शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरूक्त, ज्यातिय, छन्दः शास्त्र की शिक्षा दी जाती थी । वात्स्यायन ने 2000 ई0 पूर्व नारियों को कला विद् रूप में 64 कलाओं में निपुण माना है । "ऋम्भणी"[6] जैसी वैदिक ऋषिका की काव्य परम्परा परवर्ती कवयित्रियों में पनपती रही । हालकृत "गथाशप्तशती" प्रथम सती ई0 पूर्व में अनुलक्ष्मी, अनुलद्वि, माधवी, प्रहता, रेवा, रोधा, शशिप्रभा, वृद्धावहि नामक अनेक प्राकृतक कवयित्रियों का उल्लेख प्राप्त होता है ।

1– श्रीमद्वाल्मीकीयरामा0 अयो0 2/20/15, सा क्षौमवासना देवी नित्यंव्रत परायणा ।

अग्निं जुहौतिस्म तदा मंत्रवत्कृतमंगला ।।

श्रीमद्वाल्मीकीयरामा0 अयो0 किष्किंधा 4/16/20 –तारा द्वारा स्वस्तियाग से पति की शुभकामना।

2– महाभारत 5/109/18–19.

3– महाभारत 15/28/5.

4– मुण्डकोपनिषद 1/1/5.

5– कामसूत्र 1/3 जयमंगला टीका चौखंभा संस्करण अभ्यास प्रयोज्याश्च चातुः षष्टिकान् यौगान कन्या रहस्येका किन्यभ्यसेत् ।

6– ऋग्वेद 10/90 वाक सूक्त की रचयित्री ऋषिका – वागृम्भणी ।

यज्ञादि धार्मिक कृत्यों में पत्नी नियमतः पुरूष की सहयोगिनी[1] होती थी तथा उसके बिना पति यज्ञ के योग्य नहीं रहता था[2] । पति पत्नी दोनों समान रूप से भाग लेते थे[3] ।

कतिपय यज्ञों के सम्पन्न करने में स्त्री को उपनयन[4] से युक्त होना पड़ता था तथा उसके द्वारा सामगान भी किया जाता था, जैसा कि शतपथ ब्राम्हण के अनुसार ये सामगानकर्ता पुरोहित उदगात्रगण पत्नी के कार्य को करते हैं[5] । पत्नी सम्बन्ध सूचक शब्द नारी का पति के साथ यज्ञों के अवसर पर विशेष कर्तव्यपूर्ण सम्बन्ध सूचित करता है[6] । नारियों द्वारा अग्रहायण कर्म के प्रस्तरारोहण विधि के अवसर पर अनेक मंत्रों का उच्चारण किया जाता था[7] । तथा सीतायास से भूमि को उर्वर[8] बनाने एवं रूद्रबलियाग से पशुओं को समृद्ध सशक्त करने के लिये[9] यज्ञिय क्रियाएं स्त्रियां ही सम्पन्न करती थीं।

प्रायः पति के प्रवासी होने, यात्रा हेतु प्रस्थान करने पर पत्नी ही अकेली विविध यज्ञों को सम्पन्न कर लेती थी । यह स्थिति वैदिक काल से सूत्रकाल 500 ई0पूर्व तक चलती प्रतीत होती है [10]। रामायण में कौशिल्या द्वारा अकेले ही मंत्र सहित स्वस्तियाग करने का उल्लेख हुआ है।[11]

1- ऋक्0 1/22, 1/33/3, 3/53/4-6, 4/43/6, 8/31/5, 10/86/10.

2- शत ब्रा0 5/1/6/10 - "अयज्ञायो वैष यो अफलीकः"

3- ऋक0 8/31/5- "या दम्पती सुमनसा आच धावतः देवासो नित्यया शिरा।"

4- तैत्तिरीय ब्रा0 3/8/3.

5- शत0 ब्रा0 14/3/1/35 पत्नी कर्मेव एतेअत्र कुर्वन्ति यदुदगातारः ।

6- गोभिल गृह्यसूत्र 3/2 पाणिनि अष्टा 4/1/33 पुत्युर्नो यज्ञसंयोगे।

7- पारस्कर गृह्यसूत्र 3/2.

8- पार0 गृ0सू0 2/17.

9- पार0 गृ0सू0 3/18/10.

10- Position of woman in Hindu civilization. P. 235.

11- श्रीमद्वाल्मीकीयरामा0 आयो0 2/20/15.

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैदिक काल से लेकर महाकाव्य काल तक समाज में नारी का गौरव कन्या, पत्नी, माता आदि विविध रूपों में प्रतिष्ठित था । यद्यपि पितृसत्तात्मक परिवार होने के कारण नारी का समाज में आर्थिक अधिकार पुरूष के समान नहीं रहा, तथापि "गृहस्वामिनी" के रूप में वह पिता, पति, पति, पुत्र की सम्पत्ति का साधिकार उपभोग करती थी । उत्तर वैदिक काल में भी पुत्रों के समान पुत्रियों का लालन पालन एवं शिक्षा–दीक्षा होती थी तथा गृह चातुर्य उसका प्रमुख गुण माना जाता था ।

गृह एवं समाज में नारी पूज्य मानी जाती थी तथा सच्चरित्र एवं शील सम्पन्न होने से समाज में समादृत होती थी । जबकि सामाजिक एवं सांस्कृतिक समारोहों अथवा विशेष अवसरों पर वैश्या को नृत्यगान हेतु बुलाने पर भी उन्हें शरीर व्यापार करने तथा दुश्चरित्र होने से वैश्यावृत्ति ग्रहण करती थी जिनका समाज में स्थान समादृत नहीं था ।

नारी की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन -

परवर्ती स्मृति–पुराण काल में नारियों के समाज में अधिकार सीमित करके कर्तव्य पालन की संख्या संवर्द्धित कर दी गई । पति सेवा को पूर्ण किए बिना पत्नी को कदापि "मोक्षाधिकारिणी"[1] नहीं माना गया है । पैतृक सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार नारियों को वैदिक काल के समान महाभारत के समय भी था किन्तु कन्याओं को अपने पिता की सम्पत्ति, विधवा स्त्रियों को अपने पति की सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार नहीं था ।

परवर्ती पुराण एवं स्मृतिकाल 500 ई0 पूर्व से 600 ई0 पूर्व तक कन्याओं की विवाह योग्य आयु 14 या 15 वर्ष हो जाने के कारण नारी की समाज में स्थिति बहुत परिवर्तित हो गयी । चूँकि दीर्घ अवधि तक ब्रम्हचर्य ब्रत धारण करने वाली कन्याएं अविवाहित नहीं रखी जा सकती थी । अतः कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र प्रभृति वैदिक विषयों की शिक्षा–दीक्षा भी उन्हें चतुर्थशती ई0 तक अत्यल्प रूप में दी जाने लगी । उपनयन संस्कार एवं वैदिक विषयों के अध्ययन का निषेध यद्यपि

इस काल में हो गया तथापि कतिपय उच्चवर्ग के शिक्षित परिवारों में कन्याओं को कुछ साहित्यिक शिक्षा दी जाती थी।

1— मनुस्मृति 5/51 "नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञोन न व्रतं नाप्युपोषिताम् ।

पति सुश्रष्यते येन, तेन स्वर्गे महीपते।।"

उनका शीघ्र विवाह होने के कारण स्वयंवर की प्रथा समाज में समाप्तप्राय हो गयी। समाज में नारी की स्थिति काफी शोचनीय हो गयी, उनकी वैयक्तिक स्वतंत्रता में भी पर्याप्त बाधा[1] पहुँची तथा परवर्ती साहित्य में नारियों के समाज में भेदभाव एवं तिरस्कारपूर्ण स्थिति के उल्लेख[2] प्राप्त होते हैं ।

दुश्चरित्र एवं अश्लील नारियों का समाज में सभी तिरस्कार करते है , जब कि सुशिक्षित, सती, योग्य पतिव्रता नारियों का सर्वत्र समाज में गौरवपूर्ण स्थान सदैव रहा है । वह घर से बाहर जाकर अपने को असुरक्षित अनुभव करने के कारण आर्थिक जीवन में जीविकोपार्जन में पुरूष की भॉति शारीरिक रूप में सक्षम नहीं है, न युद्धभूमि में ही वह अपना पौरूष दिखा सकती है तथापि समाज में पुरूषों की प्रत्येक परिस्थिति में पूरक होकर सुकुमार होते हुए भी अपनी कलात्मक अनेक कियाओं से कुशलता एवं बुद्धि वैभव के सहारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक अनेक गतिविधियों के दायित्व का निर्वाह करती हैं । इस दृष्टि से उसका समाज में अपूरणीय स्थान है तथा उसकी रचनात्मक भूमिका व्यापक और महत्वपूर्ण है ।

संस्कृत नाटकों में नारी का अंकन -

संस्कृत साहित्य में नारी का सुन्दर चित्रण उसके नख–शिख सौन्दर्य से लेकर अनेक आभ्यन्तर गुणों – शील, ममता, मातृत्व एवं वात्सल्य, करूणा, क्षमा, दया आदि के वर्णन से युक्त पाया जाता है तथापि समस्त साहित्य की विधाओं में से जितना नाटक में नारी का अधिक प्रभावी अंकन हुआ है, संस्कृत – रूपकों, नाटक, प्रकरणादि में कन्या–मुग्धा, युवती, प्रौढ़ा जैसी नायिका से लेकर वृद्धा तक स्वामिनी रानी से लेकर चेटी तक का, कुल–स्त्री से लेकर वारांगना तक विविध रूपों में सुन्दर[3] चित्रण प्राप्त होता है।

1- मनु0 9/3 "पित्रा रक्षीति कौमारे ....न स्त्री स्वातन्त्रयमर्हति।"

2- पुत्र की अपेक्षा कन्या का स्थान परिवार में न्यून हो गया क्योंकि पुत्र परिवार का स्थायी सदस्य होकर माता–पिता के साथ वृद्धावस्था में भी रहता था जबकि कन्या विवाहिता होने पर दूर दूसरे परिवार में पति के यहाँ चली जाती थी । वहाँ भी उसका पुत्रों को जन्म देने पर ही महत्व तथा आदर था ।

परवर्ती अथर्ववेद में भी कन्या की अपेक्षा पुत्र पैदा करने निश्चिन्ततापूर्ण क्रियाओं के मंत्रों का उल्लेख है । (अथर्व0 3/23, 6/2)

3- नाट्यशास्त्र – 4/255 - 257

दशरूपक – 2/24-29, 31, 32

साहित्यदर्पण – 3/56

समाज में पुरूषों के साथ जीवन के व्यापक क्षेत्र में परिपूर्णात्मकी दृष्टि नारी की सम्पूरक प्रभावी भूमिका रहती है । अतः संस्कृत के नाटकों में नारी की अपरिहार्य भूमिका का निर्देश भरत आदि नाट्य शास्त्रियों ने भी किया है । कहीं कुलजा स्वकीया नायिका[1] है तो कहीं परकीया नायिका की अन्तरंग सखी तो कहीं परिचारिका सेविका कहीं वेश्या के रूप में प्रस्तुत है तो कहीं अनेक[3] सामाजिक सम्बन्धों, माता, पत्नी, भगिनी, गुरूपत्नी आदि मे अनेक वैशिष्ट्यपूर्ण क्रियाओं में नारी के हृदयावर्जक स्वरूप का चित्रण संस्कृत रूपकों में पाया जाता है।

संस्कृत के विविध रूपों में नाटक[4] प्रकरण में तो नारी नायिका रूप में कुलजा तथा वेश्या रूप में अन्य नारी[5] पात्रों के साथ उपरूपक नाटिका में बाहुल्य रचना ही होती है, जिनमें नायिका ज्येष्ठा,[6] प्रगल्भा, गम्भीरा तथा मानिनी होती है जबकि कनिष्ठा, मुग्धा, दिव्यगुण सम्पन्न और अतिमनोहर होती है । ईहामृग रूपक में भी नायक अलभ्य नायिका की कामना करता है । इसकी प्राप्ति के प्रयास में चित्रित होता है । इस दृष्टि से संस्कृत नाटकों में भी नारी का नायिका धीरा, कुलजा, कुलजा, मुग्धा, प्रौढ़ा आदि रूपों के साथ उनकी सखियों, सेविकाओं, सम्बन्धिनी आदि नारियों[7] का स्वाभाविक अंकन कथावस्तु में समुचित रूप से प्राप्त होता है ।

1- दशरू0, 2/32, अन्यस्त्री कन्यकोढ़ा च नान्योढ़ाङ्गिरसे क्वचित् ।

2- साहित्य दर्पण, 3/67/71.

दशरू0, 2/33, साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्यधौर्त्ययुक् ।

3- नाट्य शा0 22/211, 212, सा0द0 3/72–73

दशरू0 2/36, 37 से 44 तक ।

4- नाट्य शा0 18/50–53, ना0द0 2/118, सा0द0 6/226, 227 दशरू0 3/45/41–42.

5- ना0शा0 18/59 स्त्रीप्राया चतुरका ....ना0द0 2/121, सा0द0 6/269,

दशरू0 3/48 – स्त्रीप्रायचतुरङ्कादिभेदकं यदि चेष्यते ।

6- दशरू0 3/49 देवी तत्र भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ।

गम्भीरा मानिनी कृच्छात्तद्वशान्नेतृसंगमः ।।

दशरू0 3/50 नायिका तादृशी मुग्धादित्या चातिमनोहरा ।।

7- ना0 18/80–83, ना0द0 2/138, 139, सा0द0 6/245, 250

दशरू0 3/64 दिव्यस्त्रियमनिछन्तीमपहारा दिनेच्छतः ।

श्रृंगाराभासमपयस्य किञ्चित्किञ्चित्प्रदर्शयेत् ।।

प्रथम अध्याय

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से नाटकों में नारी पात्रों की भूमिका

प्रथम अध्याय

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से नाटकों में नारी पात्रों की भूमिका -

जिस प्रकार सर्वांग सुन्दर सृष्टि के समारम्भ से ही नर के साथ नारी की समाज के सभी कार्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका रही है, उसी प्रकार नाटक प्रकरणादि विविध रूपकों में भी नारी की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रहती है । नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से यहाँ भास तथा हर्ष के रूपकों, नाटक, प्रकरण आदि में नारी पात्रों की महत्वपूर्ण भूमिका का विवेचन किया जा रहा है ।

1- नायिका -

नायक की प्रिया या पत्नी को नायिका कहते हैं । आधुनिक । पाश्चात्य । नाट्यशास्त्र में यह आवश्यक नहीं कि नायक की प्रिया या पत्नी ही नायिका हो । स्त्रियों में जिसका नाटकीय कथा–प्रवाह में प्रधान भाव हो वहीं पाश्चात्यों के अनुसार नायिका होती है, चाहे वह नायक की प्रिया हो या कोई अन्य, परन्तु भारतीय नाट्यशास्त्र में नायक की प्रिया ही नायिका कहलाती है । नारी पात्रों में महत्वपूर्ण भूमिका नायिका की ही होती है जिसका आचार्य भरत तथा अन्य परवर्ती नाट्य शास्त्रियों ने नारी की प्रकृति, आचरण की शुद्धता अथवा अशुद्धता, पुरूषगत या सामाजिक प्रतिष्ठा की आस्था, शील, अंग रचना अन्तः प्रकृति दृष्टि से पर्याप्त विवेचन किया है । नाट्याचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में नायिकाओं के चार भेद गिनाये हैं – दिव्या, नृपत्नी, कुलस्त्री और गणिका परन्तु आगे चलकर यह भेद उतने मान्य नहीं हुए । सर्वमान्य विवेचन नायिका के स्वकीया, परकीया और सामान्य इन तीनों भेदों से आरम्भ होता है । धनंजय ने भी अपने दशरूपक में इसी का अनुसरण किया है । स्वकीया अपनी और परकीया परायी होती हैं तथा सामान्या किसी की स्त्री नहीं होती । सामान्या का दूसरा नाम गणिका या वैश्या भी है ।

स्वकीया नायिका में शील अर्जन आदि गुण होते हैं । वह स्वकीया, पतिव्रता, चरित्रवती, लज्जावती तथा पति की सेवा में रत होती है ।

स्वकीया के भी तीन भेद होते हैं – मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा । मुग्धा नायिका वह है जिसमें नयी तरूणाई आ रही हो अर्थात जो अभी – 2 बाल्यावस्था से यौवनावस्था में पदार्पण कर रही हो और पहले ही पहल कामेच्छा का अनुभव कर रही हो । वह रति से डरती है, क्रोध में भी मृदु होती है तथा बड़ी सरलता से प्रसन्न की जा सकती है ।

मध्या नायिका जवानी की सब कामनाओं से भरी हुई मोह । मूर्च्छा । की आस्था तक रति में समर्थ होती है । दशरूपककार धनंजय लिखते हैं कि – उसमें कुछ–कुछ प्रगल्भता आ जाती है और लज्जा कुछ कम हो जाती है, जैसे –

कामवती – केलि– "भवन की देहरी, खरी नाल छवि नौल ।

काम – कलित हिय–कौल है, लाज कलित दृग – कौल ।।" [1]

साहित्य – दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ कविराज का कथन है कि वह स्त्री जिसमें नम्रता और सरलता आदि गुण रहा करते हैं, जो गृह कार्य में तत्पर रहा करती है और पतिव्रता हुआ करती है । स्वीया नायिका मानी जाया करती है ।

संस्कृत – काव्यशास्त्र में नायिका चित्रण पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है । अलंकारकों ने कवियों और नाटकों द्वारा चित्रित नायिकाओं के स्वरूप और प्रकार का विशद विवेचन किया है । काव्य – साहित्य में स्वीया चित्र में रति भाव की बड़ी मर्मस्पर्शी मधुर अभिव्यक्ति हुई है । स्वीया चित्र का उद्देश्य रसास्वाद के साथ–साथ सरसोपदेश है । प्रेम की नाना प्रकार की झाँकियाँ स्वीया नायिका के स्वरूपोन्मीलन में दिखायी देती हैं ।

"स्वीया" नायिका का मध्यारूप संस्कृत – साहित्य में यत्र तत्र दिखलाई पड़ता है । कालिदास और भवभूति जैसे महान नाट्यकारों ने शकुन्तला और सीता जैसे नायिकाओं के जो चित्र खींचे हैं वे स्वीया नायिका की मुग्धता, प्रगल्भता और दोनों की सन्धि दशा के ऐसे चित्र हैं

जिन्हें किसी भी भाषा के साहित्य के लिए एक कलात्मक आदर्श माना जा सकता है । वस्तुतः नायिका के इन्हीं विद्वचित्रों की अनुपम रमणीयता का यह प्रभाव है कि संस्कृत के काव्य – कलाकारों ने

1– मतिराम

साहि0 दर्पण – पृ0 157 "मध्यस्य प्रथिमानमेति जघनं वक्षोज्योर्मन्दता

दूरं यात्युदरं च रोमलतिका नेत्रार्जवं धावति।"

इनकी भावभंगियों के अनुकरण अथवा अभिव्यंजन में नायिका मुग्धा मध्या चित्र संस्कृत काव्य साहित्य के सुन्दर मुक्तक चित्र हैं यद्यपि इनमें कोई नवीनता नहीं है और न ही कोई नयी परिकल्पना है किन्तु इनके चित्रकार के वर्णिकाभंग का चमत्कार हमें इनकी ओर वरवश खींच लेता है ।

आचार्य भरत की दृष्टि में नायिका–भेद के लिए उपर्युक्त आधार जो स्वीकार किये हैं, उनमें स्थूल और सूक्ष्म विचार तत्वों के अतिरिक्त उसके शील, सौजन्य, आचरण की पतिव्रता जीवन की प्रकृति एवं आस्था आदि को विशेष महत्व प्रदान किया गया है ।

महाकवि भास तथा हर्ष ने सामान्यतः नाट्य – शास्त्रीय आधार पर अपने रूपकों में नारी पात्रों के अन्तर्गत नायिकाओं का अनेक श्रेष्ठ गुणों से अभिमण्डित रूप में प्रस्तुत किया है जिन्हें तत्सम्बन्धित नाट्यकृतियों के आधार पर उद्घाटित किया जा रहा है ।

नायिका वासवदत्ता -

प्रतिज्ञायौगन्धरायण की वासवदत्ता भारतीय दृष्टि से परिणीता होने के कारण वह राजा उदयन की पत्नी व नायिका है । वह अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखती है । उसकी उदारता का वर्णन पति–परायणता के आदर्श रूप की झलक है । वह सती–साध्वी महिला के रूप में सामने आती है और अपने पतिदेव की सुख–शान्ति के लिए अदभुत परित्याग का उदाहरण प्रस्तुत करती है ।

स्वप्नवासवदत्तम नाटक की नायिका वासवदत्ता, वह प्रधान पात्रों में से एक है और नायक की पत्नी है । उदयन व वासवदत्ता । एक दूसरे से अत्यधिक प्रेम करते हैं, किन्तु दोनों के प्रेम में एक अन्तर है, उदयन के प्रेम में आसक्ति की प्रधानता और वासवदत्ता के प्रेम में त्याग की । वह अपने पति की समृद्धि के लिए अपनी भावनाओं को दबाकर भी त्याग करने से नहीं झिझकती । अपने प्रिय की प्रतिष्ठा के लिए वह यौगन्धरायण की योजना को स्वीकार करती है ।

1— यही बात श्री शिङ्गभूपाल प्रणीत रसार्णव सुधाकर । म विलास – 105 । की इन पंक्तियों में भी प्रतिपादित है –

"धीरा धीरादिभेदेन मध्याप्रौढ़े त्रिधा त्रिधा ।

ज्येष्ठा कनिष्ठाभेदेन साः प्रत्येकं द्विधा द्विधा ।।

मुग्धा त्वेकदिधा चैवं सा वयोदशधोदिता ।।"

कालविद विरह ही नहीं अपने एकाकी प्रेम में वह साझे को भी स्वीकार कर लेती है । इस प्रकार उदयन के प्रेम के लिए अपने प्रेम का त्याग करने से उसका प्रेम केवल आसक्ति न होकर वास्तविक प्रेम हो जाता है । अतिशय प्रेम, त्याग एवं विरह की तड़प को भीतर ही भीतर सहते रहना वासवदत्ता के चरित्र का उत्कर्ष है । इसके अतिरिक्त सौन्दर्य, कोमल, हृदय, श्रद्धा एवं शालीन व्यवहार आदि गुण भी वासवदत्ता में स्वाभाविक रूप से विद्यमान हैं । वासवदत्ता का प्रेम भी उन्माद की आस्था तक पहुँचा हुआ है ।[1] यदि प्रेम ने उन्माद का रूप धारण न किया होता तो वह अपने सपनों को छोड़कर उदयन के साथ भाग कर न आती । वीणा वादन के समय एकटक उदयन को देखने के कारण उसके हाथ से कोण खिसक जाता था और वीणा के स्थान पर आकाश में ही हाथ चला जाता था, यह सब प्रेम के ही नशे का प्रभाव था । प्रेम के इस नशे को ही उन्माद कहते हैं ।[2] उदयन के अभ्युदय के लिए कुछ समय तक उसे अपने प्रेम को दबाये रखना था । समुद्र गृह में एकान्त पाकर यह प्रेम उमड़ पड़ा । वह क्षण भर हृदय एवं सन्तोष के लिए वही ठहर जाती है ।[3] उदयन के यह पूछने पर कहती है – "इतः परं किम्[4] " अतिशय प्रेम में विरह और पति के दूसरे विवाह से बढ़कर और कौन सा ऐसा घोर प्रसंग होगा जिसके उपस्थित होने पर प्रेमिका सज्जा का परित्याग करेगी । प्रेमिका के साथ–साथ वह पति परायण भी है । उरदयन के प्रति उसके हृदय में उदारता एवं सम्मान की भावना है । उदयन ने स्वयं अपनी ओर से विवाह के प्रस्ताव में पहल नहीं की है उसने तो दर्शक की ओर से आये प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । यह जानकर उदयन के प्रति उसका रोष समाप्त हो जाता है ।[5]

---

1. स्वप्नवासवदत्तम द्वि अंक, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास द्वि0सं0 वाराणसी, पृ0 28 "। आत्मगतम् । जानामि जानामि । अयमपि जनः एवमुन्मादितः ।"
2. स्वप्नवासवदत्तम् चतुर्थ अंक, टीका गणेशदत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री सुभाष बाजार मेरठ, पृ0 50 "आर्यपुत्रेण विरहितोत्कण्ठिता भवामि ।"

3. स्वप्नवासवदत्तम् पंचम अंक ले० जयपाल विद्यालंकार,द्वि० सं० वाराणसी पृ० 72– नात्र कश्चिज्जनः । यावन्मुहूर्तकं स्थित्वा दृष्टिं हृदयं च तोषयामि ।

4. स्वप्नवासवदत्तम पंचम अंक ले० जयपाल विद्यालंकार,द्वि० सं० वाराणसी पृ० 72– नात्र कश्चिज्जनः । यावन्मुहूर्तकं स्थित्वा दृष्टिं हृदयं च तोषयामि ।

5. स्वप्नवासवदत्तम् द्वितीय अंक, ले० जयपाल विद्यालंकार, प्रका० मोतीलाल बनारसी दास, द्वि० सं० वाराणसी पृ० 32 "एवम् ! अनपराद्ध इदानीमत्रार्यपुत्रः।"

जब उदयन विदूषक के साथ प्रमद वन में पहुँचता है तो गुप्तवास में प्रथमबार वासवदत्ता उसे देखती है, उदयन के स्वस्थ देह को देखकर वह अपने को धन्य समझती है ।[1] वासवदत्ता अपने पति उदयन को किसी भी अवस्था में दुःख न हो यही उसका लक्ष्य है – एवं भवतु । अथवा तिष्ठ त्वम् । उत्कण्ठितं भर्तारमुज्झित्वाऽयुक्तं निर्गमनम् । अहमेव गमिष्यामि ।[2] पद्मावती के प्रति उसके मन में सौतियाडाह भी हो सकता था किन्तु उसका संदर्भ दृष्टिकोण इसके विपरीत अत्यन्त उदार है । पदमावती के साथ विवाह हो जाने पर भी वह इसलिए सन्तुष्ट है कि उसके उदयन को सान्त्वना देने के लिए किसी ने रिक्त स्थानों को भर दिया है । पद्मावती के सिर दर्द के समाचार को सुनकर उसे इसी कारण दुःख होता है कि उदयन को विश्रान्ति देने वाली यह अब भी रूग्ण हो गयी ।[3]

रत्नावली नाटक की नायिका वासवदत्ता महाराज उदयन की पटरानी । स्वीया नायिका । है ।[4] जो अवन्ति । उज्जैनी । के पराक्रमी नृपति महासेन या चण्ड प्रदोत्त की पुत्री वासवदत्ता उत्तम कुल को सुशोभित करने वाली है । इसमें स्वीया नायिका के सम्पूर्ण लक्षण[5] विद्यमान हैं । वासवदत्ता विनयशीलता, परिणता, उदारता, संयम और शील की वह साक्षात मूर्ति है । राजा उदयन के प्रति उसके अन्तःकरण में असीम श्रद्धा है । राजा उदयन के साथ ही वह वसन्तोत्सव । मदन महोत्सव । के अवसर पर अनंग की उपासना करती है । उसकी विनयशीलता की पराकाष्ठा उस समय देखी जाती है, जब राजा उदयन को चित्रफलक के साथ अभिसार के समय रंगे हाथ पकड़ती है । वह राजा को कुछ भला बुरा नहीं कहती ।

1. स्वप्नवासवदत्तम, चतुर्थ अंक, व्या0 गणेशदत्त शर्मा, प्रथम सं0 1968, पृ0 58 "दिष्टया प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः ।"
2. स्वप्नवासवदत्तम् चतुर्थ अंक, पृ0 64.

3. स्वप्नवासवदत्तम् पञ्चम अंक, ले0 जयपाल विद्यालंकार, द्वितीय सं0 वाराणसी, पृ070 "अहो !अकरूणाः खल्वीश्वरा में । विरहपर्युत्सुकस्यार्य पुत्रस्य विक्रम स्थान भूतेयमपिनाम पद्मावत्यस्वस्था जाता ।"

4. भाव प्रकाशन, पृ0 96 – "समान कुलशीलेन येनोढा बलिसाक्षिकम्

सा स्वीया .... ।।"

5. सा0द03/57– विनयार्जवादियुक्ता गृहकार्यपरा पतिव्रता स्वीया ।

सम्पत्तौ च विपत्तौ च मरणे या न मुञ्चति ।।

ऋृंगा0 ति0पृ0 96– "सस्वीया तांप्रति प्रेम जायते पुण्यकारिणः ।

न उसकी जिह्वा अंगारों की वर्षा करती है, न ऑखें विष उगलती हैं । चित्रफलक की घटना को सत्य जानकर भी केवल शिरः शूल के ब्याधि से अपने कोध को प्रकट न कर उद्यान से लौट आती है । उसकी कोध की लपटों पर विनयशीलता की शीतलता दिखायी पड़ती है ।[1] कुल और पति की प्रतिष्ठां के प्रति सर्वात्मना समर्पित वासवदत्ता परिजनों के समक्ष राजा का अपमान नहीं करती है । पति की प्रतिष्ठा तथा राजमर्यादा के लिए यौगन्धरायण की प्रत्येक बात मान लेती है । उसे जब यह ज्ञात होता है कि रत्नावली के साथ उदयन का विवाह हो जाने पर उसका पति चक्रवर्ती सम्राट होगा तो वह प्रसन्नता और हर्ष के साथ अपने आभूषणों से सजा कर रत्नावली को उदयन के हाथों में समर्पित कर देती है । इतना ही नहीं वह उदयन से निवेदन करती है कि रत्नावली को वह इतनी प्यार की मदिरा पिला दे कि वह अपने पितृकुल को भूल जाये ।[2] वासवदत्ता दया की प्रतिमूर्ति है । पग-पग पर उसकी प्रशंसा उसकी सेविकायें करती रहती हैं । चित्रफलक की घटना के पश्चात सागरिका को न कठोर दण्ड देती है, न उस पर वाग्वज्र का प्रहार ही करती है। अभिसार की घटना के समय उसकी रक्षा के लिए राजा उदयन से वह स्वयं निवेदन करती है । विदूषक के भी अपराध को क्षमा कर उसका उचित सत्कार करती है । वासवदत्ता न केवल आन्तर सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति है वरन् शारीरिक सौन्दर्य में रति को भी लज्जित कर देती है । राजा उसके गुणों के साथ-साथ उसके रूप[4] की प्रशंसा करते हुए नहीं थकते हैं । वासवदत्ता के गुणों[3] के कारण राजा उदयन बार-बार उसका अनुयय-विनय करते रहते हैं । वह भी राजा उदयन के प्रेम में इतनी लिप्त हैं कि अभिसार की घटना के समय राजा से अप्रसन्न होकर थोड़ी दूर लौट आने के बाद पश्चाताप करती है । वह स्वयं अपराधी पति को भी मनाना चाहती है ।[5] पति प्रेम की आपसी तृषा को दूर करने के लिए उसके इन्द्रजाल

1— रत्ना0 2/21 "कोपश्च प्रकटीकृतो दायितया मुक्तश्च न प्रश्रयः" ।

2— रत्ना0 दृ0 — "तत्तथा कुरू यथा न बन्धुजनं स्मृति ।"

3– रत्ना0 दृ0 1/19, "कुसुमसुकुमार मूर्तिर्दधती नियमेन तनुतरं मध्यम् ।

आभाति मकरकेतोः पार्श्वस्था चापयष्टिरिव ।।

4– रत्ना0 1/20, 1/19, 21,25– "बाल प्रवालविटपि प्रभवा लतेव ।"

5– रत्ना0 तृतीय अंक तेन ह्मलक्षितैव पृष्ठतो गत्वा कण्ठे गृहीत्वा प्रसादयिष्यामि ।

को बड़े ही मनोयोग से देखती है । मामा के यहॉ से आये हुए बसुभूति के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए उदयन को बसुभूति के पास भेज देती है । वासवदत्ता भारतीय संस्कृति के अनुरूप एक आदर्श पत्नी के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करती है । एक भारतीय पति–परायण कुलीन नारी के सम्पूर्ण गुंण वासवदत्ता के चरित्र में देखे जा सकते हैं । रत्नावली नाटिका की वासवदत्ता प्रेम, त्याग और कुलीनता की प्रतिमूर्ति है ।

प्रियदर्शिका नाटक की वासवदत्ता उज्जयिनी नरेश महासेन चण्डप्रदोत्त की पुत्री और वत्सराज की प्रधान रानी है । वह अपने पति के प्रति निष्कपट एवं गम्भीर प्रेम रखने वाली महिला उसकी ईर्ष्यालु प्रकृति का हेतु, उसका पति के प्रति सच्चा एवं गम्भीर प्रेम ही है । वासवदत्ता वेशधारिणी आरण्यका के साथ मनोरमा के स्थान पर राजा जब मनोरमा का स्वयं अभिनय कर रहे थे तभी उनको सन्देह उत्पन्न हो गया । उसने विदूषक के मुख से जब सारी वास्तविकता जान ली तो उसने आरण्यका और विदूषक को बन्धन में डाल दिया । विदूषक तो बाद में किसी प्रकार मुक्त कर दिया गया, किन्तु उसने आरण्यका को कुछ दीर्घ समय तक कैद में रखा । उसको मनोरमा से जब यह ज्ञात हुआ कि आरण्यका ने विष पी लिया है और वह खतरनाक स्थिति में है, तब जाकर उसने तुरन्त आरण्यका की चिकित्सा हेतु नाग लोक से विष चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त कर आये हुए महाराज से उसके प्राण बचाने का अनुरोध किया ।

मौसा दृढवर्मा के दीर्घकालीन कैद के समाचार से वह गम्भीर सोच में निमग्न हो जाती है, यहॉ उसका एक सच्ची स्नेहशील कन्या का रूप चित्रित किया गया है । वासवदत्ता को जब दृढवर्मा के कंचुकी के मुख से यह विदित होता है कि यह आरण्यका तो उसके मौसा दृढवर्मा की पुत्री प्रियंदर्शिका है, जो खो गयी थी और जिसे दृएवर्मा ने वत्सराज को प्रदान कर रखा था तब उसने दृढवर्मा की प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए बड़ी प्रसन्नता के साथ प्रियदर्शिका का हाथ वत्सराज को पकड़ा दिया । यह वासवदत्ता की उदारशीलता है ।

भास एवं हर्ष की वासवदत्ता की तुलना -

भास की वासवदत्ता का अपने पति के प्रति प्रेम अद्‌भुत है । वह अपने पति की समृद्धि के लिए अपनी भावनाओं को दबाकर भी त्याग करने से नहीं झिझकती, यहाँ तक कि वह अपने पति की प्रतिष्ठा के लिए यौगन्धरायण की योजना स्वीकार कर लेती है । इस प्रकार उसके प्रेम में वास्तविकता झलकती है । वह वहाँ भी क्रोधित प्रदर्शित नहीं की गयी है । हर्ष की वासवदत्ता जब अपने पति उदयन को चित्रफलक सहित रंगे हाथ पकड़ती है तो उस समय वह कुछ नहीं कहती अपने उद्यान से लौट आती है, परन्तु उसका मन विषाद से भर जाता है । उसके क्रोध में विनयशीलता की शीतलता दिखाई देती है । यहाँ तक कि पति की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए परिजनों के समक्ष अपमान भी नहीं करती । भास की वासवदत्ता में सौतिया डाह भी उत्पन्न नहीं हुआ । जब उसे पदमावती के सिर दर्द का आभास हुआ तो वह स्वयं ही दुःखित होकर उसके पास सहानुभूति दर्शाने के लिए प्रस्थान करती है । जब हर्ष की वासवदत्ता को नाटक के अन्त में यह ज्ञात होता है कि वह अपनी चचेरी बहन को ही अपने आभूषणों से ही स्वयं अलंकृत कर अपने पति की प्रेमिका रत्नावली को सजा कर समर्पित करती है । इतना ही नहीं बल्कि उससे निवेदन करती है कि आप इसे इतनी प्यार की मदिरा पिला दें कि वह अपने पितृकुल को भूल जाये । भास व हर्ष दोनों की उदयन रूपकों की नायिका वासवदत्ता है । पति के प्रति उसके हृदय में सदैव उदारता एवं सम्मान की भावना रहती है । उसमें विनयशीलता, उदारता, त्याग, संयम, सौन्दर्य आदि गुण विद्यमान हैं ।

पदमावती -

पद्‌मावती मगध नरेश दर्शक की बहिन है । वह अत्यन्त रूपवती है, उसके लावण्य से वासवदत्ता स्वयं प्रभावित है । वासवदत्ता उसके साथ किसी प्रकार का नारी जन सुलभ सपत्नी

द्वेष नहीं रखती, अपितु वह स्वयं पद्मावती के साथ राजा उदयन का पाणि ग्रहण संस्कार कराने में सहयोग प्रदान् करती है ।

महाराज "दर्शकस्य भगिनी"[1] उच्चकुल के अनुरूप धार्मिकता एवं सुजनता में मिश्रित अपूर्व सौन्दर्य, विरक्त व्यक्ति को भी वह हठात अनुरक्त बना देती है । अपूर्व सौन्दर्य पर गर्व की गन्ध, नतमस्तक, रोष का कारण होने पर भी मर्यादित व्यवहार, यही पद्मावती के चरित्र की रूपरेखा है। स्वभाव की मधुरता,

---

1— स्वप्नवासवदत्तम्, पृ0 अंक, पृ0 6, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल, बनारसीदास, वाराणसी ।

सुसंस्कृत व्यवहार और शालीनता, सौन्दर्य को आह्लादक एवं स्तुत्य बनाते हैं । पद्मावती को देखते ही वासवदत्ता के मुँह से उसके कुल और रूप की प्रशंसा बरवश निकल पड़ती है –

" अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम् "[1]

कुलीनता एवं शालीनता उसके स्वाभाविक गुण हैं, वह धर्म के प्रति आस्था रखती है –

" धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीड़ा "-

मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ।[2]" पद्मावती अपने सौन्दर्य, सौजन्य, अभिजात्य, माधुर्य एवं शालीन व्यवहार से उदयन, वासवदत्ता और विदूषक के मन में ही नहीं हम सबके मन में भी अनायास ही अपना स्थान बना लेती है । पदमावती उदयन की पत्नी है और नाटक में एक प्रधान पात्र है । अन्य गुणों से विभूषित भास के उदयन नाटकों की नायिका पद्मावती भी है । नायक यदि दक्षिण नायक है, तो उसकी सभी पत्नियों या कियायें जिनका नाटक में भी प्रधान्य हो, नायिका ही होगी । यह निर्विवाद है ।

प्रियदर्शिका -

यह मुग्धा नायिका है – "प्रथमावतीर्णयौवन मदन विकारा रतौ वामा कथिता मृदुश्च माने समाधिक लज्जावती मुग्धा।" अतः उक्त लक्षण के अनुरूप ही नाटककार ने प्रियदर्शिका का चित्रण किया है । उसके चरित्र की एक विशेषता अवश्य उल्लेखनीय है, कि प्रियदर्शिका ने कठिन परिस्थितियों में पड़कर भी आदि से अन्त तक कभी भी अपने वंश को प्रकाशित कर अपनी हेठी नहीं होने दी । प्रियदर्शिका वत्सराज के नवानुराग में पड़कर संतृप्त होने पर भी अपने दुःख को हल्का करने के लिए अपनी समाधिक लज्जा के कारण अभिन्न सखी मनोरमा को भी यह वृतान्त कहने में अपने को असमर्थ पाती है । उसने सम्बोधन में प्रत्यक्ष अपने मुख से मनोरमा को कुछ

नहीं बताया, भले ही मनोरमा ने चुपके से छिपकर उसके स्वागत भाषण को सुनकर सब कुछ जान लिया, यह दूसरी बात है ।

रत्नावली -

हर्ष के महत्वपूर्ण रूपकों में "रत्नावली नाटिका" की नायिका रत्नावली

1— स्वप्नवासवदत्तम् प्रथम अंक, पृ0 8 द्वितीय संस्करण, वाराणसी ।

2— स्वप्नवासवदत्तम् प्रथम अंक, पृ0 8 द्वितीय संस्करण, वाराणसी ।

सामान्यतया सभी स्त्री सुलभ श्रेष्ठ गुणों से युक्त है ।[1] रत्नावली सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की कन्या है । ग्रन्थ के अन्तिमांक को छोड़कर वह सर्वत्र सागरिका के नाम से ही व्यवृहत हुई है । वह मुग्धा नायिका तथा प्रारम्भ । अन्या । और अन्त में स्वीया हो जाती है । उसकी प्रबल हस्त रेखायें उसके पति को चक्रवर्ती राजा बनाने में सक्षम हैं । वह भाग्य ही बना देने वाली नहीं है वरन् साक्षात सौन्दर्य की मूर्ति है । उसके सौन्दर्य को देखकर वासवदत्ता का हृदय संदेह सागर का तृण धन बन जाता है । सेविका के रूप में रहने वाली सागरिका वासवदत्ता की देख रेख की विकट श्रृंखला में बंधी हुई है । वासवदत्ता सागरिका को राजा उदयन के कामुक दृष्टिकोण में पड़ने नहीं देना चाहती है ।[2] सागरिका सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की अद्वितीय रचना है । स्वयं सर्जक ब्रह्मा भी इसके सौन्दर्य को देखकर आश्चर्यचकित हो गये हैं ।[3] राजा उदयन तो उसके चित्र को देखकर उसके प्रति आकृष्ट होकर जिज्ञासावश उसको प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो जाते हैं ।[4] उनकी दृष्टि में तो वह अद्वितीय सुन्दरी सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति रति और लक्ष्मी की प्रतिमूर्ति है ।[5]

सागरिका की विनयशीलता –

1— दशरू0 अवलो0 2/15— "यथोक्त सम्भवे नायक सामान्य गुणयोगिनी नायिकेति ।"
साहि0 दर्प0 3/46— "अधनायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारण स्त्री ।
नायक सामान्य गुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता ।।"

2— यस्यैव दर्शनपथाव प्रयत्नेन तस्यैव दृष्टिगोचरे पतिता भवेत ।

3— रत्नावली 2/16 — "शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद् ध्रुवं वेधसा
विधाय ललनां जगत्रयललामभूतामिमाम् ।।"

4— रत्ना0 2/9 — प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
पृ068— "लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः ।
मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव ।।"

5— रत्ना0 प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 2/18, पृ0 106
"श्री रेषा पाणिरप्यस्याः परिजातस्य पल्लवः ।
कुतोऽन्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छदमामृतद्रवः ।। "

और कुलीनता तथा यथोचित लज्जाशीलता[1] एक ओर उसे दु:सह वेदना भी प्रदान करती है । वह अपने प्रेम के असफल होने पर मृत्यु का आलिङ्गन कर लेना चाहती है, किन्तु कलंकित जीवन को धारण नहीं करना चाहती ।[2]

रत्नावली की असाधारण कलाप्रियता उसके द्वारा बनाये गये उदयन के सुन्दर चित्र से स्पष्ट होती है । वह उदयन को कामदेव समझती है । वह मृत्यु मुख में जाने से पहले एक बार उदयन को अवश्य देख लेना चाहती है । अग्नि ज्वाला में घिरी हुई सागरिका उदयन के दर्शन मात्र से अमरता का अनुभव करती है ।[3]

सागरिका मुग्धा नायिका होने के कारण उसमें वय तथा कामभावना की नवीनता रति क्रीड़ा में विपरीतता तथा क्रोध अवस्था में भी मृदुता देखी जाती है ।[4] सागरिका के नूतन वय को देखकर राजा उदयन की कविता उसके नवीन यौवन के मांसल सौन्दर्य का वर्णन करने लगती है ।[5] उसके हृदय में काम की ज्वाला धधक रही है, किन्तु कामांकुर की अभिव्यक्ति को लज्जा के आवरण से ढकना चाहती है ।[6] उदयन के समागम को प्राप्त करने पर भी रतिक्रीड़ा में विपरीत आचरण करती है । राजा उदयन उसे बाहुपाश में बांधना चाहते हैं किन्तु वह उनसे बात भी नहीं करना चाहती है । सागरिका के इस असामान्य आचरण को देखकर सुसंगता उसे अत्यन्त निष्ठुर कहती है ।[7]

1– रत्ना0 2/7, टीका डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, द्वि0 सं0 वाराणसी, पृ0 64–

"दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा ।

प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं न वरमेकम् ।।"

2– रत्ना0, तृ0 अंक, द्वि0 सं0, पृ0 122– "वरमिदानीं स्वमेवात्मानमुद बध्योपरता न पुन र्ज्ञात संकेतवृत्तान्तया देव्या परिभूतास्मि ।"

3— रत्ना0, च0 अंक, पृ0 148— "पुनरपि में जीविताभिलाषः संवृत्तः ।

4— दशरू0 2/16 —"मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि ।"

5— रत्ना0 2/11, 13,14.

6— रत्ना0, द्वि0 अंक, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0, वाराणसी, पृ06 ।

"प्रिय सखि महती खलु में लज्जा । तत्तथा कुरू यथा न कोऽप्यपर एतं वृत्तान्तं जानाति ।

.... अतोऽन्यधिकतरं में संतापो वर्धते ।''

7— रत्ना0 द्वि0 अंक, पृ0 108— "सखि अतिनिष्ठुरेदानीमसि

त्वम् .... ।"

वह अत्यन्त सरल हृदय वाली नायिका है । राजा उदयन को साक्षात् कामदेव समझ लेना उसके इस सरल हृदय का प्रमाण पत्र है । वह भाग्य को कोस लेती है किन्तु वासवदत्ता से अपने सच्चे जीवन की कहानी नहीं कहती है । परवश पूर्ति स्वीकृत सेवावृत्ति उसके लिये मरण है, किन्तु वह इस घटना को भूलकर भी किसी से उल्लेख नहीं करती ।

उसकी तपस्या और सहनशीलता की असहज परिणति उसे उदयन की अर्धागिनी बना देती है । महारानी वासवदत्ता प्रसन्न होकर आशीर्वाद की पुष्प माला उसके गले में डाल देती हैं । सम्पूर्ण नाटिका में दर्शक की सहानुभूति अर्जित करने वाली सागरिका अन्त में रत्नावली बनकर मंत्री यौगन्धरायण की भूमिका को सफल बनाती हुई राजा उदयन के सिर पर चक्रवर्ती राजा का मुकुट बॉधकर स्वयं सुख भोग करती है । सागरिका नाटिका के प्रारम्भ में यथा मुग्धा, परकीया । अन्या । किन्तु अन्त में सभी गुणों से समन्वित स्वीया नायिका के रूप में परिलक्षित होती है, जिसके भागवत अनेक अलंकार वैशिष्ट्य दृष्टिगत होते हैं ।

साहित्य दर्पणकार ने मुग्धा नायिका के कतिपय भेदों का जो परिगणन किया है वह संस्कृत काव्य–साहित्य में वर्णित मुग्धा स्वभाव का ही विश्लेषण है । प्राचीन अलंकारिकों ने जैसा कि आचार्य हेमचन्द्र ने भी स्वीया नायिका के मुग्धा स्वरूप का नियामक, शरीर की एक विशिष्ट अवस्था किंवा कामोपचार सम्बन्धी निपुणता की विशिष्ट दशा को ही माना है ।[1]

वस्तुतः रतिक्रीड़ा में अनभिज्ञता किंवा यौवनादि के कमिक विकास आदि – संचालित रूप से ही मुग्धा के व्यक्तित्व के परिचायक हैं और इस दृष्टि से इनको पृथक–पृथक करके मुग्धा–भेद का नियामक बनाना ठीक नहीं किन्तु तब भी साहित्य दर्पणकार ने इनके आधार पर जो मुग्धा भेद निर्दिष्ट किया है । उसका एक विशेष कारण एक शब्द में अलंकारों का विभाजन किंवा परिभाषिकता प्रकृति ही है जिसका विकास साहित्य दर्पण के पहले से ही होंता चला आ रहा है ।

1– काव्यानुशासन, अ07 सू0 23– "वयः कौशलाभ्यां मुग्धा मध्या प्रौढति सा त्रिधा वयः । शरीरावास्था विशेषः कौशलं कामोपचारनैपुणम् ताभ्यां मुग्धा ।। "

और जिसकी प्रेरणा को रोकना सहित्य दर्पणकार के लिए सम्भव नहीं हो सका है ।

नायिकाओं के अलंकार -

जिस प्रकार केयूर आदि आभूषण शरीर की शोभा बढ़ाते हैं उसी प्रकार शरीर में प्रकट होने वाले कुछ विकार हैं जिनसे शारीरिक सौन्दर्य की शोभा में चार चॉद लगाते हैं । अतः उन्हें भी केयूर आदि के समान अलंकार कहा जाता है । यहॉ स्त्रियों के सात्विक[1] अलंकारों का वर्णन किया जा रहा है । पुरूषों में भी इसी प्रकार उत्साह आदि सात्विक भाव होते हैं और जैसा कि साहित्य दर्पण । 3–93। में बतलाया गया है अङ्गज और अयत्नज दस अलंकार पुरूषों में भी हो सकते है। तथापि यह युवतियों के होने पर ही अधिक चमत्कारक होते हैं । स्त्रियों में भी विशेषकर यौवनावस्था में ही प्रकट । अधिक प्रभावशाली । हुआ करते हैं । बाल्यकाल में प्रकट नहीं होते और वृद्धावस्था में प्रायः नष्ट हो जाते हैं । इसलिये इन्हें युवतियों के अलंकार कहा जाता है ।

ये अलंकार सत्वज, सात्विक । सत्व से उत्पन्न । कहलाते हैं ।

नायिकाओं के यौवनालंकार -

नाट्याचार्य भरतमुनि ने सामान्याभिनय के प्रसंग में नायक और नायिका के इन अलंकारों का स्वरूप, निर्देश का निरूपण किया है –

अलङ्कारास्तु नाट्य भावरसाश्रयाः

यौवनेऽभ्यधिकाः स्त्रीणां विकारा वक्त्र गात्रजाः ।

आदौ वयोऽङ्गास्तेषां दश स्वाभाविकाः परे

अयत्नजाः पुनः सप्त रसभाबोपबृंहिताः ।।

---

1 – दाशरू0, 2/47 यौवने सत्वजाः स्त्रीणामलंड़कारास्तु ।

यौवने सत्वोद्भूता विंशतिरलङ्काराः स्त्रीणां भवन्ति ।।

विशेष – द0ना0शा0 अभि0 । 22.4 । भा0प्र0पृ0 640, 20 । ना0द0 । 4.269 । सा0द0 । 3. 89–92 । में नायिका के 28 अलंकारों का वर्णन किया गया है । प्रता0 । पृ0 187 । में इनके स्थान पर 18 श्रृंगार चेष्टाओं का वर्णन किया गया है । पृ0 162 ।

देहात्मकं भवेत्सत्वं सत्वादभावः समुत्थितः

भावात्समुत्थितो हावो हावाद्वेला समुत्थिता।।[1] विमर्श ।

लीला विलासो विच्छित्ति र्विभ्रमः किलकिञ्चितम्

मोट्टायितं कुटटमितं विव्वोको ललितं तथा ।।

विहृतं चेति विज्ञेया दश भावाः स्वभावजाः ।। [2]

शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च तथा माधुर्यमेव च

धैर्य प्रागल्भमौदार्यमित्येते स्मुरयत्नजाः ।। [3]

नायिका के नाट्यशास्त्रीय आधार पर भावगत अलंकार -

नायिका के विविध दृष्टिकोण से भेद विवेचित करने के साथ ही नाट्य–शास्त्रियों[4] ने नारी जीवन की प्रकृति के अनुरूप कुल 20 अलंकारों की परिकल्पना की है, जो उसके अभ्यन्तर जीवन के सौन्दर्य सलज्जता, सुकुमारता, स्नेहशीलता एवं पावनता की उज्वलता को उद्भासित करते हैं। आचार्य भरत के मतानुसार यह अलंकार भाव या रस के आधार पर होते हैं तथा देह के माध्यम से मानव गमन में संवेदन रूप से व्याप्त इन भावों की अभिव्यक्ति हुई है ।

नारी पात्रों में अलंकारों की 3 श्रेणियां होती हैं – 1– आंगिक ।3 । 2– स्वाभाविक ।10। 3. अयत्नज ।7 । = 20 अलंकार ।

1– अथातम अलंकाराः – साहि० द०पृ० 89– "यौवने सत्वजास्तास माष्टा विंशाति ....।"

पृ०90– "शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्य च प्रगल्भता ।

औदार्य धैर्यमित्येते सप्त भावा अयत्नजाः ।।"

लीला विलासो .... ।

2– साहि०द०पृ० 178.

3— नाट्य शास्त्र, 22—4—26.

4— नाट्यशास्त्र, 22/26/गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, संस्करण बड़ौदा ।

नाट्यशास्त्र 24/4 — "अलंकारास्तु नाट्यवेर्देरज्ञा नाट्यरसाश्रपाः ।

नाट्यरसाश्रयाः ।

यौवने हयधिकाः स्त्रीणां विकाराः, वक्त्रगात्रजाः ।।"

इन्हें दशरूपककार धन्नजय ने इस प्रकार वर्णित किया है –

"भावोहावश्च हेला च त्रयस्तत्र शरीरजाः।"

"शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्य च प्रगल्भता ।

औदार्य धैर्यमित्येते सप्तभावा अयत्नजाः ।।"

मोट्टायितं कुट्टमितं विव्वोको ललितं तथा ।[1]

विहृतं चेति विज्ञेया दश भावाः स्वभावजाः ।।"

संक्षेप में सात्विक अलंकार दो प्रकार के हैं – 1– यत्नज, 2– अयत्नज ।

यत्नज का अर्थ -

क्रिया से उत्पन्न होने वाले इच्छा से यत्न होता है और यत्न से देह–क्रिया होती है । उस देह –क्रिया के द्वारा इन अलंकारों का आविर्भाव हुआ करता है । ये यत्नज अलंकार दो प्रकार के हैं – 1. अंगज, 2. स्वभावज (स्वाभाविक)

अंगज -

अंगज वे अलंकार हैं जो सत्व द्वारा उद्बुद्ध पूर्व वासना के आधार पर बाह्य गन्ध माल्य आदि प्रसाधनों के बिना ही केवल शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं । भाव, हाव और हेला ऐसे ही अलंकार हैं ।

स्वाभाविक अलंकार -

अभिनव गुप्ताचार्य ने स्वाभाविक शब्द की दो प्रकार से व्याख्या की है –

।1। स्वभाव प्रकृति से किसी स्त्री में कोई भाव होता है ।

।2। दूसरी में कोई दूसरा भाव ।

ये स्वाभाविक अलंकार लीला इत्यादि दस हैं । ये भी चिन्ता के

---

1. ना0शा0 – 24/5– "आदौ त्रयोऽङ्ग.जा प्रोक्ता दशस्वाभाविका परे,

अयत्नजास्तथा सप्त रस भावोपवृंहिता।"

दशरू0 2/47 – "यौवने सत्वजाः स्त्रीणामलङ्कारास्तु विंशतिः।"

रति भाव से व्याप्त हो जाने पर शरीर में होने वाली क्रियायें ही हैं अतः यत्नज कहलाती हैं । शोभा इत्यादि सात अयत्नज भाव हैं । ये शरीर के ऐसे धर्म हैं जो इच्छा पूर्वक यत्न द्वारा उत्पन्न नहीं होते अपितु हृदय में रतिभाव के होने पर बिना यत्न के ही प्रकट हुआ करते हैं।[1]

भाव -

नायक और नायिका के भृकुटि या नयनों के विचित्र व्यापारों से सम्भोग – कामना प्रकाशित करता है और हृदयगत रति विकार का किंचनमात्र परिलक्षक भी होता है, उसे भाव कहते हैं। जैसा कि इस श्लोक से विदित होता है –

ह्रिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदनं

द्वयोद्दृष्टवालापं कलयति कथामात्मविषयाम् ।

सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकं

प्रिया प्रायेणास्ते हृदय निहितातङ्क विधुरा ।।[2]

आचार्य हेमचन्द्र ने भी भाव की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है ।[3] निम्न श्लोक में राजा उदयन के कमलरूपी नयनों की कान्ति का मनोरम वर्णन किया है –

अस्तापास्तसमस्तभासि नभसः पारं प्रयाते रवा

वास्थानीं समये समं नृपजनः सायंतने संपतन् ।

सम्प्रत्येष सरोरुहद्युतिमुषः पादांस्तवा सेवितुं

प्रीत्युत्कर्षकृतो दृशामुदयस्येनदोरिवोद्वीक्षते ।।[4]

1– साहि0 दर्पण, पृ0 163

2– रत्नावली 3/4, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0सं0 वाराणसी ।

3— साहि0 दर्प पृ0 178 — "तत्रांगस्याल्पो विकारोऽनार्गतवासनात्मतया वेर्तमानं रत्याख्यं भावं भावयन् सूचयन् भाव यथा —

"दृष्टिः सालसतां विभर्ति न शिशुक्रीडासु बद्वादय .... ।"

ना0शा0 24/48, दशरू0 2/50 — "निर्विकारात्मकात्सत्वा द्भावस्तत्राद्यविक्रिया ।" । 33 ।

4— रत्ना0 1/23, ले0 डा0 बाबूराम पाण्डेय, प्रथम संस्करण वाराणसी ।

राजा उदयन को भरपूर दृष्टि से सागरिका नहीं देख पा रही है – "कथं प्रस्थिता देवी । भवतु । तदमहमपि त्वरितं गमिष्यामि । । राजानं सस्पृहं निःश्वस्य । हा धिक, हा धिक । मन्दभागिन्या मया प्रेषितुमपि चिरं न पारितोऽयं जनः । । इति राजानं पश्यन्ती निष्क्रान्ता ।"

सागरिका केवल उदयन के दर्शन मात्र से ही इतनी बेचैन हो उठती है कि उसका संताप बढ़ने लगता है फिर भी उसके दर्शन करने के लिए लालायित हैं अर्थात जब कोई कामी जन अभिलषित व्यक्ति को देख लेता है तो उसी समय से उसका मन उसे प्राप्त करने के लिए बेचैन हो उठता है यह स्वाभाविक ही है ।"

आरण्यका का घूँघट निकालने के कारण अचानक राजा से आलिंगन हो जाता है तब वह उनको उदयन न समझ कर भ्रमर समझती है तो रक्षा के लिए इन्दीवरिका को पुकारती है –

। राजानमवलोक्य सस्पृहं सलज्जं चात्मगतम् । अयं खलु स महाराजो यस्याहं तातेन दत्ता । स्थाने खलु तातस्य पक्षपातः ।

आरण्यका से उसकी सखी मनोरमा पूछती है कि महाराज ने तुम्हें देखा कि नहीं, अगर तुझे देख लिया है तब संताप करना व्यर्थ है । वह खुद भी दर्शन के उपाय के लिए बेचैन होगें । इस पर आरण्यका सोचती है – [4] । स्वगतम् । अयं सखीजनः पक्षपातेन मन्त्रयते । प्रकाशम् । अयि सखीपक्षपातिनि, देवीगुण निगलनिबद्धे[5] खलु तस्मिन् जने कुत एतत् ।

हाव –

जो नायक–नायिका के भृकुटि या नयनों के विचित्र व्यापारों से सम्भोग कामना प्रकाशित करता है और हृदयगत रति विकार का किंचनमात्र परिलक्षक

1– रत्ना0, प्रथम अंक, पृ0 40, टीका, डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी ।

2— रत्ना0, द्वि0 अंक, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0 1976, पृ0 046 —

।निःश्वस्य। हृदय प्रसीद प्रसीद। किमनेनायासमात्रफलेन दुर्लभजनप्रार्थनानुबन्धेन। ....।''

3— प्रियदर्शिका, द्वि0 अंक, पृ0 48, टीका0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, प्रका0 चौखम्भा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, प्र0सं0वि0सं0 — 2035

4— प्रिय0, तृतीय अंक, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन वाराणसी, द्वि0 सं0 वाराणसी, 1976.

5— प्रिय0 तृतीय अंक, पृ0 114—राजा देवी के गुण रूप श्रृंखला वेणी में बंधा है, यह कब सम्भव है कि वह हमारी चिन्ता करें । इसी के समान लेख मालविकाग्निमित्रम में मिलता है — "हला देवीं चिन्तयित्वा न मे हृदयं विश्वसिति ।"

भी होता है उसे भाव कहते हैं । जिस समय रंगमंच पर नायक का अभिनय चल रहा होता है तभी वासवदत्ता कहती है । सलज्जम् । भगवत्याधिकं कल्पितं काव्यम् । न खल्वहं तस्मिन्काले एकासने आर्यपुत्रेण सहोपस्थिता ।[1]

वासवदत्ता,आरण्यका व राजा के प्रेम विषयक वार्तालाप को जानकर कुपित हो जाती है तभी राजा कहता है कि हे मानिनी क्रोधित क्यों हो ? इस पर वासवदत्ता कहती है, मैं तो क्रोधित नहीं हूँ । राजा कहता है कि तुम्हारे शरीर के हरनख व क्रियायें यह बता रही हैं कि तुम क्रोधित हो । यथा – [2]

स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्ताम्रा तथापि द्युति
माधुर्येऽपि सति स्खलत्यनुपदं ते गद्‌गदा वागियम् ।
निश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कम्पेन संलक्षिताः
कोपस्ते प्रकटप्रयत्नविधृतोऽप्येष स्फुटं लक्ष्यते ।।

भाव युवती का वह अंग विकार है जो उसके प्रेम पगे हृदय की एक सार्वजनिक सूचना दिया करता है ।[3]

हाव की परिभाषा आचार्य हेमचन्द्र के शब्दों में बहुविकारात्मा भूतारकचिबुकग्रीवादेधर्मः स्वचितवृत्तिं परत्र जुहवतीं कुमारीं हावयतीति हावाः ।[4]

भाव से अग्रिम अवस्था हाव है । यहॉ रतिभाव दशा की अपेक्षा अधिक उद्‌बुद्ध हो जाता है भाव दशा में उससे वाह्य अंगों मे विकार उत्पन्न नही होता किन्मु हाव दशा में ऑख, भौं, गर्दन, ठोडी, आदि में विकार हो जाया करता है। हेवाकसस्तु श्रृगारों के स्थान पर अल्पलाप सश्रृंगारों का पाठान्तर है जिसका अर्थ है थोड़े से अलाप और श्रृंगार से युक्त हाव होता है।[5]

1– प्रिय0 , तृतीय अं पृ0 68 टीका पं0 श्रीरामचप्द्र मिश्र, चौखम्भा विद्याभवन,वाराणसी।

2– प्रिय0 तृ0 अंक, 3/13, टीका0 पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी।

3– साहि0 द0 179,

साहि0द 0, पृ0 94. भ्रू नेत्रादि विकारैरस्तु संभोगेच्छाप्रकाशकः।

भाव एवाल्पसंलक्ष्य विकारो भाव उच्यते।।"

4– माहाकवि कालिदास द्वारा रचित, कुमार सम्भव।

5– दशरू0, पृ0 51 हिवाकसस्तु श्रृंगारोहावो क्षिभविकारकृत।"

आरण्यका मुँह को दुपट्टा से ढके होती है तभी उसकी भेंट (आलिंड्गन) राजा से हो जाती है। जब उसे ज्ञात होता है तो लज्जित होती है तभी चेटी उसके समीप जाती है और आरण्यका के गाल को सहलाती हुई कहती है कि चलो आरण्यके अब शाम (ढल) हो रही है, जाती है (कदलीगृहाभिमुखमवलोक्य) हज्जे इन्दीवरिके, अतिशिशिरतया सलिलस्योरूस्तम्भ इव समुत्पन्नः तच्छनैः शनैर्गच्छावः।

आरण्यका के चले जानें पर राजा लम्बी आहें भरता है तभी विदूषक कहता है

आबद्धमुखमपीदं कण्टकितं कमला काननं तस्या।

सुकुमार पाणिपल्लव संस्पर्शमुखं कथयतीव।।[3]

मनोरमा आरण्यका का पूर्ण वृतान्त जान लेती है

लेकिन वह उससे मुँह फेर लेती है इस पर वह कहती है[4] (आरण्यका मुखमवनमयति) अयि अविस्त्रम्भशीले, किमिदानीं प्रच्छायसि । निश्वासनिभविनिर्गतो दिवसं रात्रिमपि तवानुरागोऽविरतपतत्कुसुमशरशरनिवह प्रवृत्त हुड्कारशब्द इव न भणति (आत्मगतम्)अथवा न खल्वयं काल उपालम्भस्य। तत्तावन्नलिनोपत्राण्यस्या हृदये दास्यामि।

आरण्यका का विष पान वैद्य के द्वारा दूर कर दिया जाता है फिर भी उसकी ऑखे ऐसी दिखायी पड़ रहीं है कि अभी भी विष का असर है, उसी की शारीरिक दशा का वर्णन राजा निम्न श्लोक में कर रहे हैं यथा[5]

स्वभावस्था दृष्टिर्न भवति गिरो नाति विशदा

स्वतनुः सीदत्येषा प्रकट पुलक स्वेदकाणिका।

यथा चायं कम्प :स्तनभरपरिक्लेश जनन

स्तथा नाद्यात्यस्या नियतमखिलं शाम्यति विषम्।।

1– प्रिय0,दि0 अंक, पृ0 37, टीका0 टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन वाराणसी।

2– यह आरण्यका की बहानेबाजी है, उसकी ऑखे राजा कर ऑखों से लड़ चुकी है, पुर्वानुराग उत्पन्न हो चुका है, वह चाहती है कि किसी तरह राजा को कुछ देर तक देखती रहे इसलिए उसने वैसी बात कही है। इस तरह की उक्ति शाकुन्तल में भी है

"दर्भाकुंरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।

आसीद्विवृतवदना च विमोचयन्ती शाखासु वलकलमवाक्तमपि द्रुमाणाम।।"

3– प्रिय0 2/9

4– प्रिय0, तृ0 अंक, पृ0 16, टीका0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौ0 अमर भारती प्रकाशन वाराणसी, प्र0 सं0 वि0 सं0 2035.

5– प्रिय0, 4/10 पृ0 103, टी0 श्री रामचन्द्र मिश्र,चौ0 विद्या भवन वाराणसी ।

यथा चायं कम्पः स्तनभरपरिक्लेशजनन

स्थथा नाद्याप्यस्या नियतमखिलं शाम्यति विषम् ।।[1]

हेला -

जो नायक नायिका के हृदय में रतिभाव के उद्रेक पर निर्भर करता है और हेला[2] भाव के उन्मेष का परिणाम होता है उसे हेला कहते हैं । यथा –

देवि त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा

पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम् ।

क्षुत्वा त्वपरिवार वार वनिता गीतानि भृङ्गाङ्ना

लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः सञ्जात लज्जाइव ।।[3]

जब किसी अभिलषित वस्तु की प्राप्त करने की इच्छा होती है तो व्यक्ति चित्रित कर देता है । यहॉ पर यही हाल सागरिका का है । वह उदयन को काम पिपासा की दृष्टि से देखती है । उसके चित्र को अलंकृत कर उसी को देखती रहती है लेकिन अपनी प्रिय सखी के आ जाने पर वह उसको छिपा लेती है । उसकी सखी जबरदस्ती चित्रपट को खींच लेती है तथा उससे पूछती है कि इसमें कौन चिंत्रित है जिस पर सागरिका कहती है –[4] (सलज्जम्) संखि, प्रवृत्तमदन महोत्सवे भगवाननङ्गः ।

1– प्रिय0, टीका पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, द्वि0 सं0 वाराणसी, पृ0 118 –

इस श्लोक में राजा ने विष के संकान्ति होने पर जो स्थिति होती है उसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है । ऑखें झपने लग जाती हैं, गद्‌गद वाणी निकलती है, रोमांच तथा स्वेद का उदय होता है, शरीर में कम्प होता है इस वर्णन में खूबी यह है कि सभी बातें सात्विक भाव के रूप में ही होती हैं । इसी वस्तु को व्यंग्य करने के लिए इस श्लोक में "हले सस्मितम् लिखा है ।"

2— ना0शा0 24/11, दश0 2/52 — "स एव हेला सुव्यक्त श्रृंगार रस· सूचिका ।"

3— रत्ना0 1/25, पृ0 52, व्या0 डॉ0 राजेश्वर (राजू) शास्त्री मुसलगॉवकर, चौ0 संस्कृत संस्थान वाराणसी प्र0 सं0

4— रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 50, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, वाराणसी, द्वि0सं0 ।

सुसंगता चित्रपट को लेकर रति के बहाने सागरिका का चित्र भी अंकित कर देती है तथा बहाने से पूछती है कि सखि सारी बात सच–सच बतलाओ जिस पर सागरिका बतलाती है (सलज्जा–स्वागतम्) ननु ज्ञातास्मि प्रिय सख्या (सुसंङ्गतां हस्ते गृहीत्वा प्रकाशम्) प्रिय सखि, महती खलु में लज्जा । तत्तथा कुरू यथा न कोऽप्यपर एतं वृत्तान्तं जानाति ।[1]

दशरूपक में नायिका के सभी अंगों में ऐसे विकारों के प्रकट होने का वर्णन किया गया है जिनसे उसके हृदय का प्रेमभाव स्पष्ट रूप से सूचित होता है, यही हेला का स्वरूप है । इस प्रकार भाव, हाव और हेला तीनों शरीरज विकार हैं । युवती के हृदय में स्थित रतिभाव से उत्पन्न होने वाला प्रथम अंग विकार जो बाह्य रूप में प्रकट नहीं होता है, भाव है तथा वही जब ऑख आदि कुछ अंगों में विकार उत्पन्न कर देता है तो हाव कहलाता है और जब प्रायः समस्त अंगों में विकार उत्पन्न करके रतिभाव की सूचना देता है तब हेला[2] कहलाता है । यथा –

"तथा झटित्यस्याः प्रवृत्ताः सर्वाङ्ग विभ्रमा स्तनोद्‌भेवे ।
संशयित बालभावा भवति चिरं यथा सखीनामपि ।।"[3]

नायक – नायिका के हृदय में रति वीणा के उत्पाद – उद्धार और औन्यमुख विश्लेषण है। महाकविकृतियों की नायिकाओं में यौवनालंकारों का जो चित्रण है उसमें उन तीन अलंकारों का वास्तविक चित्रण स्वरूप सौन्दर्य स्पष्ट परिलक्षित होता है ।[4]

1– रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ050, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी द्वि0सं0 वाराणसी ।

2– साहि0 दर्प0 – "हेलात्यन्तसमालक्ष्यविकारः स्यात् स एव तु ।"

3– दशरू0 – 34

4– ना0दर्पण – 4 वे विवेक – "भवति हि तथा भूतं वाणादि वैचित्रगुणभ्योद बुद्वऽयमन्तः काम प्रदीपोऽस्याः इत्युत्तमप्रकृतिम्च नायिकेयमिति सहृदयस्य ,निश्चय इति ।"
ना0शा0 – "य एव भावाः सर्वेषां श्रृंगाररसंश्रया ।
समाख्याता बुधैर्हेला ललितामिनयात्मिका ।।"

आरण्यका अपनीं दासी के साथ चली जाती है तो राजा उसके स्पर्श को याद करके कहता है –

आबद्धमुखमपीदं कण्टकितं कमलकाननं तस्याः ।

सुकुमार पाणिपल्लवसंस्पर्शसुखं कथयतीव ।।[1]

शोभा –

जो रूप, यौवन, सौकुमार्य अथवा सुख–भोग से सम्भूत नायक और नायिका के शरीर का सौन्दर्य कहा जाता है, उसे शोभा[2] कहते हैं । उदयन वासवदत्ता के सौन्दर्य और गुणों पर इतने मोहित हुए हैं कि स्वयं को भी भूल गये हैं । यथा[3] –

कामेनोज्जयिनी[4] गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते

दृष्टवा स्वैरभवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः ।

तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्वा वयं

पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः ।।

वासवदत्ता व्रत (उपवास) आदि धारण किये हैं जिसके कारण कुछ दुर्बल सी हो गयी है फिर भी उसकी शारीरिक सुन्दरता में और भी निखार आ गया है जिसकी सुन्दरता का वर्णन निम्न श्लोक में राजा कर रहे हैं । यथा –

क्षामां मंगलमात्रमण्डलभृतं मन्दोद्यमालापिनी

मापाण्डुच्छबिना मुखेन विजितप्राप्तस्तनेन्दुद्युतिम् ।

सोत्कण्ठां नियमोपवास विधिना चेतो ममोत्कण्ठते

तां द्रष्टुं प्रथमानुराग जनितावस्थामिवाद्य प्रियाम् ।।[5]

1– प्रिय0 2/9, व्या, पं0 रामनाथ त्रिपाठी, चौ0 अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, प्र0सं0 वि0सं0 2035

2— ना0शा0 22—26 "रूपयौवनलावण्ये रूपभोगोपब्रंहिते ।

अलंकरणमङ्.नां शोभेति परिकीर्तिता ।"

साहि0 दर्पण 181.

3— स्वप्नवासवदत्तम् 4/1, व्या0 गणेशदत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, प्र0 सं0, सुभाष बाजार मेरठ ।

4— स्वप्नवासव0 — "कामदेवेन मदनो मन्मथो मारः प्रद्युम्नो मीन केतनः ।

कन्दर्पो दर्प कोऽङ्ग कामः पञ्चशरः स्मरः । शम्बरारिर्मनसिजः कुसुमेषु रनन्यजः पुष्पधन्वा रतिपति र्मकरध्वज आत्मभूः ।"

5— प्रिय0 2/9, व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौ0 अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, प्र0 सं0 वि0 सं0 2035.

आरण्यका के सौन्दर्य को दूर से ही देखकर विदूषक राजा से कहता है कि वह कौन स्त्री है जो हर प्रकार से सुन्दर दीख रही है । यथा –

पातालाद्भुवनाव लोकनपरा किं नाग कन्योत्थिता ।
मिथ्या तत्खलुदृष्टमेव हिमया तस्मिन्कुतोऽस्तीदृशी ।
मूर्ता स्यादिह कौमुदी न घटते तस्या दिवा दर्शनं
केयं हसततलस्थितेन कमलेनालोक्यते श्रीरिव[2] ।।[1]

इतना ही नहीं वह उसके सौन्दर्य की बड़ी खूबी से प्रशंसा करता हुआ कहता है, वह व्यक्ति धन्य होगा जो इसका शरीर स्पर्श करने वाला सुख का पात्र होगा ।

विदूषक – भो वयस्य, पश्य पश्य । आश्चर्यमाश्चर्यम् । एषासलीलचलत्कर पल्लव प्रभाविस्तृतेनापहसितशोभं करोति कमलवनमपचिन्वती ।[3]

राजा – वयस्य, सत्यमेवैतत् । पश्य –[4]

अच्छिन्नामृत बिन्दुवृष्टि सदृशीं प्रीतिं ददत्या दृशा
याताया विगलत्पयोधरपटाद्द्रष्टव्यतां कामपि ।
अस्याश्चन्द्रमसस्तनोरिव करस्पर्शास्पदत्वं गता
नैते यन्मुकुली भवन्ति सहसा पदमास्तदेवाद्भुतम् ।।[5]

1– प्रिय 2/6, टीका0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, प्र0 सं0वि0 सं0 2035, वाराणसी ।

2– प्रिय0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, द्वि0 सं0, वाराणसी, पृ0 30– "हस्तितल स्थितेन करयोनिहितेन स्वामिन्याः कृतेऽवचितेन कमलेन (उपलक्ष्यमाणा) श्री लक्ष्मीरिव आलोक्यते ।

3– प्रिय0, पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, प्र0 सं0 वाराणसी, पृ0 43

4– प्रिय0 2/7, पृ0 33, टी0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, प्र0 चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी द्वि0सं0 1976.

5– प्रिय0 पृ0 30– "यहाँ पदगत उपयुक्तता दोष है,क्योंकि पदम् शब्द यद्यपि पुल्लिंग भी है तथा उसका कवियों ने पुल्लिंग में प्रयोग नहीं किया । साहित्य दर्पण में लिखा है – "अप्रयुक्तत्वं तथा प्रसिद्धावपि कविभिमाऽहतत्वम् यथा भाँति पयः पुल्लिंग पद्मा शब्दों प्रयुक्तता दोषाभाव हतीति भावः, "वा पुंसि पद्म "इत्यमरकोशादो पक्षे पुल्लिंगस्य प्रसिद्धत्वेऽपि कविभिर प्रयुक्तत्वेनानां दृतत्वात तत्प्रयोगस्य प्रयोजनानु सन्धानत्यग्रतया सम्यानां रसरूप विलम्बेन प्रतीतेः ।"

इति तट्टीका च ।

आरण्यका पदचाप को सुनकर दासी को पुकारती है, दुष्ट भ्रमर मुझे व्याकुल कर रहे हैं । इस पर वह राजा को पकड़ती है । राजा गले से लगा लेता है । आरण्यका मुँह पर से ओढ़नी को हटाकर राजा को नहीं देखती, भ्रमर को देखती है –

राजा – (स्वोत्तरीयेण भ्रमरानिनवारयन्)

अयि विसृज विषादं भीरू भृङ्गास्तवैते
परिमल रसलुब्धा वक्त्रपद्मे पतन्ति ।
विकिरसि यदि भूयस्त्रासलोलायताक्षी
कुवलयवन लक्ष्मीं तत्कुतस्त्वां त्यजन्ति ।।[1]

आरण्यका के चले जाने पर राजा आहें भरता हुआ कहता है –

हृत्वा पदमवनद्युति प्रियतमेवेयं दिनश्रीर्गता
रागोऽस्मिन्मय चेतसीव सवितुर्बिम्बेऽधिकं लक्ष्यते ।
चक्रह्वोऽहमिव स्थितः सहचरीं ध्यायन्नलिन्यास्तते
सञ्जाताः सहसा ममेव भुवनस्याप्यन्धकारा दिशः ।।[2]

उदयन द्वारा वासवदत्ता के सौन्दर्य की प्रशंसा निम्न प्रकार से की गयी है –

कुसुम सुकुमारमूर्तिर्दधती नियमेन तनुतर मध्यम् ।
आभाति मकरकेतोः पार्श्वस्था चापयष्टिरिव ।।[3]

चित्रपट को देखकर सागरिका के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए विदूषक से राजा उदयन का यह कथन –

विधायापूर्वपूर्णेन्दुमस्या मुखमभूद् ध्रुवम् ।
धाता निजासनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः ।।[4]

1– प्रिय0 2/8, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी ।

2– प्रिय0 2/10, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी ।

3– रत्ना0 1/19, व्याख्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0सं0 1976

4– रत्ना0 2/10, व्याख्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल, बनारसीदास, प्र0 सं0 वाराणसी ।

राजा उदयन वासवदत्ता को देखकर उसके शारीरिक सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं –

प्रत्यग्रमज्जन विशेष विविक्तकान्तिः

कौसुम्भरागरूचिरस्फुरंदशुकान्ता ।

विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती

बालप्रवालविटपिप्रभवा लतेव ।।[1]

राजा के द्वारा शारीरिक शोभा[2] का अति सुन्दर वर्णन इस प्रकार किया गया है –

देवि त्वन्मुखपङ्कजेनशशिनः शोभातिरस्कारिणा

पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम् ।

श्रुत्वा त्वत्परिवारवार वनितागीतानि भृङ्गाङ्गना

लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः सञ्जात लज्जा इव ।।[3]

क्रोध में स्त्री का मुख लाल हो जाता है उसी का वर्णन करते हुए राजा प्रसन्नता के साथ कह उठता है –

उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररूचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा

दायासं श्वसनोद्गमैरविरतैरातन्वतीमात्मनः

अद्योद्यानलतामिमां समदनां गौरीमिवान्यां ध्रुवं

पश्यन्कोपविपाटलद्युतिमुखं देव्याः करिष्याम्यहम् ।।[4]

यहाँ तक कि राजा ओट से सागरिका को देखकर कहता है कि लगता है, स्त्री ने जीने की आशा को छोड़ दिया है क्योंकि वयस्य, श्लाह्ययौवना प्रियतममनासादयन्त्या जीवितनिरपेक्षयोक्तम् ।[5]

1– रत्ना0, 1/20, व्या0डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी ।

2– ना0शा0 24/25, दशरू0 2/53 – "रूपोपभोगतोरूण्यैः शोभाडानां विभूषणं ।"

3– रत्ना0, 1/25, पृ0 43, व्या0 पं0 परमेश्वरदीन पाण्डेय, चौ0 सुरभारती प्र0 वाराणसी च0सं0 1989.

4– रत्ना0, 2/4, पृ0 60, व्या0 पं0 परमेश्वरदीन पाण्डेय चौ0, सुरभारती प्रका0 वाराणसी चतुर्थ सं0 1989 वाराणसी ।

5– रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 66, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

राजा सागरिका के सौन्दर्य को देखकर इतने लालायित हो जाते हैं कि वह उसके शारीरिक अंगों को बारीकी से व्यक्त करते हैं । यथा[1] –

कृच्छाद्रूरुयुंग[2] व्यतीत्य सुचिर[3] भ्रान्त्वा नितम्बस्थले

मध्येऽस्यास्त्रिवलीतरंङ्ग[4]विषमें निस्पन्दतामागता ।

मद्दृष्टिस्तृषितेव संप्रति शनैरारूह्य तुंङ्गौ स्तनौ[5]

साकाङ.क्षं मुहुरीक्षते जललव प्रस्यन्दिनी[6] लोचने।।

उपर्युक्त श्लोक में कवि ने बड़ी चतुरता के साथ रत्नावली के शरीर के गठन का सुन्दर वर्णन किया है।

1– 2/11 , व्याख्या0 डा0 वैजनाथ पाण्डे प्रका0 मोतीलालल बनारसीदास, प0सं0 वाराणसी ।

2– केले का वृक्ष जड़ में मोटा फिर क्रमशः पतला होता है। उस पर यदि किसी को चढ़ना हो तो बड़ी कठिनाई होती है. । सागरिका की जॉघें केले के खम्भे के समान हैं । अतः उदयन की ऑखें को उनके सहारे ऊपर चढ़ना बड़ा कठिन हो रहा है ।

3– इस कथन से सागरिका के नितम्ब स्थल की विशेषता बतलाई गयी है । अत्यन्त सुन्दरी रमणियों के नितम्ब मोटे एवं विशाल होते हैं।

4– मोटा एवं उभरा पेट गणेश की शोभा भले ही बढ़ावे किन्तु स्त्रियों के सौन्दर्य का तो यह विनाशक ही है । दुबली–पतली एवं स्ञियों के पेट में ही तीन रेखायें हुआ करती हैं । इनमें सौन्दर्य में चार चॉद लग जाते हैं । इस कथन में सागरिका के मध्य भाग को अत्यन्त क्षीण निदृष्ट किया गया है ।

5– जंगल में भटका हुआ व्यक्ति प्यास से तड़पने लगता है और उसे कहीं जल के दर्शन नहीं होते तो वह किसी झरने का पता लगाने के लिए पर्वत की चोटी या किसी वृक्ष पर चढ़कर जलाशय का पता लगाता है । राजा के नेत्र बड़ी मुश्किल से जॉघों पर चढ़े हैं, नितम्ब में भटके हैं, त्रिवली में अटके हैं अतः प्यासे हैं । यही कारण है कि अत्यन्त ऊॅचे स्तनों पर चढ़कर सजल नेत्रों को देख रहे है, इस कथन से स्तनों की उच्वता सिद्ध हो गयी ।

6– इस कथन से उसकी व्याकुलता सिद्ध की गयी है ।

मोटे–मोटे विशाल स्तनों एवं नितम्बो[1] का होना नारी सौन्दर्य का लक्षण है । यह सौन्दर्य उस समय द्विगुणित हो जाता है जब कि उस स्त्री की कमर अत्यन्त पतली और भुजायें लता की डाली की तरह दुर्बल हों। सागरिका मे ये सभी विशेषताएं मौजूद है , राजा सागरिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहता है कि मन को खुश करने वाली प्रिया तुम मेरे समीप आकर गले लग जाओ जिससे कि तुम्हारे अंगों को शीतलता मिले तथा मुझे भी अपरिमित सुख मिले ।[3]

कान्ति -

उपर्युक्त शोभा ही काम से आप्यायित होकर कान्ति बन जाती है । स्मरोद्रेक से अति समृद्ध शोभा का ही नाम कान्ति[4] है ।

1– रत्ना0, 2/13, व्याख्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी –

परिम्लानं पीनस्तनजघनसङ्गादुभयात

स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम् ।

इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः

कृशाङ्गयाः संतापं वदपि नलिनी पत्रशयनम् ।।

2– रत्ना0, 2/15 –

परिच्युतस्तत्कुचकुम्भ मध्यात्

किं शोषमायासि मृणालहार ।

न सूक्ष्मतन्तोरपि तावकस्य

तत्रावकाशो भवतः किमुस्यात् ।।

3– रत्ना0, 3/11–

"शीतांशुर्मुखमुत्पले तव दृशौ पदमानुकारौ करौ

रम्भागर्भ निभं तथोरूयुगलं बाहू मृणालोपमौ ।

इत्याह्लादकराखिलाङ्गि. रभसान्निशंकमालिङ्.य् मा

मङ्.ानि त्वमनङ्गतापविधुराण्येह्येहि निर्वापय ।।

4– साहि0 दर्पण, तृतीय परिक्षेद (95) – "सेवकानितर्मन्यथाप्यायितयुतिः ।

मन्मथोन्मेषेणातिविस्तीर्णा शोभेव कान्तिरूच्यते ।"

आरण्यका के चले जाने पर राजा काफी दुःखी होता है तथा एकान्त में बैठा हुआ अपनी प्रिया का ध्यान करते हुए निम्न प्रकार से तुलना करता है यथा –

हत्वा पद्मवनद्युतिं प्रियतमेवेयं दिन श्रीर्गता

रागोऽस्मिन्मम चेतसीव सवितुर्बिम्बेऽधिकं लक्ष्यते ।

चक्राह्वोऽहमिव स्थितः सहचरीं ध्यायन्नलिन्यास्तटे

सञ्जाताः सहसा ममेव भुवनस्याप्यन्धकारा दिशः ।।[1]

राजा को देखकर आरण्यका भी उन्हें प्राप्त करने के लिए चिन्तित रहती है । वह कामावस्था का अभिनय करती हुई कहती है – (निःश्वस्य) हृदय, दुर्लभजनं प्रार्थयमानं त्वं कस्मान्मांदुःखितां करोषि ।[2]

जिस प्रकार भंवरा जब तक कमल के रस का पान नहीं कर लेता तब तक धीरज नहीं होता, उसी प्रकार यहाँ पर आरण्यका की यही दशा होती है –

किमेतेनासम्भावितेन । तदेहि । अधिकं खलुशरदातपेन

सन्तप्तान्यद्यापि न मेऽङ्गानि सन्तापं मुञ्चति ।[3]

विदूषक जब आरण्यका की सखी मनोरमा से बताता है कि हमारे महाराज की दशा अत्यन्त बेचैन है जब से उन्होनें आरण्यका को देखा है । इस पर मनोरमा कहती है कि बिल्कुल यही दशा हमारी सखी (आरण्यका) की है ।

वसन्तक, अलं शंकया । यादृश्यारण्यकायाः कृते आत्मनः

प्रियवयस्यस्यावस्था त्वया वर्णिता, ततो द्विगुणतरा भर्तुरपि कृते मम प्रियसख्या अवस्था । तत्पश्य पश्य ।[4]

आरण्यका बड़ा सुन्दर गीत गाती है –

अभिनवरागक्षिप्ता मधुकरिका वामकेन कामेन

उत्ताम्यति प्रार्थयमाना द्रष्टुं प्रियदर्शनं दयितम् ।।[5]

1– प्रिय0, 2/10, टीका0 पं0 श्री रामचनद्र मिश्र, प्रका0 चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, अंक द्वि0, द्वि0 सं0

2– प्रिय0, तृतीय अंक, पृ0 42.

3– प्रिय0 तृतीय अंक, पृ0 44, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

4– प्रिय0 तृतीय अंक, पृ0 49, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

5– प्रिय0, तृतीय अंक, पृ0 65, टीका0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौ0 अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, प्र0 सं0, प्र0 सं0, वि0सं0 2035.

कामदेव के असह्य[1] पुष्पबाण का प्रहार शिव जैसे योगी को धैर्यच्युत[2] कर देता है । ऐसे कामदेव की विषम शिरव्यथा नवयौवना के लिए और असह्य होती है । इस असह्य कामानल में जलती हुई कामिनी अपनी सखियों के समक्ष अपने मन की बात बता देती है । राजा सुसंगता और सागरिका के वार्तालाप को सुनकर अपने को धन्य मानते हैं कि ऐसा मनोहारी वर्णन सुनने को मिल रहा है । यथा –

दुर्वारां कुसुमशरव्यथां वहन्त्या

कामिन्या यदभिहितं पुरः सखीनाम् ।

तद्भूयः शिशुशुकसारिका भिरूक्तं

धन्यानां श्रवणपथातिथित्वमेति ।।[3]

कवि ने सागरिका की सभी विशेषतायें जो उसमें मौजूद हैं, व्यक्त की हैं –

स्थितमुरसि विशालं पद्मिनीपत्रमेतत्

कथयति न तथान्तर्मन्मथोत्थामवस्थाम् ।

अतिगुरूपरितापम्लापिताभ्यां यथास्याः

स्यनयुगपरिणाहं मण्डलाभ्यां ब्रवीति ।।[4]

(नाट्येन मृणालिकां गृहीत्वा) भो वयस्य,

अयमपरस्तस्या एव पीनस्तनोष्मक्लिश्यमान कोमल मृणालहारः । तत्प्रेक्षतां भवान् ।

राजा – (गृहीत्वोरसि विन्यस्य) अयि जडप्रकृते !

परिच्युतस्त कुचकुम्भमध्यात्
किं शोषमायासि मृणालहार ।[5]
न सूक्ष्मतन्तोरपि तावकस्य
तत्रावकाशो भवतः किमु स्यात् ।।[6]

1– अभि० 2–3–1– "तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवाऽपि रात्रावपि ।

निर्घृण तपति वलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथाया अंङ्गानि ।।

2– कु०सं०, 3–10– "कुर्याम् हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिं

के मम धन्विनोऽन्ये ।।"

3– रत्ना०, 2/8, व्या० डा० बैजनाथ पाण्डेय,प्रका० मोतीलाल बनारसीदास, प्र० सं० वाराणसी ।

4– रत्ना०, 2/14, द्वितीय अंक, व्या० डा० बैजनाथ पाण्डेय, प्रका० मोतीलाल बनारसी दास, प्र० सं० वाराणंसी ।

5– दश०, 1/34 – प्रतिमुख सन्धि का भेद – "प्रगमनम्" उत्तरावाक्प्रगमनम् ।

6– तुलना कु० सं०,1/40–तुलनीय– "मध्ये यथा श्याममुखत्य तस्य मृणालसूत्रान्तर ममप्यलभ्यम् ।"

दीप्ति -

अति विस्तीर्ण कान्ति ही दीप्ति नाम[1] से अभिहित होती है । राजा आरण्यका के सौन्दर्य को देखकर अधिक मोहित हो जाता है । उसे समय का आभास तक नहीं होता फिर भी वह उसकी कान्ति के विषय में कहता है –

हत्वा पद्मवनद्युति प्रियतमेवेयं दिनश्रीर्गता

रागोऽस्मिन्मम चेतसीव सवितुर्बिम्बेऽधिकं लक्ष्यते ।

चक्राह्वोऽहमिव स्थितःसहचरीं ध्यायन्नलिन्यास्तटे

सञ्जाताःसहसा ममेच भ्रुवनस्यायन्धकार दिशः ।।

(ततः प्रविशत्यासनस्था कामावस्थां नाट्यन्त्यारण्यका)

आरण्यका– (निःश्वस्य) हृदय, दुर्लभजनं प्रार्थयमानं त्वं कस्मान्मांदुःखितां करोषि ।[3]

मनोरमा – वसन्तक, अलं शंकया । यादृश्यारण्य कायाः कृते आत्मनः प्रियवयस्यस्यावस्था त्वया वर्णिता, ततो द्विगुणतरा भर्तुरपि कृते मम प्रियसख्या अवस्था । तत्पश्य पश्य ।[4]

महारानी वासवदत्ता राजा व आरण्यका के प्रेम विषय वार्ता को जानकर ईर्ष्या करती है जब आरण्यका को यह पता चलता है कि मेरी प्रेम विषयक बात महारानी ने जान ली । इस पर वह गुमसुम सी रहने लगी, उसकी सखी मनोरमा इस विषय में बड़ी चिन्तित होती है कि कहीं आरण्यका अपने शरीर को कुछ कर न ले । इसी विषय में वह कांचनमाला से कहती है ।

मनोरमा – चिरं खलु में आरण्यका सकाशादागतायाः । दृढंचनिर्विण्णा सा तपस्विन्यात्मना जीवितेन कदाचिदत्याहितं भवेत । तत्तत्रेव गच्छामि ।[5]

1–साहि दर्पण, तृतीय परिच्छद 96 – कान्तिरेवातिविस्तीर्णादीप्तिरित्यभिधीयते ।''

भा0 प्र0– ''कान्तिरेवोनभोगेन देशकाल गुणादिभिः ।

उद्दीप्यमाना विस्तारं याता दीप्तिरिति स्मृता ।।''

2– प्रिय0,2/10 द्वि अंक,पृ040, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन वराणसी

3– प्रिय0, तृ0 अंक, पृ 42, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 चिद्याभवन, वराणसी,द्वि0 सं0 1976

4– प्रिय0 तृ अंक, पृ65, व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री,चौ0 अमर भरती प्रकाशन वाराणसरी, प्र0 सं0, वि0 सं0 2035.

5– प्रिय0, चतुर्थ अंक, पृ0 82, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र चौ0 विद्याभवन, द्वि0 सं0 वाराणसी।

मम मन्दभागिन्या मरणमेवानेन दुर्निमित्तनोपस्थितम् ।

फलकमवलोक्य—तद्यावन्न कोऽनीहागच्छति तावदालेख्य समर्पितं

तमभिमतं जने प्रेक्ष्य यथासमीहितं करिष्यामि – (सावष्टम्भमे

कामना भूत्वा नाट्येन फलकं गृहीत्वा निःश्वस्य) यद्यपि

मेऽतिसाध्वसेन वेपतेऽयमतिमात्रमग्रहस्तथापि नास्ति तस्य

जनास्यान्यो दर्शनोपाय इति यथा तथा लिरव्यैनं प्रक्षिष्ये ।[1]

यहाँ निम्न श्लोक में सागरिका के पत्तों की शैय्या उसके कृशांगी शरीर के विषय में बतला रही है–

परिम्लानं पीनस्तनजघनसंङ्गादुभयत –

स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनम प्राप्यहरितम् ।

इदं व्यस्ततन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः

कृशाङ्ग्.याः संतापं वदति नलिनीपत्रशयनम् ।।[2]

माधुर्य -

नायक–नायिका की रमणीयता जो समस्त अवस्थाओं में अक्षुण्ण बनी रहती है वह माधुर्य[3] है उदयन का वासवदत्ता के प्रति कितना प्रगाढ़ प्रेम है, निम्न श्लोक में देखने को मिलता है[4] –

श्लाध्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां

कालक्रमेण पुनरागतदारभारः ।

लावाणके हुतवहेन हृताङ्ग्.यष्टिं

तां पद्मिनीं[5] हिमहतामिव चिन्तयामि ।।

1–रत्ना0 द्वि0 अंक, पृ048, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

2– रत्ना0 2/13.

3–साहि0 दर्पण, तृतीय परिक्षेद 96 "सर्वावस्था विशेषेषु मार्धुर्य रमणीयता ।"

4– स्वप्नवासवदत्तम्, 5/1 पृ0 72, व्या0 गणेश दत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, सुभाष बाजार, मेरठ, प्र0 सं0 1968.

5– रघु0, 8–45– "हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनां मता ।"

मेघदूत 2–23 – " जातां मन्ये शिशिरमथितां पदिमनी वान्यरूपाम ।"

विदूषक महाराज को आरण्यका की रमणीयता के विषय में निम्न प्रकार से दर्शाता है –

(सकौतुम्) भो वयस्य, पश्य पश्य! कैषा कुसुमरिमलगन्धवेणिमधुकरावलि विद्रुमलतारूणहस्तपल्लवा उज्ज्वलत्तनुकोमल बाहुलता सत्यं प्रत्यक्षचरीवोद्यान देवता स्त्री दृश्यते ।

राजा – (सकौतुकं विलोक्य) वयस्य, निरतिशयस्वरूपशोभा जनित बहु विकल्पेयम् । यत्सत्यमहमपि नावगच्छामि । पश्य –

पातालाद्भुवनावलोकनपरा किं नागकन्योत्थिता ।
मिथ्या तत्खलु दृष्टमेव हि मया तस्मिन्कुतोऽस्तीदृशी
मूर्ता स्यादिहं कौमुदी न घटते तस्या दिवा दर्शनं
केयं हस्ततलस्थितेन कमलेनालोक्यते श्रीरिव ।।[1]

रमणीयता के विषय में दर्शाता है – भो वयस्य, पश्य पश्य। आश्चर्यमाश्चर्यम् । एषा सलीलचलत्कर पल्लव प्रभा विस्तृतेनापहसित शोभं करोति कमलवनमपचिन्वती ।

राजा – वयस्य, सत्यमेवैतत् । पश्य –

अच्छिन्नामृतबिन्दुवृष्टिसदृशीं प्रीतिं ददत्या दृशा
याताया विगलत्पयोधरपटाद्दृष्टव्यतां कामपि ।
अस्याश्चन्द्रमसस्तनोरिव कर स्पर्शास्पदत्वं गता
नैते यन्मुकुली भवन्ति सहसा पद्मास्तदेवाद्भुतम् ।।[2]

जिस समय आरण्यका अपने दुपट्टे से मुँह को ढके होती है, तभी राजा अपनी चादर से भ्रमरों का निवारण करता हुआ कहता है –

अयि विसृज .... त्यजन्ति ।।[3]

आरण्यका का राजा उद्यन से आलिंगन हो जाने पर लज्जा का अनुभव करती है, उसकी दासी (चेटी) यह सब जानते हुए भी उसके मुख की रमणीयता के विषय में कहती है – (उपसृत्य कपोलौ स्पृशन्ती) हञ्जे आरण्यके, कमलसदृशस्य तव वदनस्यायं दोषो यन्मधुकरा एवमपराध्यन्ति। (हस्ते गृहीत्वा) तदेहि गच्छावः । परिणतो दिवसः ।[4]

1– प्रिय0, 2/6, पृ0 29, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौ0 विद्याभवन, वाराणसी द्वि0सं0 ।

2– प्रिय0 2/7, पृ0 33, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौ0 विद्याभवन, वाराणसी, द्वि0 सं0 ।

3– प्रिय0 2/8, पृ0 35, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौ0 विद्याभवन, वाराणसी, द्वि0 सं0 ।

4– प्रिय0, द्वि0 अंक, पृ0 49, टीका0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौ0 अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, प्र0सं0 वि0सं0 वि0 सं0 2035.

जब आरण्यका आत्महत्या करने के लिए विषपान कर लेती है, तब महारानी को यह मालूम होता है कि यह मेरी बहिन है तो वह उसको बचाने के लिए महाराज से कहती है कि महाराज मेरी बहिन को अब आप की बचा सकते हैं । राजा उसको सात्वना देता है तथा उसके मुख की रमणीयता के विषय में निम्न प्रकार कहता है[1] –

सञ्जातसान्द्रमकरन्दरसां क्रमेण

पातुं गतश्च कलिकां कमलस्य भृगः ।[2]

दग्धा निपत्य सहसैव हिमेन चैषा

वामे विधौ न हि फलन्त्यभिवाञ्छितानि ।।

वासवदत्ता व्रत आदि के कारण क्षीण सी हो गयी है ,

फिर भी वह मनोरम लगती है । यथा –

कुसुमसुकुमारमूर्तिं र्दधती नियमेन तनुतरं मध्यम् ।

आभाति मकरकेतोः पार्श्वस्था चापयष्टिरिव ।।

स्त्री जब देखती है कि उसका पति अन्य किसी कामातुर स्त्री को गौर[2] से देख रहा है तब उसका मुख क्रोध से किंचित लाल वर्ण का हो जाता है । राजा के कहने का भाव यह है कि लता पालने एवं उसको विकसित करने की कला में मैं रानी को जीत चुका हूँ । महारानी जब देखेगीं कि मैं विजय के गर्व के साथ अपनी लता को देख रहा हूँ तब वे मेरे ऊपर उसी तरह क्रुद्ध हो जायेगीं, मानो मैं स्त्री को कामातुर दृष्टि से देख रहा हूँ । यथा –

उददामोत्कलिकां ....करिष्याम्यहम् ।[5]

1– प्रिय0, 4/8, पृ0 120, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी ।

2– प्रिय0, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी, पृ0 120, तुलना –

"रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः ।

इत्थं वियिन्तयति कोशगते द्विरेफे हा हन्त । हन्त !! नलिनीं गज उज्जहार ।।"

3– रत्ना0, 1/19, ले0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, प्र0 सं0 1980.

4– रत्ना0–कामदेव का धनुष फूलों से बना हुआ है, कहा जाता है कि यही कारण वह पुष्प धन्वा भी है ।

5– रत्ना0 2/4, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

सागरिका के लावण्य को देखकर उदयन की दृष्टि प्रत्येक अंग पर उलझ सी रही है । यथा –

कृच्छादूरूयुगं .... लोचने ।।[1]

जिस प्रकार समुद्र से उत्पन्न होने वाली लक्ष्मी में अद्वितीय कान्ति[2] है, उसी प्रकार समुद्र से प्राप्त होने वाली सागरिका में अद्वितीय रमणीयता है । जैसे विष्णु ने लक्ष्मी[3] को अपने हृदय में रखा है, उसी प्रकार इस सागरिका को मैं सर्वदा अपने हृदय में रखूँगा । राजा से प्रेम करने वाली युवती के मन में यह संदेह" रहता है कि मुझे प्यार करेगें या नहीं । राजा उदयन सागरिका को "श्री" कहकर उसे अपने हृदय में रखने का विश्वास दिलाते हैं ।

यथा –

श्रीरेषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः ।

कुतोऽन्यथास्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रवः ।।[5]

राजा उदयन सागरिका के विरहानल में इतने अधिक जल रहे हैं कि अपने उद्दाम विरह पावक की ज्वाला को छिपाने[6] के लिए एकान्त में महल की अटारी पर विराजमान हैं । सागरिका से मिलने के लिए अपने व्याकुल हृदय को समझा रहे हैं कि हृदय शान्त हो जाओ । मेरी त्रुटि के कारण तुम अनल में जलते रहते हो । कदलीगृह में सुसंगता के कहने पर मैंने कामानल की शान्ति के लिए ही सागरिका का पारिजात पल्लव के सदृश कर ग्रहण किया था । उसका कर गाढ़े चन्दन

1– रत्ना0, 2/11, टीका0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्र0सं0 1980•

2– श्रीमद् भा0 कु0, 8/8/8– "ततश्चाविर्भूत साक्षच्छीरमा भगवत्परा ।

रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत सौदामनी यथा ।।

3– श्री मद्र 0,88/25– " तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या वक्षोनिवासमक रोत् परमं विभूतेः ।"

4– अभि0 शा0 ,3/16– " हला किमन्तः पुरबिरहपर्युत्सुकस्य राजर्षेस्परोधेन ।"

5– रत्ना0,2/18,टीका0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास ,वाराणसी, प्र0सं01980.

6– न0ध0,1/51– "मृषाविषादाभिनयादयं क्वचिज्जुगोप निःश्वासतर्ति वियोगजाम।

विलेपनस्याधिकंचन्द्र भागताविभावनाच्यापललाय पाण्डुताम् ।।"

रस के समान शीतल और सुरभित थी । यह मादक कर भाग्य से ही प्राप्त हुआ था ,क्योंकि उत्कट प्रेम के उदय होने पर ही मनोहारिणी रमणी के कर का स्पर्श होता है। उसका वह कर देर तक मेरे हाथ में था , उस कर को हृदय पर रखकर मुझे कामानल को शान्त कर लेना चाहिए था , लेकिन उस क्षण मैं मूढ़ (कर्तब्याकर्तव्य विमूढ.) हो गया था उसके कर स्पर्शजन्य आनन्द ने ही मेरी इन्द्रियों की चेतना छीन ली थी । इसलिए अमृत रस की वर्षा करने वाले कर को अपने जलते हृदय पर अनुराग पूर्वक नहीं रख सका । यथा –

सन्तापो हृदय स्मरानलकृतः सम्प्रत्ययं सह्यतां

नास्त्येवोपशमोऽस्य तां प्रति पुनः किं त्वं मुधा ताम्यसि ।

यन्मूढेन मया तदा कथमपि प्राप्तो गृहीत्वा चिरं

विन्यस्तस्त्वयिसान्द्राचन्दन रस स्पर्शो न तस्याः करः।।[2]

सूर्य और कमलिनी का प्रेम स्वाभाविक ही है।[3] प्रातः काल से लेकर सायंकाल तक जो सूर्य अपने मधुमय करो से कमलिनी के हृदय में राग और सौरभ का विकास करता है , उसके जाते समय कमलिनी का दुःखी होना स्वाभाविक ही है जैसा कि सूर्य निम्न श्लोक में सान्त्वना दे राहा है –[4]

यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष

सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया ।

प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः[5]

सूर्योऽस्तमस्तक निविष्टकरः करोति ।।

1– उत्तर रामचरित् ,3/39,तुलना

"आलिम्पन्नमृतमयैरिव प्रलेपै रन्तर्वा बहिरपि वा शरीरधातून् ।

संस्पर्शः पुनरपि जीवयन्नकस्मादानन्दादपरमिवादधाति मोहम् ।।"

2– रत्ना0,3/1, ले0डा0 बैजनाथ पाण्डेय , प्र0सं0 वाराणसी ।

3– उत्तर रामचरित् ,6/12, " व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु

र्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ।

विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं

द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ।।"

4– रत्ना0 ,3/6 , ले0डा0 बैजनाथ पाण्डेय ,प्र0सं0 वाराणसी ।

5– उत्तररामचरित ,4/12 –"पुरन्ध्रीणां चित्तंकुसुमसुकुमारं हि भवति ।"

औदार्य -

सदैव विनम्र रहने का तात्पर्य औदार्य[1] है ।वासवदत्ता ने जीते जी अपने आपको मृत घोषित होने दिया । पति से अलग हुई अपने सामने उसका दूसरा विवाह हो रहा है, , पर इन सबसे बढ़कर उसे विवाह की माला भी अपने हाथ से गूँथनी पड़ रही है । यह भाग्य की विडम्बना नहीं तो और क्या है ? इसी कारण वह कहती है –[2] "एतदपि मया कर्तव्यामासीत् । अहो ! अकरुणाः खल्वीश्रवराः ।"

प्रायः उच्चकुल की महिलायें ऐसी अवस्था में दोष अपने भाग्य को देतीं हैं। ,प्रिय को नहीं । शकुन्तला को जब दुष्यन्त ने पहचानने से इन्कार कर दिया और ऋषि पुत्र भी उसे छोड़कर लौट गये तो उसने स्वयं को ही कोसा ।[3] सीता को जब राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने जंगल में छोड़ दिया तब सीता ने भी स्वयं को ही दुःख का कारण माना ।

"दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य"[4]

जीते जी पति का विरह सेवकों द्वारा ,उत्सारण , पद्मावती के पास धरोहर रुप में रहते हुए ऑखों के सामने पति का दूसरा विवाह चुपचाप सब कुछ सहना इत्यादि सारे कष्ट एक ओर और पति द्वारा स्पष्ट शब्दों में की गयी प्रसंशा एक ओर । उदयन द्वारा तुलना का प्रसंग आने पर , अपने प्रति प्रकट किये गये इस प्रेम के सामने वासवदत्ता अपने सब कष्टों को नगण्य समझती है । पति –प्रेम से बढ़कर और कोई सुख शायद स्त्री के लिए नहीं है । वासवदत्ता यहाँ अपने अज्ञातवास को ही अच्छा समझती है । अज्ञातवास न होता तो पीठ पीछे इतनी प्रशंसा भला वे कैसे सुन सकती थी ? उदयन समझता है कि वासवदत्ता मर गयी है । अतः उसकी प्रसंशा और भी अधिक अर्थ पूर्ण हो जाती है ।

1– नाट्य . शा0 ,22–31 "औदार्य प्रश्रय:प्रोक्तः सर्वावस्थानुगो बुधैः ।. "

2– स्वप्नवासवदत्तम् ,तृतीय अंक ,पृ0 73 व्याख्याकार गंगासागर राय चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी ,प्र0 संस्करण 2054.

3– अभिज्ञानशाकुन्तलम् , पञ्चम अंक ",भगवति वसुधे ,देहि मे विवरम् ।"

4– स्वप्न0 चतुर्थ अंक ,पृ0 112 ,व्या0 गंगासागर राय् चौ0 संस्कृत संस्थान वाराणसी ।

वासवदत्ता के कुपित हो जाने पर राजा उसे मनाते हैं , इस पर वासवदत्ता नम्र होकर कहती है–

"आरण्यके, त्वं कुपितेति संभावयन्नार्यपुत्रः, 'प्रिये, प्रसीद 'इति प्रसादयति । तदुपसर्प ।

"वासवदत्ता आरण्यका से कहती है कि महाराज प्रसीद कहकर हमें नहीं बल्कि तुम्हें मना रहे है। इस पर महारानी कहती हैं "एतं युष्माकं दुर्नयं प्रेक्ष्य हासों में जायते।" राजा कहते हैं कि देवी इस प्रकार तर्क करने की आवश्यकता नहीं । देखो

भ्रूभङ्ग. क्रियते ललाटशशिनः कस्मात्कलङ्को मुधा

वाताकम्पितबन्धुजीवसमतां नीतोऽधरः किं स्फुरन् ।

मध्यश्चाधिकम्पितस्तनभरेणायं पुनः खिद्यते

कोपं मुञ्च तवैव चित्तहरणायै तन्मया क्रीडितम् ।।[1]

राजा को अपने समीप आता हुआ देखकर महारानी वासवदत्ता आसन छोड़कर खड़ी हो जाती है । इस पर राजा कहते हैं –

किं मुक्तमासनमलं मयि संभ्रमेण

नोत्थातुमित्थमुचितं मम तान्तमध्ये ।

दृष्टिप्रसाद विधिमात्रह्रतो जनोऽय –

मत्यादरेण किमिति क्रियते विलक्षः ।।[2]

जब आरण्यका के ऊपर विष का वेग काफी बढ़ जाता है तो उसके प्राण बचाने के लिए वह राजा से इस प्रकार कहती है –

"(ससंभ्रम राजानं हस्ते गृहीत्वा) आर्यपुत्र, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ ।

लघु विपद्यते खल्वेषा तपस्विनी।"[3]

वासवदत्ता के क्रुद्ध हो जाने के पश्चात राजा उदयन का उसके पैरों पर पड़ जाने से क्षमा याचना करने से वासवदत्ता काफी विनम्र

1– प्रिय0, तृ0 अंक, पृ0 75–76, 3/14, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौ0 विद्याभवन, द्वि0सं0 वाराणसी ।

2– प्रिय0, 4/2 टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, पृ0 120 तु0 विक्रमोर्वशीय का उदाहरण – "प्रसादमाकाङक्षति यस्तवोत्सुकः । स किं त्या दासजनः प्रसावते ।"

3– प्रिय0, चतुर्थ अंक, पृ0 128, टीका0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौ0 अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्र0स0वि0 सं0 2035.

हो जाती है तथा राजा से इस प्रकार कहती है – आर्यपुत्र, उत्तिष्ठोतिष्ठ । किमद्यापि सहजाभिजातायाः सेवया दुःखमनुभूयते ।[1]

वासवदत्ता को जब यह ज्ञात हो जाता है कि सागरिका मेरी चचेरी बहन है तो वह इतनी शालीन हो जाती है कि उसको अपने गले से लगाना चाहती है। वसुभूति को वासवदत्ता प्रणाम करती है। वासवदत्ता के द्वारा ही सागरिका को बन्दी बना दिया जाता है, पर समय आ जाने पर सम्पूर्ण सच्चाई को जानकर वह सागरिका को अग्नि से घिरा हुआ जानकर घबराहट के साथ राजा से कहती है :–

"आर्य पुत्र मया आत्मनः कृते न मणितम्। एषा खलुष मया निर्घृणयेह निगडेन संयमिता सागरिका विपद्यते। तत्ता परित्रायतामार्य पुत्रेः।

वासवदत्ता सागरिका को अपने गले से लगाना चाहती है । यथा – (सास्रं बाहू प्रसार्य) एहयेहयति निष्ठुरे इदानीमपि तावत्स्नेहं दर्शय ।[3] इतना ही नहीं वह रत्नावली को अपने सम्पूर्ण आभूषणों से सजाकर राजा के समीप ले जाती है, इसे ग्रहण कीजिये – एहि, रत्नावली, एहि । एतावदपि तावन्मे भगिनिकानुरूपं भवतु । (रत्नावली स्वैराभरणैरलंकृत्य हस्ते गृहीत्वा राजानमुपसृत्य) आर्यपुत्र प्रतीच्छैनाम् ।

राजा – (सपरितोषं हस्तौ प्रसार्य) को देव्याः प्रसादो न बहु मन्यते ।

वासवदत्ता – आर्यपुत्र, दूरे खल्वेतस्याः पितृकुलम । तत्तथा कुरू यथा न बन्धुजनं स्मरति[4] । (इति समर्पयति) ।[5]

1– रत्ना० तृ० अंक, पृ० 128, टीका० डा० रामशंकर त्रिपाठी, द्वि० सं० वाराणसी ।

2– रत्ना० चतुर्थ अंक, पृ० 208, ले० डा० बैजनाथ पाण्डेय, प्र०सं० वाराणसी ।

3– रत्ना० चतुर्थ अंक, पृ० 216, ले० डा० बैजनाथ पाण्डेय, प्र०सं० वाराणसी ।

4– कु0सं0, 8/4 – "तं यथा त्मसदृशं वरं व धूरन्वरज्यत परस्तथैव ताम् ।

सागरादनपगा हि जाह्ववी सोऽपि तन्मुखरसैक वृत्तिभाक् ।।"

5– रत्ना0, अंक चतुर्थ, राजा उदयन सागरिका के लिए कैसे मरा था, इसे पाठक बहुत बार देख चुके हैं किन्तु वह इस समय प्रदर्शित कर रहा है कि रत्नावली के प्रति मेरी कोई खास अभिलाषा न थी, किन्तु महारानी कृपापूर्वक दे रही हैं अतः मैं इसे सहर्ष ग्रहण कर रहा हूँ । मेरी यह प्रसन्नता महारानी की कृपा देखकर है, न कि रत्नावली को पाकर ।

धैर्य -

नायिका का सभी परिस्थितियों में चंचलता से रहित एवं आत्मश्लाघा से शून्य चित्तवृत्ति धैर्य[1] कहलाती है ।

उदयन पद्मावती को धैर्यशालीन मानता है किन्तु सामान्यतः स्त्री स्वभाव के कातर हो जाने के कारण सत्य को उससे छिपाता है । यथा –

इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत ।
कामं धीर स्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ।।[2]

प्रियदर्शिका विपन्न स्थिति में दासी के रूप में उदयन के अन्तःपुर में आरण्यका नाम से पहुँच जाती है । अपनी विपन्नता के समय वह सदैव धैर्य धारण किये रहती है ।

सागरिका के हृदय में उदयन के लिये प्रेम की ज्वाला धधकती रहती हे । वह अपने भाग्य को कोस लेती है किन्तु धीरज रखते हुए अपने जीवन की सच्ची कहानी किसी से नहीं कहती ।

लीला -

प्रेमोद्रेक के कारण, क्या अंग, क्या वेष, क्या भूषण और क्या प्रेम पगे वचन – सबसे प्रियतम का अनुकरण लीला[3] का अभिप्राय है ।

राजा उदयन सागरिका के चित्र से मोहित होते हुए आश्चर्यपूर्वक उसे देखकर कहते हैं । यथा –

लीलावधूत पद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः।
मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव ।।[4]

1— ना०शा०, 24/28, दश० 2/59 — "चपलाअविहता धैर्य चिद्वृत्तिर विकत्थना ।

"चापलेनानुपहता स्वार्थेष्वविकत्थना, स्वाभविकी चित्तवृत्तिधैर्यमित्यभिधीयते ।

काव्यानुशासन, 7—50 "चापलानुपहतत्वमात्मगुणानाख्यानं धैर्यम् ।"

2— स्वप्न० 4/8, ले० जयपाल विद्यालंकार, प्रका० मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, द्वि० सं० ।

3— साहि० दर्पण, परिच्छेद (98) — अङ्गैर्वेपैरलङ्कारैः प्रेमिभिर्वचनैरपि ।

प्रीतिप्रयोजितैलीलां प्रियस्यानुकृतिं विदुः ।।"

ना०शा० 22,14 — "बागाङःकालङःकारैः शिष्टैः प्रीतिप्रयोजितर्मधुरैः ।

इष्टजनस्यानुकृतिर्लीला ज्ञेया प्रयोगज्ञैः ।।"

4— रत्ना०, 2/9, ले० डा० बैजनाथ पाण्डेय, प्र० सं० वाराणसी 1980

जिस प्रकार राजहंसी[1] अपने मधुर गमन से कमल को चंचल अर्थात उसकी शोभा को विनष्ट कर देती है । उसी प्रकार इस रमणी ने अपने मधुर अंग–चेष्टाओं द्वारा प्रियतम के अनुकरण[2] रूप लीला से पद्मालक्ष्मी को भी तिरस्कृत कर दिया है ।

विलास -

प्रिय के दर्शन, आगमन आदि के कारण चाल–ढाल, उठने, बैठने, आसन, शयन अथवा सुख नेत्र आदि के व्यापारों की आनन्द सूचक विशेषता का नाम विलास[3] है ।

सागरिका राजा को विलासपूर्वक देखती है[4] – कथमयं स राजा उदयनो यस्याहं दत्ता तातेन । (दीर्घ निःश्वस्य) तत्परप्रेषणदूषितमपि मे जीवितमेतस्य दर्शनेनेदानीं बहुमतं संवृत्तम् ।

सागरिका राजा का चित्र चित्रित करती है, उसी को लेकर आँखों में आँसू भर कर कहती है – (सवाष्पम्) आलिखितः खलुमयैषः । किं पुनरनवरतनिपतद्वाष्प सलिलेन न मे दृष्टिः प्रेक्षितुं प्रभवति । (मुखमुत्तानी कृत्याश्रूणि निवारयन्ती सुसंगता दृष्ट्वोत्तरीयेण फलकं – प्रच्छादयन्ती सविलक्षस्मितम्) कथं प्रिय सखि सुसंगता । सखि, इत उपविश ।[5]

1– अ0को0, 2–5–24– "राजहंसास्तु ते चञ्चुचर्णैर्लोहितैसिता ।"

2– दशरू0, 2/37 – प्रियानुकरणं लीला मधुराङ्गविचेष्टितैः ।"

भा0 प्रका0 पृ0, 9– "प्रियानुकरणं लीला ।"

3– सहि0 दर्पण, तृ0 परिच्छेद (99) "यानस्थानासनादीनां मुखनैत्रादिकर्मणाम् ।

विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टसन्दर्शनादिना ।"

4– रत्ना0 प्र0 अंक, पृ0 51, ले0डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्र0 सं0 वाराणसी ।

5– रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 50, ले0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्र0 सं0 वाराणसी ।

इतना ही नहीं वह – (राजानं दृष्टवा सहर्ष ससाध्वसं सकम्पं च स्वगतम्) हा धिक् हा धिक् । एतं प्रक्ष्यातिसाध्वसेन शक्नोमि पदात् पदमपि चलितुम् । तत्किमिदानीमत्र करिष्यामि ।[1]

दूर से आती हुई आरण्यका को देखकर विदूषक महाराज से कहता है – भो वयस्य, पश्य पश्य । आश्चर्यमाश्चर्यम् । एषा सलीलचलत्करपल्लव प्रभा विस्तृंतेनापहसितशोभं करोति कमलानमप चिन्वती ।[2]

किलकिञ्चत -

प्रियतम के संगम, समागम आदि से सम्भूत आनन्द के कारण, स्मित अकारण हंसना, त्रास, क्रोध, श्रम आदि के विचित्र मिश्रण को किलकिञ्चत[3] कहते हैं ।

जब राजा का पाठ मनोरमा नहीं करती तब वासवदत्ता मनोरमा पर क्रोधित होती हुई कहती है – (सरोषं हसन्ती) साधु मनोरमे साधु । शोभनं त्वया नर्तितम । नाटक अभिनय के समाप्त हो जाने पर वासवदत्ता चली जाती है इस पर राजा उसकी मनोदशा को निम्न श्लोक में वर्णित करता है – (विलोक्य) कथमकृत्वैव प्रसादं गता देवी ।

स्वदाम्भः कणभिन्न भीषणतरभ्रूभङ्ग.मकें रुषा,

त्रासेनापरमुत्पंलुतोत्प्लुतमृगव्यालोलनेत्रोत्पलम् ।

उत्पश्यन्नहमग्रतो मुखमिदं देव्याः प्रियायास्तथा

भीतश्चोत्सुकमानसश्च महति क्षिप्तोऽस्मयहं संकटे[4] ।।

1– रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 80, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 1976.

2– प्रिय0, द्वि0 अंक, पृ0 33, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, द्वि0 सं0 1976.

3– ना0शा0 (22–18), भा0प्र0 (प्र0 9) ना0द0 –

(4–282) प्रता0 (प्र0 190), साहि00 दर्पण (3–101), पृ0 175.

भरत मुनि के अनुसार – ना0शा0 –

"स्मितरूदितहसित भय हर्षगर्वदुःखश्रमाभिलाषाणाम् ।

संक्करकरणं हर्षा दसकृत किलकिञ्चित ज्ञेयं ।।"

साहि0 द0,पृ0 116 – "स्मितशुष्करूदितहसितत्रासक्रोध श्रमादीनाम् ।

साङ्कर्य किलकिञ्चितमीष्ट मतसङ्गमादिजाद्वर्षात् ।।

4– प्रिय0, 3/15, व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी, शास्त्री, चौ0 अमर भारती, प्रकाशन वाराणसी, प्र0 सं0 वि0सं0 2035.

आरण्यका का महाराज से संगम हो जाने के कारण उसके अंग रोमांचित हो उठते हैं – (राजानं दृष्टवा साध्वसं नाटयन्ती) कथं नैषेन्दीवरिका ? (सभयं राजानं त्यक्त्वाप सरन्ती) इन्दीवरिके, लघ्वागच्छं लघ्वागच्छ । परित्रायस्व माम् ।[1]

आरण्यका का महाराज के प्रति अनुराग इतना बढ़ गया है कि वह सोचती है[2] – कस्मै तावदेतं वृत्तान्तं निवेद्य सहयवेदनमिव[3] दुःखं करिष्यामि । (विचिन्त्य) अथवा में हृदयनिर्विशेषा प्रिय सखी मनोरमा । तस्या अप्येतल्लज्जया न पारपामि कथयितुम् । सर्वथामरणं वर्जयित्वा कुतो में हृदयस्यान्यां निर्वृतिः ।

जिस समय राजा का प्रिय मित्र ब्राह्मण (विदूषक) आरण्यका के विषय में मंत्रणा करता है तो मनोरमा व आरण्यका दोनों छिप कर सुनती हैं । विदूषक इस प्रकार कहता है । यथा – (आरण्यका सस्पृहं सलज्जं च श्रृणोति) (सोद्वेगम्) यदा तावन्मया गुरूमदनसंतापनिस्सहस्य प्रिय वयस्यस्यास्वस्थवचनेन देव्योर्वासवदत्ता पद्मावत्योरन्यासां च देवीनां भवनान्यन्विष्यता न सा दृष्टा, तदा यत्र दीर्घिकायां दृष्टा एतामपि तावत्प्रे क्षिष्य इत्यागतोऽस्मि । तद्यावदिहापि नास्ति । किमिदानीं करिष्ये ।[4]

जब आरण्यका को होश आता है तो वह प्रिय सखी मनोरमा से पूछती है कि आज मैं बड़ी देर तक सोती रही । इस पर विदूषक कहता है कि अजी वयस्य तुम्हारा वैद्यत्व कारगर हो गया । इस प्रकार की वार्ता

1– प्रिय0, द्वि0 अंक, पृ0 36, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

2– प्रिय0, तृ0 अंक, पृ0 43, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

3– प्रिय0 टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, पृ0 114– "सह्यवेदना कष्टं यस्य तत्तथा, सहने के योग्य लोगों से कह देने पर उनपकी सहानुभूति से वेदना की असह्यता कम हो जाती है, इसी तात्पर्य से ऐसा कहा है । इसी तरह की उक्ति कालिदास की भी है :–

"स्निग्धनजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति" ।

4– प्रिय0, तृ0 अंक, पृ0 48, व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौ0 अमर भारती प्रकाशन, प्र0 सं0 वि0सं0 2035.

को सुनकर वह – (प्रियदर्शिका साभिलाषं राजानं निरूप्य सलज्जं किञ्चिदधोमुखी तिष्ठति)

वासवदत्ता – (सहर्षम्) आर्यपुत्र, किमिदानीमप्येषा न्यथैव करोति ।[1]

जिस समय राजा उदयन सागरिका का चित्रपट लिये होता है, उसी समय अचानक वासवदत्ता आ जाती है तो कांचनमाला वासवदत्ता से कहती है कि स्वामिनी देखिये इस चित्रपट पर क्या चित्रित है ? वासवदत्ता ध्यान से देख कर (सकोपहासम्)[2] आर्यपुत्र, केनदमालिखितम्[3] ?

अवगुण्ठित वासवदत्ता को सागरिका समझकर राजा उदयन प्रेमालाप की बातें करते हैं जिस पर वासवदत्ता अत्यन्त क्रोधित व दुःखी होती है । उसी विषय में वह कांचनमाला से कहती है – (अपवार्य सरोषस्मितम्) हञ्जे काञ्चनमाले, अहं ईदृशी कटुभाषिणी । आर्यबसन्तकः पुनः प्रियंवदः ।[4]

कामावस्था का अभिनय करती हुई सागरिका अपने आप से ही कहती है – (सास्रम्) भवतु । अनंङ्ग. तावदुपालप्स्ये । (अञ्जलिं बद्ध्वा) भगवन्कुसुमायुध, निर्जितसकलसुरासुरो भूत्वा स्त्रीजनं प्रहरन् कथं न लज्जसे । (विचिन्त्य) अथवा अनंङ्गोऽसि (निःश्वस्य) सर्वथा मम मन्दभागिन्या मरण मेवानेन दुर्निमित्तेनोपस्थितम् । (फलकम्वलोक्य) तद्यावन्न कोऽपीहागच्छति तावदालेख्यसमर्पितं तमभिमतं जनं प्रेक्ष्य यथासमीहितं करिष्यामि ।[5]

कोई भी व्यक्ति जब अपने अभीष्ट जन का दर्शन करता है तो उसकी खुशी की सीमा ही नहीं रहती अर्थात इतना हर्ष होता है कि वह शब्दों से व्यक्त नहीं कर सकता तथा ऐसे में उसकी अंग प्रत्यंग की ऐसी दशा हो जाती है ।

1– प्रिय0, चतुर्थ अंक, पृ0 103, व्या0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौ0 विद्या भवन, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

2– रत्ना0, द्वि0 अंक, – मेरा अनादर कर परकीया से प्रेम कर रहे हो,

भ्रमरों की भाँति परकीया के अधर सुधारस पान की प्रवृत्ति होने से उपहास ।

3– सागरिका और आपका एक साथ प्रणय भाव ।

(रत्नावली द्वि0 अंक, पृ0 88, द्वि0 सं0 वाराणसी)

4– रत्ना0, तृ0 अंक, पृ0 114, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0सं0 वाराणसी ।

5– रत्ना0, द्वि0 अंक, ले0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्र0 सं0 वाराणसी ।

जैसा कि राजा को देखकर सागरिका की निम्न प्रकार की दशा हो जाती है । यथा – (राजानं दृष्टवा सहर्ष[2] ससाध्वसं[3] सकम्पं च स्वगतम) हा धिक हा धिक् । एतं प्रेक्ष्यातिसाध्वसेन न शक्नोमि पदात् पदमपि न चलितुम[4] । तत्किमिदानीमत्र करिष्यामि ।

मोट्टायित –

प्रियतम के चरित्र से सम्बद्ध आलाप–संलाप के प्रसंगों में निम्न नायिका के कर्णकंडूयन (कान खुजलाना) लीला, हेला आदि का प्रदर्शन मोट्टायित[5] कहलाता है ।

चेटी आरण्यका से कहती है जब विन्ध्यकेतु की कन्या विवाह योग्य हो जाये तो मुझे याद दिलाना, क्यों कि कन्या के बड़ी हो जाने पर वर की चिन्ता होने लगती है । राजा विन्ध्यकेतु की पुत्री को देखकर अरे यह क्या अविवाहित है, इसके दर्शन में कोई दोष नहीं है अतः इसे विश्रब्ध भाव से देखेगें । आरण्यका इस प्रकार की वार्ता जब महाराज की सुनती है तो वह – (सरोषं कर्णौ निधाय) तद्गच्छ त्वम् । न त्वयासम्बद्व प्रलापिन्या प्रयोजनम् ।[6]

1– रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 102, टीका0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, प्र0 सं0 1980 वाराणसी ।

2– अभीष्ट जन का दर्शन हर्ष का कारण है ।

3– स्वीकार करेगें या नहीं यही भय का कारण है ।

4– कु0सं0, 5/85, तुलनीय –

"तं वीक्ष्य वेपथुमतीं सरसांगगयष्टि र्निक्षेपणाय पदमुदधृतमुदबहन्ती ।

मार्गाच्चलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ।।"

5– साहि0 दर्पण, तृ0 परिच्छेद, 102 –

"तद् भावभाविते चित्ते वल्लभस्य कथादिषु ।

मोट्टायितमिति प्राहुः कर्णकण्डूयनादिकम् ।।"

ना0शा0, अभि0 भा0 22–19– "इष्टजनस्यकथायां लीलाहेलादिदर्शने वापि ।

तद भावभावनाकृतयुक्तं मोट्टायितं नाम ।।"

इष्टजनस्येति – कथने दर्शने वा कान्तस्य यदुत्पद्यते पोषितो लीलादि तद्

भावभावनवशान्मदनाङ.गमर्दपर्यन्तं तदङ.गमोट्टनान्मोट्टायितम् ।"

6– प्रिय0, द्वि0 अंक, पृ0 32, व्या0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी ।

सागरिका राजा उदयन को देखकर स्वयं से कहती है कि (श्रुत्वा सहर्ष परिवृत्य राजानं सस्पृहं पश्यन्ती) कथमयं स राजा उदयनो यस्याहं दत्ता तातेन । (दीर्घ निःश्वस्य) तत्परप्रेषणदूषितमपि में जीवितमेतस्य दर्शनेनेदानीं बहुमतं संवृत्तम् ।[1]

सागरिका तूलिका लिये हुए कामावस्था का अभिनय करती है (विचिन्त्य) अथवा अनङ्गोऽसि। (दीर्घ निःश्वस्य) सर्वथा मम मन्दभागिन्या मरणमेवानेन दुर्निमित्तेनोपस्थितम् । (फलकमवलोक्य) तद्यावन्न कोपीहागच्छति तावदालेख्यसमर्पितं तमभिमतं जनं प्रेक्ष्य यथासमीहितं करिष्यामि (सावष्टम्भकमना भूत्वा नाट्येन फलकं गृहीत्वा निःश्वस्य। यद्यपि मेऽतिसाध्वसेन वेपतेऽयमतिमात्रम ग्रहस्तस्तथापि नास्ति तस्य जनस्यान्यो दर्शनोपाय इति यथातथालिख्यैनं प्रक्षिष्ये ।[2]

सागरिका सुसंगता से वार्तालाप करती है तभी वहाँ आर्य वसन्तक आ जाता है, जिस पर भय के साथ कहती है कि लग रहा है दुष्ट वानर आ रहा है । सुसंगता कहती है कि अरी डरपोक मत डरो यह तो स्वामी के पास रहने वाला आर्यवसन्तक है – (सस्पृहमवलोक्य) सखि सुसंगते, दर्शनीयः खल्वयं जनः ।[3]

कुट्टमित –

केश और अधर को ग्रहण किये जाने पर नायिका जो हृदय में प्रसन्न होकर भी कोप प्रकट करती है, वही कुट्टमित[4] कहलाता है ।

1– रत्ना0 प्र0 अंक, पृ0 38, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0सं0 1976 वाराणसी ।

2– रत्ना0 द्वि0 अंक, पृ0 58, ले0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, प्र0 सं0 1980.

3– रत्ना0 द्वि0 अंक, पृ0 56, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

4– द्र0 ना0 शा0 (22–20), भा0प्र0 (पृ09) 0द0 (4–200) प्रता0 (पृ0 191)

सा0 दर्पण (103, तृतीय परिच्छेद) –

"केषास्तनाधरादीनां ग्रहे हर्षेऽपि सम्भ्रमात् ।

आहुः कुट्टमितं नाम शिरःकर विधूननम् ।।"

ना0शा0 (22–20) "केश स्तनाधरादिग्रहणादतिहर्षसंभ्रमोत्पन्नम् ।

कुट्टमितं विशेषं सुखमपि दुःखोपचारेण ।।

प्राचीनकाल में जब व्यक्ति कामावस्था से पीड़ित होता था तो व्यक्ति की गर्मी को कम करने के लिए कमल की पतली जड़े । मृणालिका । से उसकी छाती में रखकर ठण्डक पहुँचाया जाता था ऐसी ही अवस्था रत्नावली में सागरिका की है । वह अपनी सखी से कहती है कि तुम्हारे द्वारा शीतोपचार करना व्यर्थ है क्योंकि –

दुर्लभजनानुरागो[2] लज्जा गुर्वी परवश आत्मा ।

प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं नवरमेकम् ।।

ललित –

अंग प्रत्यंग का सुकुमार ललित[3] है ।

महाराज उदयन वासवदत्ता से कहते हैं तुम्हारा कोप तुम्हारे अंग–प्रत्यंगों से काफी झलक रहा है –

स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनोस्ताम्रा तथापिद्युति –

माधुर्येऽपि सति स्खलत्यनुपदं ते गद्गदा वागियम् ।

निश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कम्पेन संलक्षिताः

कोपस्ते प्रकट प्रयत्नविधृतोऽप्येष स्फुटं लक्ष्यते ।।[4]

सागरिका के सौन्दर्य का । प्रत्येक अंग) बारीकी से निरीक्षण करते हुये उदयन कहते हैं भगवान ने इसे जरूर एकान्त में बनाया होगा[5] –

दृष्टिं रूषा क्षिपसि भामिनि यद्यपीमां

स्निग्धेयमेष्यति तथापिन रूक्षभावम् ।

त्यक्त्वा त्वरां ब्रज पदस्खलितैरयं[5] ते

खेदं करिष्यति गुरूर्नितरां नितम्बः[7] ।।

1— रत्ना0, 2/1, प्र0सं0 वाराणसी ।

2— मालवि0, 2/4 – "दुर्लभः प्रियो में तस्मिनभव हृदय निराश ।"

3— सा0 दर्पण, तृतीय परिच्छेद, प्र0 88, 104— "सुकुमारतयाङ.गानां विन्यासो ललितं भवेत् ।"

ना0शा0 22—22 "हस्तपादाङ.गविन्यासो भ्रूनेतोष्टप्रयोजितः ।

सौकुमर्याद भवेवस्तु ललितं तत्प्रकीर्तितम् ।।"

4— प्रिय0, 3/13, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन वाराणसी, द्वि0 सं0

5— प्रिय0, पृ0 120, तु0 "भ्रूभङ.गे सहसोदगतेऽपि वदनं नीतं परां नम्रता .... ।"

6— रत्ना0, 2/17, टीका0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, प्र0 सं0, वाराणसी ।

उत्तर मे0, 22— "श्रोणी भारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्याम् । "

अभि0, 2/2 – "यातं यच्च नितम्बयोर्गुरूतया मन्दं विलासादिव ।"

7— अ0श0 16— "सेब्या नितम्बाः किल भूधराणाम् उत, स्मरस्ममेर विलासिनीनाम् ।"

सागरिका के चित्र को देखने से यहीं प्रतीत होता है कि मानो उसके जीवन के परम सौभाग्य राजा उदयन हैं । उसको पाने के लिए वह लालायित हैं –

(कटकमर्पयन्नेव बलाद् गृहीत्वा विलोक्य सविस्मयम्)

लीला[2] वधूतपदमा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः ।

मानस[3]मुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव[4] ।

विच्छिति –

अल्प की प्रसाधन यदि अत्यधिक कामनीयता उत्पन्न करता है तो विच्छिति[5] कही जाती है।

जब कोई भी स्त्री व्रत । उपवास । आदि धारण करती है तो क्षीण होने के कारण उस समय उसका सौन्दर्य काफी बढ़ जाता है । यही दशा महारानी वासवदत्ता की है । उसकी शारीरिक सुन्दरता का वर्णन राजा निम्न श्लोक में करता है –

क्षामां मंगलमात्रमण्डनभृतं मन्दोद्यमालापिनी

मापाण्डुच्छविना मुखेन विजित प्राप्तस्तनेन्दुद्युतिम् ।

सोत्कण्ठां नियमोपवास विधिना चेतो ममोत्कण्ठते

तां द्रष्टुं प्रथमानुराग जनितावस्थामिवाद्य प्रियाम् ।।[6]

1– रत्ना0, 2/9, ले0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, प्र0सं0 1980.

2– आ0को0 3/3/199 – "लीला विलासकियियोः

विश्व0 – "लीलां विदु केलिविलास खेलां श्रृंगारभावप्रभाव क्रियासु ।

दशरू0 2/37 – प्रियानुकरणं लीला मधुरांङ्.विचेष्टितैः ।

भा0 प्रका0 – पृ0 9– "प्रियानुकरणं लीला ।"

3– सुभाषि० – "रमते न् मरालस्य मानसं मानसं बिना ।"

4– आ०को० 2–5–24– "राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितेसिताः ।"

5– साहि० दर्पण, द्वितीय परिच्छेद, पृ० 185– "स्तोकाप्याकल्परचना विच्छितिः

कान्त्योषकृत् ।"

ना०शा०, 22–16– "माल्याच्छादनभूषणविलेपनानामनादरन्यासः ।

स्वल्पोऽपि परां शोभां जनयति यस्मात्तु विच्छितिः ।।"

काव्यानु०, 7–38– सौभाग्यगर्वादनादरेण कृतो माल्याच्छादन भूषण विलेपन

रूपस्याल्पस्याकल्पस्य सौभाग्य महिम्ना शोभा हेतु विच्छित्तिः ।।"

6– प्रिय०, 2/1, टीका० पं० रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौ० अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, प्र० सं० वि०सं० 2035.

वासवदत्ता अशोक वृक्ष के नीचे स्थित है इसलिए ऐसा प्रतीत हो रहा है कि अशोक वृक्ष से उत्पन्न होने वाली कोई मनोहारिणी लता अपनी अरूणिमा एवं मनोहर कान्ति को बिखेरती हुई कामदेव की अर्चना कर रही हो । यथा –

प्रत्यग्रमज्जन विशेष विविक्तकान्तिः

कौसुम्भरागरूचिरस्फुरदंशुकान्ता ।

विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती

बालप्रवाल विटपि प्रभवा लतेव ।।[1]

विहृत –

बोलने के समय में भी लज्जावश न बोल पाना विहृत[2] है ।

नायिका की सखियाँ व सेविकायें –

उदयन । नायक । राजा होने के कारण नायिकाओं की अनेकों सखियाँ व सेविकायें होना स्वाभाविक है । इन नाटकों में वर्णित प्रमुख सखियों व सेविकाओं की संक्षिप्त व्याख्या तुलनात्मक अध्ययन के लिये की जा रही है ।

"चिरं जीवतु भद्रे" दासी होने के कारण यद्यपि चेटी का यह आर्शीवाद समीचीन से प्रतीत नहीं होता, क्योंकि वह पद्मावती की सखी के समान थी । अतः आनन्दातिरेक में उसका यह मानसिक उद्‌गार स्वाभाविक है ।[3]

कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके कुत्र कुत्र भर्तदारिका .... ।[4]

कुञ्जरिका किसी दासी का नाम है जो पद्मावती की प्रिय दासियों में से है और ऐसा प्रतीत होता है कि पद्मावती की गतिविधियों का पूर्ण पता रहता है । संवाद में नाम की पुनरावृत्ति शीघ्रता को द्योतित करती है ।

1— रत्ना0, 1/20, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

2— सा0 दर्पण, तृ0 परिच्छेद, पृ0 189 । 105 । — "वक्तव्यकालेऽप्यवचो व्रीडया विहृतं मतम्।" ना0 शा0 22—24.

वाक्यानां प्रीतियुक्तानां प्राप्तानां यदभाषणम्।

व्याजात्समावतो कपि विहृतं नामं तद् भवेत्।।"

3— स्वप्नवासवदत्तम्, प्र0 अंक, पृ0 19, व्या0 गणेशदत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, अध्यक्ष, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ, प्र0सं0 1968.

4— स्वप्न0, द्वि0 अंक, पृ0 34, व्या0 गणेशदत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, अध्यक्ष, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ, प्र0 सं0 1968.

वासवदत्ता पद्मावती के प्रति बहन व सखी जैसा व्यवहार करती है । जिस समय वह कन्दुक । गेंद खेलती है तो वासवदत्ता कहती है – "हला अतिचिरं कन्दुकेन क्रीडित्वाधिकसञ्जातरागौ परकीयाविव ते हस्तौ संवृतौ ।[1] अर्थात पद्मावती का विवाह होने वाला है। उसकी सहेली आवन्तिका की यह उक्ति बहुंत ही सहृदयाह्लादक है ।

क्रीडतु क्रीडतु तावद् भर्तदारिका । निर्वर्त्यतां तावद् अयं कन्या भावरमणीयः कालः ।[2] विवाह के बाद दूसरे परिवार में बधू बनकर रहते हुए बहुत सी औपचारिकताओं एवं मर्यादाओं का पालन करना होता है, खेलना–कूदना जितनी स्वच्छन्दता से विवाह के पहले माता–पिता के घर में हो सकता है उतना विवाहोपरान्त पति–गृह में नहीं । यही प्रतिज्ञायौगन्धरायण में है ।[3]

सखी । आवंतिका । उसके सौन्दर्य को ऑखों से पी रही है । यथा – अभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि ।[4]

वासवदत्ता यहॉ तक कि अपनी सौत के विवाह के लिए स्वयं वरमाला गूँथती है । ईष्या न रखकर धैर्य से काम लेकर विवाह कार्य पूरा करवाती है । पद्मावती का उदयन के साथ विवाह सम्पन्न हो गया । वासवदत्ता के यह पूछने पर कि सखि तुम्हें पति प्रिय है पति बिना मैं बेचैन सी हो जाती हूँ, पदमावती की इस उक्ति में उदयन के प्रति उसकी प्रगाढ़ प्रेमानुभूति के साथ–साथ उसकी शालीनता एवं सरलता भी साकार हो उठी है तथा दूसरी ओर सखी सम्बन्ध से पद्मावती के प्रति प्रेम को पल्लवित करने के लिए समुदाचार का निर्वाह करना पड़ रहा है ।

1– स्वप्नवासवदत्तम्, द्वि0 अंक, पृ0 26, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

सा0 दर्प0 – "भर्तुः स्वामिनः द्वारिका पुत्री वाच्या प्रकृतिभिः राज्ञः कुमारी भर्तृदारिका ।"

2– स्वप्न0, द्वि0 अंक, पृ0 26, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

3– प्रतिज्ञायौ0, द्वि0 अंक – "कीडतु । नैतत् सुलभं श्वसुरकुले ।

कु0सं0, 1–19 "रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां कीड़ारसं निर्विशतीव वाल्वे ।"

4– स्वप्न0, द्वि0 अंक, पु0 26, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

वासवदत्ता – । आत्मगतम् । हम्, आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः । एवं तावद् भविष्यामि । प्रकाशम् । यद्यल्पः स्नेहः, सा स्वजन न परित्यजति ।[1]

वासवदत्ता के यह पूछने पर वीणा सिखाने की बात से क्यों खामोश हो जाते हैं तो पदमावती कहती है कि उन्हें अपनी प्रथम पत्नी । वासवदत्ता । के गुणों को याद कर उदारता के कारण वह मेरे सामने रोते नहीं हैं । जैसा कि निम्न श्लोक में देखने को मिलता है[2] –

कामेनो[3]ज्जयिनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते

दृष्टवा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः ।

तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं

पञ्चेषु[4] मर्दनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः ।।

इतना ही नहीं बल्कि आज भी राजा उदयन की भावनायें उतनी ही सजीव हैं जैसे पहले थीं । यथा –

अनेन परिहासेन व्याक्षिप्तं मे मनस्त्वया ।

ततो वाणी तथैवेयं पूर्वाभ्यासेन निःसृता ।।[5]

पद्मिनिका और मधुकरिका दोनों पद्मावती की सखियाँ भी हैं । वो दोनों सेविकाओं को जब अपनी रानी पद्मावती के सिर दर्द के विषय में पता लगता है तब सखी व सेविका दोनों का यह फर्ज बनता है कि इसका निवारण किया जाये ।

1— स्वप्नवासवदत्तम्, चतुर्थ अंक, पृ0 42, ले0 जयपाल विद्यालंकार, द्वि0 सं0 वाराणसी, 1972.

2— स्वप्न0, 4/1, पृ0 52, ले0 जयपाल विद्यालंकार, द्वि0 सं0 वाराणसी, 1972.

3— अ0को0 — "मदनो मन्मथोभारः प्रद्युम्नो मीनकेतनः,

कन्दर्पो दर्पकोऽङ्गः कामः पञ्चशरः स्मरः ।

शम्बारिर्मनतिजः कुसुमेषरनन्यजः,

पुष्पधन्वा रतिपतिमर्कध्वज आत्मभूः ।।"

4— "अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका ।

नीलोत्पलं च पञ्चैते पंचबाणस्य सायकाः ।।"

5— स्वप्न0, 4/5, पृ0 69, ले0 जयपाल विद्यालंकार, द्वि0 सं0 वाराणसी, 1972.

एक दासी विदूषक को सूचना देती है कि जिससे उदयन के पास खबर पहुँच जाये दूसरी वासवदत्ता को बुलाती है । पद्मावती के सिर में दर्द होना चतुर्थ अंक की घटना का ही परिणाम होता है । पदमावती का बहुत ऊँचा चरित्र भास ने प्रस्तुत किया है । उसके मुँह से दो बार – हला ! मा मैवम् । सदाक्षिण्यः एवार्यपुत्रः ।[1] अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्यः एव भवति ।[2] ऐसे वाक्य कहलाये जिनमें उसमें स्त्री सुलभ मान । ईर्ष्या । की गन्ध भी प्रतीत न हो । वासवदत्ता जब समुद्रगृह में पहुँचती है तो चादर ओढ़कर सोये हुए उदयन को पद्मावती समझ कर सखी प्रेमवश साथ में ही लेट जाती है । यहीं उदयन स्वप्न में बोलता है और वासवदत्ता से बातें करता है ।

वासवदत्ता के चित्र को ठीक आवन्तिका जैसा देखकर पद्मावती को कुछ आश्चर्य हुआ । उसने उदयन के चित्र को भी देखकर कलाकार की निपुणता को जांचा और फिर इस निश्चय पर पहुँची आवन्तिका ही वास्तव में वासवदत्ता है । पद्मावती वासवदत्ता से कहती है – अहो ! आर्या खल्वियम् । आर्ये ! सखीजनसमुदाचारेणाऽजानन्त्याऽतिकान्तः समुदाचारः । तच्छीर्षेण प्रसादयामि ।[3]

इस पर वासवदत्ता कहती है । पदमावतीमुत्थाप्य । उत्तिष्ठोत्तिष्ठाविधवे ! उत्तिष्ठ । अर्थिस्वं नाम शरीरमपराध्यति ।[4]

1– स्वप्न0, चतुर्थ अंक, पृ0 52, ले0 जयपाल विद्यालंकार, द्वि0 सं0, वाराणसी –

"वासवदत्ता और पद्मावती के परस्पर अधिक प्रेम के कारण पद्मनिका कहती है कि उसे बस सिर दर्द के बारे में कह भर देना, वासवदत्ता को केवल सूचना की आवश्यकता है, उसे बुलाने की जरूरत नहीं ।"

2– स्वप्न0, चतु0 अंक, पृ0 66, ले0, गणेशदत्त शर्मा, प्र0 सं0, सुभाष बाजार, मेरठ ।

3– स्वप्न0, ष0 अंक, पृ0 96, ले0 जयपाल विद्यालंकार, द्वि0 सं0 वाराणसी, 1972 ।

4– स्वप्न0, ष0 अंक, पृ0 96, ले0 जयपाल विद्यालंकार, द्वि0 सं0 वाराणसी, 1972 ।

वासवदत्ता की दासी चेटी दूसरी दासी इन्दीवरिका से आकर कहती है कि सखी दन्दीवरिके आज महर्षि अगस्त को अर्घ प्रदान करना है इसलिए उनकी आज्ञा है कि तुम जाकर शेफालिका के फूलों को लेकर आओ । आरण्यका दृढ़वर्मा की कन्या है अर्थात इसी का नाम प्रियदर्शिका है । वह अपने मन में सोचती है कि मैंने कभी अपने मन में नहीं सोचा कि मुझे दूसरों की आज्ञा का पालन करना पड़ेगा । चेटी इन्दीवरिका आरण्यका से कहती है – आरण्के ,अपचिनु त्वं पद्मानि । अहमप्येतस्मिन्नलिनीपत्रे शेफालिका कुसुमान्यपचित्य देवीसकाशं गमिष्यामि ।

चेटी जाने का अभिनय करती है , आरण्यका कहती है – हला इन्दीवरिके , न शक्नोमि त्वया विनात्रासितुम् ।

चेटी – । विहस्य । यादृशमद्य मया देव्या मन्त्रितं श्रुतम् , तादृशेन चिरमेव मया बिना त्वयासितव्यम् ।

आरण्यका – । सविषादम् । किं देव्या मन्त्रितम् ?

चेटी – एतत् तदैषाहं महाराजेन भणिता ,यथा 'यदैषा विन्ध्यकेतु दुहिता वरयोग्या भविष्यति तदाहं स्मारयितव्यः ।' इति । तत्साम्प्रतं महाराजं स्मारंयामि येनास्या वरचिन्तापर्याकुलो भविष्यति ।[1]

जब अराण्यका फूल चुन रही होती है , तभी भौरा उसे तंग करने लगता है । वह रक्षा के लिए सखी इन्दीवरिका को पुकारती है । यथा –इन्दीवरिके , लघूपसर्प लघूपसर्प । आकुलीकृतास्मि दुष्टमधुकरैः चेटी आ नहीं पाती ,राजा छिपकर यह दृश्य देख रहा होता है वह समय पर उसकी रक्षा करता है लेकिन लज्जा का अनुभव करती हुई –इन्दीवरिके ,लघ्वागच्छ लघ्वा गच्छ । परित्रायस्व माम् ।

चेटी समीप जाकर गाल सहलाती हुई – हञ्जे आरण्यके ,

कमलसदृशस्य तव वदनस्यायं दोषो यन्मधुकरा एवमरपराध्यन्ति ।

। हस्ते गृहीत्वा । तदेहि गच्छावः। परिणतो दिवसः ।[2]

1– प्रिय0, द्वि0 अंक , पृ0 30–31,टीका पं0 रामचन्द्र मिश्र ,द्वि0 संस्करण वाराणसी ।

2– प्रिय0,द्वि0 अंक ,पृ0 46 , व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री ,प्र0 सं0 वाराणसी ।

। गमनं नाटयतः ।[1]

आरण्यका – । कदलीगृहाभिमुखमवलोक्य । हञ्जे इन्दीवरिके , अतिशिशिरतया[2] सलिलस्योरुस्तम्भ इव समुत्पन्न । तच्छनैः शवैर्गच्छावः ।

आरण्यका की प्रियसखी मनोरमा ने उसे समझाया कि तुम राजा की ऑखों में बस गयी हो अतः विशेष चिन्ता की आवश्यकता नहीं है । स्वयं कोई ऐसा उपाय करेगे कि उनसे तुम मिल सको । अतः वह विदूषक से इस प्रकार कहती है –

वसन्तक , अलं शङ्कया । यादृश्यारण्यकायाः कृते आत्मनः प्रियवयस्य स्यावस्था त्वया वर्णिता , ततो द्विगुणतरा भर्तुरपि कृते मम प्रियसख्या अवस्था । तत्पश्य पश्य ।[3]

बेचारी जब आरण्यका बन्धन में पड़ जाती है तो वासवदत्ता के क्लेश से दुःखी नहीं होती बल्कि उसे इसलिये निराशा होती है कि महाराज का दर्शन नहीं पा सकेगी । उसका दुःख इस सीमा तक पहुॅच गया है कि वह एकदिन आत्महत्या करने जा रही थी , किन्तु वह मनोरमा ही थी जिसने किसी तरह से उसे रोका । मनोरमा इस प्रकार वासवदत्ता से कहती है – भट्टिनि , प्राणसंशये वर्तते सा तपस्विनी ।

वासवदत्ता – । सास्त्रम् । किं पुनस्त्वं प्रियदर्शनावृत्तान्तं जानासि ?

मनोरमा – न खल्वह प्रियदर्शनावृत्तान्तं जानामि । एषा खल्वारण्यका कल्पाव्यपदेशैंनानीतं विषं पीत्वा प्राण संशये वर्तत इत्येवं मया निवेदितम् । तत्परित्रायतां भट्टिनी ।[4]

जब वासवदत्ता को कंचुकी के मुख से यह विदित होता है के यह आरण्यका मौसा दृढ़वर्मा की पुत्री प्रियदर्शिका है जो खो गयी थी अतः वह अपने को धिक्कारती है । वह महाराज से निवेदन करती है – आर्यपुत्र ,परित्रायस्व परित्रायस्व । मम भगिनी विपद्यते ।[5] नाटक के अन्त में जब आरण्यका विष वेग,से बचा ली जाती है तो वह उससे बहनवत् स्नेह होने के कारण राजा को उसका हाथ समर्पित कर देती है । यथा– वासवदत्ता राज्ञो हस्तं बलादाकृष्य प्रियदर्शिकामर्पयति।[6]

1— प्रिय0, द्वि0 अंक, पृ0 37,व्या0 पं0 रामचन्द्र मिश्र , द्वि0सं0 1972 वाराणसी ।

2— अभि0 2/13, "दर्भाड.कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।

आसीद्विवृत्त वदना च विमोचयन्ती शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम् ।।

3— प्रिय0, चतु0 अंक, पृ0 65, व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी, प्र0सं0वि0सं0 2035.

4— प्रिय0, च0 अंक, पृ0 97, व्या0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, द्वि0 सं0 1972.

5— प्रिय0, च0 अंक, पृ0 100, व्या0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, द्वि0 सं0 1972.

6— प्रिय0, च0 अंक, पृ0 106, व्या0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, द्वि0 सं0 1972.

वासवदत्ता उदयन की पटरानी है, उसकी दासियां मदनिका व चूतलतिका हैं । वासवदत्ता राजा के पास यह संदेश दासियों से भिजवाती है – अद्य खलु भया मकरन्दोद्यानं गत्वा रक्ताशोकपादपतले संस्थापितस्य भगवतः कुसुमायुधस्य पूजा निर्वर्तयितव्या । तत्र आर्यपुत्रेण सन्निहितेन भवितव्यम् ।[1]

वासवदत्ता अपनी सखी काञ्चनमाला के साथ भगवान कामदेव की पूजा करने जाती है । पूजन की सामग्री सागरिका के लिए होती है । वासवदत्ता अपनी सखी काञ्चनमाला से पूछती है कि रक्ताशोक वृक्ष कितनी दूर है जहाँ मुझे भगवान कामदेव की पूजा करनी है । इस पर वह कहती है – "भर्त्रि ! आसन्न एवं । किंन प्रेक्षते भत्री । इयं खलु सा निरन्तरोद्भिन्न कुसुमशोभिनी भत्र्या परिगृहीता माधवीलता । एषाप्यपरा नवमालिकालता यस्या अकालकुसुम समुद्रगम श्रद्धालुना भर्त्राऽनुदिनमायास्यत आत्मा । तदेतामतिक्रम्य दृश्यत एवस रक्ताशोकपादपो यत्र देवी पूजां निर्वर्तयिष्यति ।[2]

रक्ताशोक वृक्ष के समीप पहुँच कर काञ्चनमाला कहती है यहीं पूजा सम्पन्न करनी है । वासवदत्ता कहती है मुझे पूजा सामग्री लाओ । सागरिका[3] पास में जाकर यह सब तैयार है, सागरिका को देखकर वासवदत्ता अपने आप कहती है । सेविकाओं की लापरवाही आश्चर्यजनक है। यथा – यस्यैव दर्शनपथात्प्रयत्नेन रक्ष्यते तस्यैव दृष्टिगोचर पतिता भवेत् । भवतु । एवं तावद् भणिष्यामि ।। प्रकाशम् । हञ्जे सागरिके कस्मात्त्वमद्य मदन महोत्सवपराधीने परिजने सारिकामुज्झित्येहागता । तत्तत्रैव लघु गच्छ । एतदपि सर्व पूजोपकरणं काञ्चनमालाया हस्ते समर्पय ।[4]

1– रत्ना0, प्र0 अंक, पृ0 26, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास द्वि0 सं0 वाराणसी ।

2– रत्ना0, प्र0 अंक, पृ0 40, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

"प्राचीन काल में सम्पन्न व्यक्ति अपना मनोहर उद्यान रखते थे । उसमें दो लतायें ऐसी हुआ करतीं थीं, जिसमें एक पुरुष की होती थी तथा दूसरी स्त्री की । किसकी लता अधिक सुन्दर रुप में खिलती है – एतदर्थ होड़ लगा करती थी । कभी – कभी अन्य दोहिदों के साथ भी मंत्र यंत्र के सहारे भी बेमौसम लताओं में फूल लाने का प्रयास किया जाता था । यह विलासिता का भी एक अंग था । इसी की ओर यहाँ संकेत है ।

3– सागरिका जिसका असली नाम रत्नावली था ,अनुपम सुन्दरी थी । यही कारण है कि वासवदत्ता सर्वदा यह प्रयत्न करती थी कि वह राजा के सामने न आने पाये । अन्यथा सागरिका के सौन्दर्य जाल में फॅसकर राजा वासवदत्ता को प्यार करना कम कर देगे ।

4– रत्ना0, प्र0 अंक, पृ0 41,टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी ,प्रका0 मोती लाल बनासीदास ,द्वि0 सं0,वाराणसी ।

वासवदत्ता के इतना कहने पर सागरिका आज्ञा का पालन तो करती है ,लेकिन पुनः वापस होकर स्वयं से ही कहती है कि सारिका तो मेरे द्वारा सुसंगता[1] के हाथों में सौंप दी गयी है । मुझे यह देखने की उत्कन्ठा है कि जिस तरह पिता जी के अन्तःपुर में भगवान कामदेव पूजे जाते हैं, क्या यहॉ भी उसी तरह से । पूजे जाते हैं । अथवा दूसरी तरह से । अतः छिपकर देखेगी तो जब तक यहॉ पूजा का समय् हो रहा है तब तक मैं भी भगवान कामदेव के पूजन के लिए फूल तोड़ूंगी ।[2]

काञ्चनमाला पूजा की सामग्री तैयार कर देती है तो वासवदत्ता कहती है – तेन हि उपनय में कुसुमानि । विलेपनं च । यह सब कार्य सागरिका छिपकर इसलिए देखती है कि यहॉ की मदन पूजा और उसके पिता जी के यहॉ की मदन पूजा में क्या अन्तर है । उसे वह देख चुकी है । सागरिका उदयन को देखकर मन ही मन अपने को धन्य मानती है ।

सागरिका की प्रियसखी सुसंगता सारिका का पिंजड़ा लिये हुए कहती है कि पता नहीं मेरी प्रिय सखी पिंजडे को सौंप कर कहॉ चली गयी । अचानक उसे वासवदत्ता की दासी निपुणिका दिखाई पड़ती है । उससे वह पूॅछती है कि सागरिका को मै। खोज रहीं हूॅ इस पर निपुणिका कहती है – सखि ,दृष्टा मया ते प्रियसखी सागरिका गृहीतचित्र फलकवर्तिकासमुद्का समुद्विग्नेव कदली गृहं प्रविशन्ती । तद्गच्छ प्रियसखीम् । अहमपि देव्याः सकाशं गमिष्यामि ।[3] सागरिका अपनी प्रिय सखी सुसंगता से चित्र को छिपाती हुयी लज्जा का अनुभव करती है । चित्रपट को सुसंगता खींचती है तथा उससे पूछती है तुम्हारे द्वारा यह कौन चित्रित किया गया है । इस पर वह कहती है – सखि , प्रवृत्तमदनमहोत्सवे भगवाननङ्गः ।[4]

1– रत्ना0,पृ0 अंक ,व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी , द्वि0 सं0 वाराणसी , पृ0 32.

"सुसंगता यह महारानी वासवदत्ता की सेविका व सागरिका की घनिष्ठ सहेली है ।"

2– रत्ना0,प्र0 अंक ,पृ0 36, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी ,द्वि0 सं0 वाराणसी ।

3– रत्ना0,द्वि0 अंक,पृ0 57, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय ,प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास , प्र0सं0 वाराणसी।

4– रत्ना0,द्वि0 अंक,पृ0 60, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय ,प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास ,प्र0सं0 वाराणसी।

सुसंगता चतुराई के साथ तूलिका लेकर चित्रफलक पर । अर्थात् सागरिका । को अंकित कर देती है । इस पर सागरिका लज्जा का अनुभव करती हुई कहती है कि इस बात को दूसरा कोई न जाने , उसकी प्रिय सखी काम व्यथा को शान्त करने के लिये मृणाल के पत्तों को सागरिका की छाती पर लगाती है । इस पर वह कहती है – सखि ,अपनयेनमानि नलिनीपत्राणि मृणालवलायानि च । अलमेतैः । किमित्यकारण आत्मानमायासयसि । ननु भणामि । यथा[1] –

दुर्लभजनानुरागो[2] लज्जा गुर्वी परवश आत्मा ।

प्रियसखि विषमं प्रेम कारणं शरणं नरवरमेकम्[3] ।।

सुसंगता राजा व विदूषक की वार्ता को चुपचाप से सुनती है तथा सागरिका के पास जाकर कहती है। तुम बड़ी भाग्यशाली हो क्योंकि चित्रफलक को देखकर उदयन तुम्हारे प्रति काफी आशक्त हो गया है । जब बासवदत्ता कदली गृह में उदयन के पास जाती है तो उसकी सखी काञ्चन माला को देख लेती है व अपनी स्वामिनी को दिखाती है । वासवदत्ता ध्यान से देखकर – काञ्चनमाले ,अयमार्यपुत्रः । इयं पुनः सागरिका । किं न्वेतत् ।[4] वासवदत्ता की सखी काञचनमाला कहती है कि देवी आप ऐसा करें कि अगर ऐसी बात है कि राजा सागरिका के लिये उत्सुक हैं तो आप सागरिका वेश धारण करके दिखला दो । वासवदत्ता ऐसा ही करती है लेकिन पर स्त्री विषयक वार्ता सुनीं नहीं जाती और क्रोधित होकर चली जाती है । पुनः वापस आकर कहती है । यथा – हञ्जे काञ्चनमाले, एतेनैव लतापाशेन बद्ध्वा गृहाणैनं ब्राह्मणम् एतां च दुर्विनीता कन्यकामग्रतः कुरू ।

काञ्चनमाला–यद्देव्याज्ञापति । लतापाशेन विदूषकं बध्नाति । हताश, अनुभवेदानीमात्मनो दुर्नयस्य फलम् । सागरिके, त्वमप्यग्रतो भव ।[5]

1– रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 63, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी । प्र0 सं0 1980.

2– मालवि0, 2/4– " दुर्लभः प्रियो में तस्मिन्भव हृदय निराश ।"

3– दशरू0, 1/33– " प्रतिमुख संधि का भेद –" विधूतं स्यादरतिः ।"

4– रत्ना0,तृ0 अंक , पृ0 88, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी ,द्वि0 सं0 वाराणसी ।

5– रत्ना0, तृ0 अंक, पृ0 128, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0–वाराणसी ।

सुसंगता रत्नमाला को लेकर ऑखों में ऑसू भर कर कहती है – "। सकरूणं निःश्वस्य । हा. प्रियसखि सागरिके, हा लज्जालुके, हा उदारशीले, हा सखीजनवत्सले, हा सौम्यदर्शने, कुत्रदानीं त्वं मया प्रेक्षितव्या ।[1]। इति रोदिति । उर्ध्वमवलोक्य निःश्वस्य च । अयि दैवहतक, अकरूण, असामान्यशोभा तादृशी त्वया यदि निर्मिता तत्कस्मात्पुनरीदृशम वस्थान्तरं प्रापिता ।

प्रिय सखी जब कष्ट में होती है तो सुसंगता दुःखी होकर विदूषक से कहती है – । रूदती सहसोपसृत्य । आर्य वसन्तक, तिष्ठ तावन्मुहूर्तकम् ।[2]

नाटक के अन्त में सागरिका अग्नि के चारों तरफ से घिर जाती है, सोचकर संतोष के साथ कहती है कि – [3]अद्य हुतवहो, दिष्टया करिष्यति ममदुःखावसानम् ।[4]

अन्त में वासवदत्ता[5] – । हस्तं प्रसार्य । एहि, रत्नावलि एहि । एतावदपि तावन्मे भगिनिकानुरूपं भवतु । इति रत्नावली स्वैराभरणैलंकृत्य हस्ते गृहीत्वा राजानमुपसृत्य । आर्यपुत्र प्रतीच्छैनाम् ।

1– रत्ना0 चतु0 अंक, पृ0 173, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, प्र0 सं0 वाराणसी ।

भा0सा0, कु0सं0, 4/28 – "न खलु प्रेम चलम् सुहज्जने ।"

2– रत्ना0, चतु0 अंक, पृ0 175, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0सं0 वाराणसी ।

3– रत्ना0, चतु0 अंक, पृ0 210, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

4– रत्ना0, च0 अंक, पृ0 220, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका, मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

3— नाटकों में नारी पात्रों की अभिनेयता -

भास व हर्ष के नाटक सहज अभिनेयता के गुण से विभूषित हैं । यह सब रूपक नाटकीय दृष्टि से युक्त, व्यवस्थित एवं सुगठित हैं । प्रत्येक नारी पात्र अपना मन्तव्य थोड़े शब्दों में व्यक्त करना पसन्द करती है । इन संक्षिप्त एवं सारगर्भित कथनों में वे ऐसे सूक्ति वचनों का प्रयोग करंते हैं जो इन पात्रों को अमर बना देते हैं । उदयन नाटकों में नारी पात्रों की अभिनेयता के अध्ययन के लिये कुछ प्रमुख प्रसंगों को यहॉ अवतरित किया गया है ।

वासवदत्ता ने नाटक में काफी सुन्दर अभिनय किया है । उसने नाटक के शुरू में ही जान लिया है कि पद्मावती उदयन की होकर रहेगी फिर भी पूरे नाटक में धैर्य से अपनी नाटकीयता का अभिनय करती रही जैसा कि पद्मावती कहती है – अम्मो ! परपुरूषदर्शनं परिहरत्यार्या । भवतु, सुपरिपालनीयः खलु मन्नयासः ।[1]

वासवदत्ता जब यौगन्धरायण व ब्रह्मचारी की आपस की वार्ता सुन रही थी तो मन ही मन अपने को कोसती है तथा कहती है – सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु ।

जिस समय कुमारी पद्मावती अपनी सखियों के साथ गेंद खेल रही होती है तो वासवदत्ता कहती है – नहि नहि । हला ! अधिकमद्यशोभते । अभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि । इस पर पद्मावती कहती है – अपेहि । मेदानीं मामपहस ।[2]

जब इस बात का पता चलता है कि पद्मावती उदयन को चाहती है। वासवदत्ता के लिये यह परिवर्तन अत्यन्त मर्मस्पर्शी है । जब धायी के द्वारा उसे पता चलता है कि पद्मावती का हॉथ उदयन को दे दिया गया । सोचती है बड़ा अनर्थ हो गया , धायी कहती है अनर्थ की क्या बात । धायी व वासवदत्ता आपस में बातचीत करती है । यथा – आर्ये ! आगम प्रधानानि सुलभ पर्यवस्थानानि महापुरूष हृदयानि भवन्ति।

1– स्वप्नवासवदत्तम् ,प्र0 अंक,पृ0 22, व्या0 गणेश दत्त शर्मा, प्रका0रतिराम शास्त्री, सुभाष बाजार मेरठ, प्र0सं0 1968 .

2– स्वप्नवासवदत्तम्,द्वि0 अंक,पृ0 26, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी ,द्वि0सं0 1972 .

वासवदत्ता – आर्ये ! स्वयमेव तेन वारिता ।

धात्री – नहि नहि अन्यप्रयोजनेनेहागतस्याभिजन विज्ञानवयो रूपं दृष्टवा स्वयमेव महाराजेन दत्ता ।

वासवदत्ता – । आत्मगतम्। एवम् । अनपराद्ध इदानीमत्रार्यपुत्रः

प्रविश्यापरा।

चेटी – त्वरतां त्वरतां तावदार्या । अद्यैव किल शोभन नक्षत्रम् । अद्यैव कौतुकमङ्गल कर्तव्यमित्यस्माकं भट्टिनी[1] भणति ।

वासवदत्ता – ।आत्मगतम्।यथा यथा त्वरते, तथा तथान्धीकरोति मे हृदयम् ।

धात्री – एत्वेतु भर्तृदारिका ।[2]

उदयन का पद्मावती से विवाह होना निश्चित हो गया यह जानकर वासवदत्ता के विरही हृदय को और आघात पहुँचा । दर्शक के महल में विवाह की चहल – पहल है इससे बचने के लिये वासवदत्ता अकेली , व्यथित हृदय प्रमद वन में बैठी है । दासी आकर कहती है कि सुहाग की माला तो आप ही गूँथें क्योंकि उच्चकुल में उत्पन्न हुई प्रेम की मूर्ति एवं चतुर हो । अपने मन में–[3] एतदपि[3] मया कर्तव्यमासीत्। अहो । अकरूणाः खल्वीश्वराः । चेटी – आर्ये ! मेदानीमन्यच्चिन्तयित्वा । एष जामाता मणिभूम्यां स्नायति । शीघ्रं तावद् गुम्फत्वार्या ।

1– ना0शा0 – "राजपतन्यस्तु सम्भाष्याः सर्वः परिजनेन तु भट्टिनी स्वामिनी देवी इत्येव नाटके बुधै : ।

2– स्वप्न0, द्वि0 अंक, पृ0 38, व्या0 गणेश दत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, सुभाष बाजार, मेरठ, प्र0 सं0 1968

काको0 209 – "कुलं च शीलं च सनाततां च विद्या च विप्तं च वपुर्वयश्च ।
एतान् गुणान् सप्तपरीक्ष्यदेया कन्या बुधैः शेषम चिन्तनीयम् ।"

प्रतिज्ञा0 2/4 श्लोक इस विषय में दृष्टव्य है ।

3– स्वप्न0, तृ0 अंक, पृ0 40, व्या0 गणेश दत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, सुभाष बाजार मेरठ, प्र0 संस्करण 1968

चुपचाप रहकर भाग्य की विडम्बना देखिये वह सब कार्य करती है । भास ने उसकी यहाँ महानता को अक्षुण्ण रखते हुए भी उसे मनुष्य स्तर पर संवेदनशील बनाये रखा है । पद्मावती वासवदत्ता से उदयन की प्रेम विषयक बात करती है इतने में उदयन व विदूषक आ जाते हैं । अवन्तिका परपुरूष दर्शन से बचती है अतः माधवी लता मण्डप में छिप जाती है । जब वह उदयन के मुख से वासवदत्ता के अतिशय प्रेम को सुनाती है तथा मन ही मन – भवतु भवतु, विश्वस्तास्मि। अहो ! प्रियं नाम्, ईदृशं वचनम प्रत्यक्ष श्रूयते ।

उदयन पदमावती के धैर्य के विषय में जानता है, साथ ही दर्शक भी पदमावती की धैर्यशीलता से परिचित हैं । यद्यपि पदमावती को वास्तविकता का पता चलता है तो वह उद्विग्न नहीं हुई फिर भी वह स्त्री है, स्वभाव से ही धीरू होती है[2] –

इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् ।
कामं धीर स्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु[3] कातरः ।।

पदमावती के सिर में दर्द हुआ इसकी सूचना तो अंक के प्रारम्भ में ही मिल गयी । बाद में इस दर्द का क्या हुआ कुछ पता नहीं । उसके लिए विश्राम का प्रबन्ध किया गया था, वहाँ भी उसका कुशल क्षेम पूछने या मन बहलाने के लिए और तो सब पहुँच गये पर स्वयं वह रही होगी – "प्राणी प्राप्य रूजा पुननं शयनंशीघ्रं स्वयं मुञ्चति ।[4]

नाटक में पदमावती का सिर दर्द उदयन और वासवदत्ता के नाटकीय मिलन के लिए ही है। वासवदत्ता ने ही सुन्दर अभिनय नहीं किया बल्कि पद्मावती ने भी किया । उसके मुँह से दो बार जैसे निकला है – "हला ! मा मैवम् । सदाक्षिण्य एवार्यपुत्र ।"[5]

1– स्वप्न0, अंक, पृ0 56, व्या0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी ।

2– स्वप्न0, 4/8, पृ0 61, व्या0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी।

3– भवभूति– 4/12 "पुरन्ध्रीणांचित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति ।"

4– स्वप्न0, पं0 अंक, पृ0 72, व्या0 विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी ।

5– स्वप्न0 च0 अंक, पृ0 52, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनो सदाक्षिण्य एव भवति । । उपेत्य । जयत्वार्यपुत्रः । इदं मुखोदकम् ।[1]

भास ने पद्मावती का बड़ा ऊँचा चरित्र प्रस्तुत किया है जिससे कि उसमें स्त्री सुलभ मान । ईर्ष्या । की गन्ध भी प्रतीत न हो ।

पदमावती को जब यह मालूम हो जाता है तो वह वेश में वह उदयन की प्रथम पत्नी वासवदत्ता ही है तो वह ईर्ष्या ही नहीं रखती बल्कि प्रसन्न हो जाती है । वह चित्र धाय को दिखाया जाता है जिससे कि वह पहचाने कि वासवदत्ता है कि नहीं लेकिन इसी बीच यौगन्धरायण आकर अपनी बहिन को मांगता है । धाय देखते ही वासवदत्ता को पहचान जाती है और कहती है। यथा – । आवन्तिकां निर्वर्ण्य । अम्भो । भर्तदारिका वासवदत्ता !

अन्त में पदमावती वासवदत्ता से क्षमा मांगती है – अहो ! आर्या खल्वियम् । आर्ये ! सखीजन समुदाचारेणाऽजानन्त्याऽतिक्रान्तः समुदाचारः । तच्छीर्षेण प्रसादयामि ।

इस पर वासवदत्ता कहती है – । पद्मावतीमुत्थाप्य । उत्तिष्ठोत्तिष्ठाविधवे ! उत्तिष्ठ ! अर्थिस्वं नाम शरीरम पराध्यति ।[2]

जिस नाट्यशाला में नाटका का अभिनय होने जा रहा है उसी का रास्ता वासवदत्ता । महारानी । अपनी चोटियों से पूछतीं हैं । उनके साथ जो सदा वृद्ध महिला रहती है वह सांकृत्यायनी है उसी के द्वारा नाट्यशाला की सुन्दरता का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

आभाति रत्नशतशोभिशोभितशात कुम्भ
स्तम्भावसक्तपृथुमौक्तिकदामरम्यम् ।
अध्यासितं युवतिभिर्विजिताप्सरोभिः
प्रेक्षागृहं सुरविमानसमानमेतत् ।।[3]

1— स्वप्न0, च0 अंक, पृ0 58, व्या0 जयपाल, विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0 1972.

2— स्वप्न0, ष0 अंक, पृ0 112, व्या0 गणेशदत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, सुभाष बाजार, मेरठ, प्र0 सं0 1968.

3— प्रिय0, 3/2, टीका0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौ0 अमर भारती प्रकाशन वाराणसी, प्र0 सं0, वि0सं0 2035.

वासवदत्ता महारानी होने के नाते मनोरमा और आरण्यका को आदेश देती है – [1]आरण्यके, एतैरैव मदङ्ग‌पिनद्धैरा भरणैर्नेपथ्यभूमिं गत्वात्मानं प्रसाधय । । आभरणान्यगंदवतार्यारण्यकायाः समर्पयति । मनोरमे, त्वमपि नलगिरिग्रहणपरितुष्टेन तातेनार्य पुत्राय दत्तान्याभरणानीन्दीवरिका सकाशाद् गृहीत्वा नेपथ्यभूमि गत्वात्मानं मण्डय, येन सुसदृशी दृश्ययसे महाराजस्य ।

वासवदत्ता का रूप बनाये आसन पर बैठी हुई आरण्यका तथा वीणा धारणी काञ्चनमाला प्रवेश करती है । सांकृत्यायनी आरण्यका को देखकर – राजपुत्रयाः सदृशमाकारं पश्याम्यस्याः । तादृशेनाकारेणा वश्यं त्वदीयां भूमिकां सम्भावयिष्यति ।[2]

वत्सराज वेश में मनोरमा भी प्रवेश करती है तथा राजा के समीप जाकर चुपचाप कहती है कि महाराज इन आभूषणों से अपने आप को अलंकृत कर लें । अपनी देह से गहने उतार कर राजा को देती है । वासवदत्ता नाटक को देखते ही बीच में उठकर चल देती है क्यों कि उसे यह विश्वास होने लगता है कि वसन्तक वेश धारण किये राजा ही है और कोई नहीं, इस पर सांकृत्यायनी कहती है – [3]राजपुत्रि, धर्मशास्त्रविहित एष गान्धर्वो विवाहः[4] । किमत्र लज्जास्थानम् । प्रेक्षणीयकमिदम् । तन्न युक्तमस्थानो रसभङ्गं कृत्वा गन्तुम् ।

इस प्रकार आरण्यका ने वासवदत्ता के रूप में तो अच्छा अभिनय किया राजा तो स्वयं अपनी भूमिका अदा कर ही रहे थे इस प्रकार अभिनय के छल से दोनों प्रेमिकाओं ने अपना मनोरथ पूरा कर लिया ।

1– प्रिय0, तृ0 अंक, पृ0 53–54, व्या0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी द्वि0 सं0 1970.

2– प्रिय0 तृ0 अंक, पृ0 57, व्या0, पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी द्वि0 सं0 1970.

3– प्रिय0, तृ0 अंक, पृ0 71, व्या0, पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी, द्वि0 सं0 1970.

4– अभि0 – "इच्छयाऽन्योन्येसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च गान्धर्वः

स तु विज्ञयो मैथुन्यः कामसम्भवः ।"

वासवदत्ता जब काञ्चनमाला के साथ मदन पूजा करके चली जाती है तब सागरिका यह पूजा कार्यक्रम छिप कर देखती है उनके चले जाने पर वह स्वयं से कहती है – कथं प्रस्थिता देवी। भवतु । तदहमपि त्वरितं गमिष्यामि । । राजानं सस्पृहं दृष्टवा । निःश्वस्य । हा धिक हा धिक । मन्दभागिन्या मया प्रेक्षितुमपि चिरं न पारिरितोऽयं जनः ।[1]

इतना ही नहीं वह और कहती है [2]– । निःश्वस्य । हृदय, प्रसीद प्रसीद[3] । किमनेनायासमात्रफलेन दुर्लभजनप्रार्थनानुबन्धेन ।[4] अन्यच्च, यनैव दृष्टेन त ईदृशः सन्तापो ननु वर्धते तमेव पुनरपि प्रेक्षितुमभिलषसीत्यहो ते मूढता । कथं चातिनृशंस .... ।

जब सागरिका अपनी सखी सुसंगता को उदयन विषयक प्रेम बताती है तथा उससे इस प्रकार कहती है – तत्किमिदानीमत्र करिष्यामि । अतोऽपि में अधिकतरं सन्तापो वर्धते।। मदनावस्थां नाटयति ।[6]

जब वासवदत्ता को सागरिका व उदयन के प्रेम के विषय में पता चलता है तो सागरिका लज्जा के कारण सोचती है क्यों न आत्महत्या कर लूँ । इस प्रकार विचार करके – । उपसृत्य । तद्यावदेतस्याः माध्वीलतायाः पाशं विरचय्याशोकपादप आत्मानमुदबध्य व्यापादयामि । । इति लतापाशं रचयन्ती । हा तात । हा अम्ब ! एषेदानीमहमनाथऽशरषा विपद्ये मन्दभागिनी । । इति कण्ठे लतापाशमर्पयति ।[7]

1– रत्ना0, प्र0 अंक, पृ0 40, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0 1976.

2– रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 57, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, प्र0 सं0 1980.

3– दशरू0, 1/32, प्रतिमुख संधि का भेद – "रत्यैहाविलासः स्याद ।"

4– अ0को0, 3/3/98 – "दोषोत्यादेऽनुबन्धस्यात् प्रकृत्यादिविनश्वरे ।"

5– अ0को0, – "ननु प्रश्ने प्रश्नावधारणान् क्षानुन यामंत्रणे ननु ।"

6– रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 32, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0 1972.

7– रत्ना0, तृ0 अंक, पृ0 122, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0सं0 1972.

लेकिन राजा को देखकर[1] – । राजानं दृष्ट्वा । अम्मो । कथमेष भर्ता । । सहर्षमात्मगतम्। यत्सत्यमेनं प्रेक्ष्य पुनरपि में जीविताभिलाषः संवृत्तः । अथवैनं प्रेक्ष्य कृतार्था भूत्वा सुखेनैव जीवितं परित्यक्ष्यामि । । प्रकाशम् । मुञ्चतु मां भर्ता । पराधीनः खल्वयं जनः न पुनरीदृशमवसरं मर्तुं प्राप्नोति । । इति पुनः कण्ठे पाशं दातुमिच्छति । ।

काञ्चनमाला के द्वारा वासवदत्ता को यह पता चलता है कि महाराजा आपको मनाने आ रहे हैं । इस पर बड़ी प्रसन्नता के साथ सोचती है – । आकर्ण्य सविषादम् । काञ्चनमाले, कथं सागरिकेत एवागता । तच्छोष्यामि तावत । पश्चादुपसर्प्स्यामि ।[2]

राजा को देखकर सागरिका के मन में जीने की आशा पुनः जाग गयी फिर भी वह जोर से चिल्लाती हे बचाइये, बचाइये । वह वसुभूति को देखकर – हा तात ! हा अम्ब ! कुत्रासि । देहि में प्रतिवचनम् ।

अन्त में वासवदत्ता भी बहिन जैसा प्रेम दिखाकर सुन्दर अभिनय करती हैं – सास्रं बाहू प्रसार्य । एह्येहयितिनिष्ठुरे, इदानीमपि तावत् स्नेहं दर्शय ।। इति कण्ठे गृहणाति ।[3]

अन्त में वासवदत्ता – । हस्तं प्रसार्य । एहि, रत्नावलि, एहि । एतावदपि तावन्मे भगिनिकानुरूपं भवतु । इति रत्नावली स्वैराभरणैरलंकृत्य हस्ते गृहीत्वा राजानमुपसृत्य । आर्यपुत्र प्रतीच्छैनाम् ।[4]

1– रत्ना0, तृ0 अंक, पृ0 124, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

2– रत्ना0, तृ0 अंक, पृ0 126, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी द्वि0 सं0 वाराणसी ।

3– रत्ना, च0 अंक, पृ0 215–216, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्र0 सं0 वाराणसी ।

4– रत्ना0, च0 अंक, पृ0 220, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्र0 सं0 वाराणसी ।

समीक्षा -

नारी पुरूष के पूरक के रूप में समाज के प्रत्येक कार्यकलाप में नारी पात्रों मं अति महत्वपूर्ण भूमिका नायिका की होती है । महाकवि भास तथा हर्ष के उदयन रूपकों में नाट्यशास्त्रीय ढंग से नायिका की भूमिका के चित्रण से स्पष्ट है कि नायिका के कई भेद होते हैं। वासवदत्ता परिणीता होने के कारण राजा उदयन की गृहलक्ष्मी एवं नायिका है । भास की वासवदत्ता में पति के प्रति अद्‌भुत प्रेम, अपनी भावनाओं को दबाना, पति के हित में त्याग, सौन्दर्य, सती साध्वी व पति परायणता के गुण विद्यमान हैं । हर्ष की वासवदत्ता भी सौन्दर्य, पति प्रेम, क्रोध में विनयशीलता, पति का सम्मान, उदारता, त्याग, संयम आदि गुणों से परिपूर्ण है । दोनों नाटककारों की यह नायिका पाठक के ह्रदय में अपना विशेष स्थान बनाने में सफल हो जाती है । भास की वासवदत्ता में जहॉ आदर्श का पुट है वहीं हर्ष की वासवदत्ता में वास्तविकता का पुट है।

भास की पद्‌मावती नायिका में धार्मिकता, अपूर्व सौन्दर्य, गुरूजनों के प्रति असीम श्रद्वा, मर्यादित व्यवहार, सुसंस्कृत व्यवहार, शालीनता आदि गुण परिलक्षित होते हैं ।

हर्ष की प्रियदर्शिका मुग्धा नायिका है । वह सौन्दर्य से परिपूर्ण नवयुवती है जो कठिन परिस्थितियों में भी धैर्य को नहीं छोड़ती और मर्यादित व्यवहार करते हुए कभी भी अपनी हेठी नहीं होने देती ।

हर्ष की नायिका रत्नावली जो अधिकांश नाटक में सागरिका के नाम से जानी जाती है, सभी स्त्री सुलभ श्रेष्ठ गुणों से युक्त है । वह मुग्धा नायिका है जो प्रारम्भ में परकीया और अन्त में स्वीया हो जाती है । वह साक्षात सौन्दर्य की प्रतिमा है जिसे देखकर वासवदत्ता के ह्रदय में संदेह हो जाता है इसलिए उसको राजा की दृष्टि से दूर रखने का प्रयास करती है । राजा उदयन उसके चित्र को देखने मात्र स ही उस पर आसक्त हो गया । वह राजा को अत्यधिक प्रेम करती

है परन्तु प्रेम की सीमा को नहीं लांघती । वह वासवदत्ता से सत्य. को छिपाती है । उसकी यही तपस्या उसे स्वीया नायिका बना देती है ।

नायिकाओं के सात्विक यौवनाअलंकार दो प्रकार के होते हैं यत्नज एवं अयत्नज । यत्नज के अन्तर्गत अंगज एवं हेला व स्वाभाविक में शोभा, कान्ति , दीप्ति, माधुर्य, औदार्य, धैर्य, लीला, विलास, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, ललित, विच्छित्ति, विहृत आदि प्रमुख हैं । इनमें से भास व हर्ष दोनों नाटककारों ने यौवनालंकारों को अति निपुणता से अपनी – अपनी नायिकाओं में समावेशित किया है ।

नायिका की सखियॉ व सेविकायें नाटक को पूर्णता प्रदान करतीं हैं । भास के नाट्य प्रतिज्ञायौगन्धरायण में नायिका की प्रमुख सखियॉ व सेविकायें अद्रृष्टब्य हैं तथा स्वप्नवासवदत्तम् में मधुकरिका, पद्मिनिका आदि थी । हर्ष के नाट्य प्रियदर्शिका में नायिका की सहचरी व दासियॉ काञ्चनमाला, मनोरमा, इन्दीवरिका, सांकृत्यायनी तथा रत्नावली में काञ्चनमाला, सुसंगता, चूतलतिका, निपुणिका थीं ।

द्वितीय अध्याय

सामाजिक जीवन में नारी की गतिविधियों (स्वरूप) का नाटकों में चित्रण

द्वितीय अध्याय

सामाजिक जीवन में नारी की गतिविधियों । स्वरूप । का नाटकों में चित्रण -

सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन में नारी की विविध रूपों में महत्वपूर्ण भूमिका हमारे देश में पुरातन काल से रही है। यद्यपि सामाजिक जीवन में नारी की भूमिका सदैव विवादास्पद रही है किन्तु सामाजिक क्षेत्र में नारी के योगदान को कोई भी अनदेखा नही कर पाया है । भास व हर्ष ने अपने – अपने नाटकों में नारी की सामाजिक गतिविधियों पर अत्यन्त सुन्दर, मनोरम व सरस वर्णन किया है । हम यहाँ पर उनके प्रसिद्ध उदयन रूपकों में सामाजिक जीवन की गतिविधियों का संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं ।

कन्या -

भास के 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्' नाटक में प्रद्योत ।नामक। राजा के एक कन्या थी जिसका नाम वासवदत्ता था, उसकी वयःसन्धि पर प्रतिदिन भिन्न–भिन्न राजकुलों से कन्या की शादी के लिए दूत आने का वर्णन है परन्तु न तो महासेन किसी को इनकार करते हैं और न किसी को अंगीकार ही करते हैं । जब कन्या सयानी होने लगती है तो घर के सभी लोग चिन्ता करने लगते हैं कि उसके योग्य कोई वर मिल जाये जिसके साथ इसका विवाह सम्पन्न हो जाये । इस पर काञ्चुकीय परामर्श देता है कि ये सब गुण किसी एक पुरूष में इस समय नहीं दिखाई पड़ते हैं ।

यथा –[1] अतः खलु चिन्त्ये।

कन्यायाः वरसम्पतिः पितुः प्रायः प्रयत्नतः ।

भाग्येषु शेषमायत्तं दृष्टपूर्वं न चान्यथा ।।

जब यौगन्धरायण पकड़ा जाता है तो भरतरोह उससे कहता है कि महासेन की कन्या को अग्नि की साक्षी देकर । वत्सराज । ने अपनी शिष्या बनाया और फिर उस कुमारी को हर ले गये। क्या यह चौर–कर्म उचित है ? इस पर

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, 2/5 – "प्रकाश" संस्कृत – हिन्दी व्याख्योपेतम् चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी ।

यौगन्धरायण कहता है कि ऐसा मत कहो, यह तो स्वामी का विवाह है । यथा[1] –

भरतानां कुले जातो वत्सानामूर्जितः पतिः ।

अकृत्वा दारनिर्देशमुपदेशं करिष्यति ।।

स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में मगधराज की पुत्री पद्मावती की अवस्था का चित्रण भास ने किया है । नाटक के शुरू में सूत्रधार कहता है कि पद्मावती तपोवन में निवास करने वाली अपनी माता महादेवी के दर्शन करने आ रही है । उसके पीछे आने वाला सेवक वर्ग सभी तपोवनवासियों को उदंडतापूर्वक मार्ग के मध्य से हटा रहा है । यथा[2] –

भृत्यैर्मगधराजस्य स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः ।

धृष्टमुत्सार्यते सर्वस्तपोवनगते जनः ।।

वसन्तक के गले में पड़ी रत्नमाला को देखकर बसुभूति कहता है कि यह सागर से प्राप्त हुई है – तथा व्यक्तं सिंहलेश्वरस्य दुहिता रत्नावलीयम । । प्रकाशम । आयुष्मति, न खलु राजपुत्री रत्नावली त्वमेनामवस्थामुपगता[3] ।

एक दिन[4] वत्सराज उदयन के दरबार में कंचुकी ने आकर कहा – महाराज, मैं महाराज दृढ़वर्मा का कंचुकी हूँ, उनके दिन आजकल अच्छे नहीं हैं क्योंकि कलिंगपति ने उन्हें बन्दी कर लिया है । उनकी एक प्रियदर्शिका नाम की कन्या है जिसे वह आपको सौंपना चाहते थे । अचानक मेरे मन में विचार आया कि यदि मैं उनकी पुत्री प्रियदर्शिका को आपकी सेवा में पहुँचा दूँ तो तो मेरे स्वामी का वह मनोरथ सफल हो जायेगा, मैं उस कन्या को साथ लेकर चला, रास्ते में दृढ़वर्मा के मित्र विन्ध्यकेतु के घर पर उस लड़की को ठहराकर अगस्त्यतीर्थ में स्नान करने गया, इसी बीच जब तक मैं लौटा किसी ने बिन्ध्यकेतु का बध करके, स्थान

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, 4/17 – "प्रकाश" संस्कृत हिन्दी व्याख्योपेतम् चौखम्भा विद्याभवन,, वाराणसी ।

2– स्वप्नवासवदत्तम्, 1/2, व्याख्या–गणेशदत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, सुभाष बाजार, मेरठ, प्र0 सं0 1968.

3– रत्ना0, चतुर्थ अंक, पृ0 214, ले0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, प्र0 सं0 वाराणसी ।

4– प्रियद0, पृ0 8, टीका0 पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौ0 विद्याभवन, वाराणसी, द्वि0 सं0 1976.

को पूर्ण रूप से जनशून्य कर दिया था, लड़की का भी कोई पता नहीं है ।.ढूंढने पर जब वह नहीं मिली तो मै आपके पास यह समाचार कहने आया हूँ – । विश्वस्यात्मनोऽवस्थां पश्यन् । किमिव हि राजपुत्रया विना तत्र गत्वा कथयिष्यामि । अये कथितं चाद्य मम विन्ध्यकेतुना – "मा भैषीः । जीवति तत्रभवान्महाराजो दृढवर्मा गाढ प्रहार जर्जरीकृतो बद्धस्तिष्ठति" इति । तदाधुना स्वामिनमेव गत्वा पाद परिचर्यया जीवितशेषमात्मनः सफलयिष्यामि । । परिक्राम्योर्ध्वमवलोक्य । अहो अतिदारूणताशरदातपस्य । यदेवं मनेक दुःखसन्तापितेनापि मया तीक्ष्णोऽवगम्यते ।

घनबन्धनमुक्तोऽयं कन्याग्रहणात्परां तुलां प्राप्य ।

रविरधिगतस्वधामा प्रतपाति खलु वत्सराज इव ।।[1]

कथा की बन्धनावस्था[2] में निर्दोषिता या पवित्रता पर भी राजा विजयसेन से पूछते हैं कि क्या विघ्यकेतु के कोई सन्तान है ? तो वह कहता है कि बिन्ध्यकेतु के मारे जाने पर और स्त्रियों के सती हो जाने पर गॉव के लोग विन्ध्य के शिखरों पर चले गये, वह स्थान उजाड़ हो गया, विन्ध्यकेतु के घर में बिल्कुल सन्नाटा सा छा गया ।[3]

अन्त में[4] आरण्यका जब विषपान किये होती अर्थात मूर्च्छित अवस्था में, तो वासवदत्ता से कंचुकी पूछता है कि कंचुकी । विलोक्य । सुसदृशी खल्वियं मम राजपुत्रयाः प्रियदर्शनायाः ।

। वासवदत्ताम् निर्दिश्य । राजपुत्रि, कुत इयं कन्यका ।

वासवदत्ता – आर्य विन्ध्यकेतोर्दुहिता । तं व्यापाद्य विजयसेनेनानीता ।

। अज्ज, विञ्झकेउणो दुहिदा । तं वावादिअ विअअसेणेण आणीदा ।

कंचुकी – कुतस्तस्य दुहिता । सैवेयं मम राजपुत्री । हा हतोऽस्मि, मन्द भाग्यः ।

राजपुत्रि, इयं सा प्रियदर्शिका भगिनीते । । इति निपत्य भूमावुत्थाय ।

1– प्रिय0 1/5, व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी, प्र0 सं0 1980.

2– प्रिय0 1/7, व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी, प्र0 सं0 1980 – "दोषान्यपश्यसि बन्धनस्य न पुनः प्रद्योतपुत्रया गुणान् ।"

3– प्रिय0, प्र0 अंक, पृ0 16, टीका पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन वाराणसी

"हा तात्, हा तात" इति कृत कृपण प्रलापा विन्ध्यकेतार्वेश्मन्याभि जात्यानुरूपा कन्यका "तददुहिता" इत्यस्माभिरानीता द्वारि तिष्ठति । तां प्रति देवः प्रमाणम् ।

4– प्रिय0, चतुर्थ अंक, टी0 पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौ0 विद्याीवन, वाराणसी, द्वि0 सं0 1976.

सहचारिणी -

कोई भी स्त्री हो या पुरूष उसे अपने जीवन में सुख दुःख का साथ निभाने के लिए सहचर या सहचारिणी की उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी कि शरीर रूपी गाड़ी को चलाने के लिए हवा, पानी तथा अन्न की आवश्यकता होती है । पद्मावती को देखकर यौगन्धरायण के मन में उसके प्रति अच्छे भाव नहीं थे परन्तु जब उसे मालूम हुआ कि वह उदयन की सहचारिणी । पत्नी । होने वाली है तो उसमें पद्मावती के प्रति आत्मीयता जाग उठती है । यथा[1] –

प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पा[2]दुपजायते ।

भर्तदाराभिलाषि त्वादस्यां मे महती स्वता ।।

कभी – कभी ज्योतिषियों के अनुसार बतायी गयी बातें सत्य निकलती हैं । यौगनधरायण कुछ इस विषय में जानता था, उसकी यह उक्ति थी –

पदमावती नरपतेर्महिषी भवित्री

दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा ।

तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या –

न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ।।[3]

वासवदत्ता उदयन की सहचारिणी होती है,[4] लेकिन झूठी अफवाह फैल जाती है कि आग लग जाने पर वासवदत्ता मर गयी पर वह बच जाती है, सभी लोग यही समझते है कि वह अब इस संसार में रही नहीं, अपना वेश बदल लेती है जिससे कोई पहचान न पावे । उदयन का विवाह पद्मावती से होने पर अत्यन्त व्यथित होकर वह सोचती है –

1– स्वप्नवासवदत्तम्, 1/7, पृ0 12, व्या0 गणेश दत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, सुभाषबाजार, मेरठ, प्र0 सं0 1968.

2– संकल्प की महिमा का सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है. । मनु ने कहा है –

"संकल्पमूलः कामो वै .... ।"

3– स्वप्नवासवदत्तम् 1/11, टीका० जयपाल विद्यालंकार, प्रका० मोतीलाल बनारसीदास, द्वि० सं० ।

4– स्वप्नवासवदत्तम्, तृतीय अंक, पृ० 32, प्रका० मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, मद्रास, द्वि० सं० 1968.

वासवदत्ता – विवाहोमोदसङ्कुले अन्तःपुरचतुःशाले परित्यज्य पद्मावतीमिहागतास्मि प्रमदवनम्। यावदिदानी भागधेय निवृत्तं दुःखं विनोदयामि । अहो ! अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः । यावद उपविशामि । धन्या खलु चक्रवाकवधूः, याऽन्योन्यविरहिता न जीवति । न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि । आर्यपुत्र पश्यामीत्येतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा ।[1]

उस समय वासवदत्ता का हृदय विलाप करता है जब उसी के द्वारा वरमाला गूँथी जाती है । दासी के चले जाने पर वह सोचती है[2] – गतैषा । अहो ! अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः । अविदा । शय्यायां मम दुःखं विनोदयामि, यदि निद्रां लभे ।

वासवदत्ता का उदयन के प्रति प्रेम अब भी ज्यों का त्यों बना हुआ है साथ ही उसके हृदय में पद्मावती के प्रेम का उदय भी हो रहा है –

कामेनोज्जयनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते

दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः ।

तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं

पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः ।।[3]

उदयन का विवाह वासवदत्ता से हो चुका था, वासवदत्ता उसकी कान्ता थी जो कि अब समाज की दृष्टि में मर चुकी है । अतः उदयन पत्नियुक्त होते हुए भी अपने को कान्त वियुक्त समझता है । वासवदत्ता के मरने पर पत्नी का स्थान तो पद्मावती ने लिया परन्तु कान्ता का स्थान अभी रिक्त ही है और यह रिक्तता उदयन को सदा ही विह्वल किये रखती है । उदयन की

1– स्वप्नवासवदत्तम्, तृतीय अंक, पृ0 40, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0सं0 1968.

2– स्वप्नवासवदत्तम्, तृतीय अंक, पृ0 36, व्या0 गणेश दत्त शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0सं0।

3– स्वप्नवासवदत्तम्, 4/1, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0सं0 1972.

निम्न उक्ति से यह स्पष्ट प्रतीत होता है क़ि उसके हृदय में पद्मावती के प्रति प्रेम उदय हो रहा है परन्तु वासवदत्ता के प्रति उसका प्रणय ज्यों का त्यों बना हुआ है ।[1]

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः प्रियाभिरूपगूढाः ।

पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्तावियुक्ताः स्युः ।।

मरणोपरान्त वासवदत्ता के प्रति अगाध प्रेम का प्रदर्शन महाराज उदयन की उदारता का परिचायक है –

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः ।

वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ।।[2]

चाहे कोई भी व्यक्ति हो वह अपनी सहचारिणी की हर मुद्रा व आहट से परिचित होता है । राजा ने अपनी पत्नी की जरा सी आहट पर विदूषक से बता दिया कि महारानी का आगमन हो गया जो कि[3] :–

कुसुम[ब]सुकुमारमू[स]र्तिदधती नियमेन तनुतरं मध्यम् ।

आभाति मकरकेतोः पार्श्वस्था चापयष्टिरि[अ]व ।।

1– स्वप्नवासवदत्तम्,4/3,व्या0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0 सं0 ।

2– स्वप्नवासवदत्तम्,4/4, टीका0 गणेशदत्त शर्मा, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

3– रत्ना0, 1/19, पृ0 19, पृ0 43, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, चौ0 मोतीलाल बनारसीदास प्र0 सं0 1968.

अ– सभी विशेषण महारानी के पक्ष में लगेगे । महारानी भी फूल की तरह कोमल शरीर वाली व्रत–उपवास के कारण क्षीण मध्य भाग । उदर भाग । को धारण करती हुई कामदेव की मूर्ति के पास स्थित है, यही कारण है कि वह काम की धनुष लता की तरह प्रतीत हो रही है ।

ब– कामदेव का धनुष फूलों से निष्पन्न है । वासवदत्ता पूजन के लिए उपस्थित हुई है इसलिए यष्टि शब्द सार्थक प्रयुक्त है । कामदेव का धनुष फूलों से बना हुआ है अतः यही कारण है कि वह पुष्पधन्वा भी है ।

स– अ० को० 3/3/66 "मूर्तिः काठिन्यकाययो"

अ०को० 3/1/61 – "शिलक्षणं दभ्रं कृशं तनु"

"यष्टिर्भार्ग्यो मधुपष्टयां ध्वजण्डे स्यहारयोः" । हेमचन्द्रः ।

राजा उदयन अपनीं सहचारिणी की प्रशंसा करते हुए कह रहे हैं कि[1] –

प्रत्यग्रमज्जन विशेषविविक्तकान्तिः

कौसुम्भरागरूचिरस्फुरंदशकान्ता ।

विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती

बालप्रवालविटपि[2]प्रभवा लतेव ।।

अपि[3] च – अनङ्गोऽय[4]मनङ्गत्वमद्य निन्दिष्यति ध्रुवम् ।

यदनेन न संप्राप्तः पाणिस्पर्शोत्[5]सवस्तव ।।

वासवदत्ता राजा के प्रेम के विषय में जानकर भी अत्यन्त क्रोध के साथ चली जाती है तो राजा यह सोचता है कि कहीं मेरी पत्नी अनर्थ कार्य न कर ले अर्थात् आत्महत्या न करे । इसी विषय में वह विदूषक से कहता है कि[6] –

समारूढ़ा प्रीतिः प्रणय बहुमानादनुदिनं

व्यलीकं वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्व खलु मया ।

प्रिया मुञ्चत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ

प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविसहयं हि भवति ।।

1– रत्ना0, 1/20, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, चौक वाराणसी, द्वि0 सं0 1976.

2– शब्द तरू की सम्पन्नता को अभिव्यक्त कर रहा है । "विटपि" का अर्थ शाखा होता है, विटपी शाखा वाला वृक्ष जिस तरूवर में शाखायें होगीं उसी में मनमोहक नूतन किसलय होगें ऐसे ही तरू से उत्पन्न होने वाली लता की रमणीयता मन को आकर्षित कर सकती है । वासवदत्ता भी लता के समान उत्तम कुल से उत्पन्न होने वाली है, यह ध्वनित हो रहा है ।

3— रत्ना0, 1/22, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 प्र0सं0 1980.

4— काम को रति के स्पर्श से उतना सुख न मिलता जितना वासवदत्ता के कर स्पर्श से, इसलिये वह अपनी अनंगिता की निन्दा करेगा। अतः यह ध्वनित हो रहा है कि वासवदत्ता का कर स्पर्श रति के कर स्पर्श से उत्कृष्ट और आल्हादक है ।

5— प्रिय स्पर्श का सुख अद्वितीय होता है —

"आश्च्योतनं न हरिचन्दन पल्लवानां निस्पीडितेन्दु करकन्दलजो न सेकः ।
आतप्तजीवनमनः पारितर्पाणोऽयं स जीवनोषधिरसो हृदि नु प्रसक्तः ।।"

6— रत्ना0, 3/15, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्र0सं0 1980.

स्त्री पुरूष की अपेक्षा अधिक दया की मूर्ति होती है । हमारे समाज में पुरूष चाहे जितने भी गलत कदम उठा ले, सब माफ हो जाते हैं लेकिन अगर स्त्री का एक भी कदम गलत उठा ले तो सब लोग उसको कुदृष्टि से देखने लगते हैं । स्त्री अगर पुरूष से गुस्सा हो जाये तो भी स्त्री को ही झुकना पड़ता है ।

वासवदत्ता उदयन को मनाने के लिये इस प्रकार सोचती है –

। सहर्ष । तदलक्षितैव पृष्ठतो गत्वा कण्ठे गृहीत्वा प्रसादयिष्यामि ।[1]

नाटक के अभिनय के समय में वह राजा व आरण्यका की प्रेम विषयक बातों को जानकर व्यथित हो जाती है । उसकी गुस्सा को ही देखकर उदयन इस प्रकार कहते हैं –[2]

स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्ताम्रा[3] तथापि द्युति –

मर्धिुर्येऽपि सति स्खलर्त्यनुपदं ते गद्‌गदा वागियम् ।

निश्वासा नियता अपि स्तन भरोत्कम्पेन सं लक्षिताः

कोपस्ते प्रकटप्रयत्नविधृतोऽप्येष स्फुटं लक्ष्यते ।।

1– रत्ना0, तृतीय अंक ,पृ0 126,टी0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी , प्रका0 मोतीलाल वनारसी दास, चौक वाराणसी,द्वि0सं01976.

2– प्रियदर्शिका,3 / 13,पृ074,टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र,चौ0 विद्या भवन, वाराणसी.

3– प्रिय0पृ0120,टीका0पं0रामचन्द्र मिश्र,चौ0 विद्या भवन,वाराणसी– उपर्युक्त श्लोक में छिपाये गये कोप का नयनतामत्व आदि हेतुओं से अनुमान किया गया है। तु0 रत्ना02 / 21 –

" भ्रूभङ्गे. सहसोद्‌गतेऽपि वदनं नीतं परां नम्रता–

मीषन्मां प्रति भेदकारि हसितं नोक्तं वचो निष्ठुरम् ।

अन्तर्बाष्प जडीकृतं प्रभुतया चक्षुर्न विस्फारितं

कोपश्च प्रकटीकृतो दयितया मुक्तश्च न प्रश्रयः ।।"

तुम फर्क नहीं करो तुम्हारे अंग प्रत्यंगों के हाव भाव से व्यक्त हो रहा है ।[1] जब किसी की सहचारिणी रूठ जाती है तो वह उसके मनाने का तरीका सोचने लगता है । उदयन विदूषक से गुस्सा दूर करने का उपाय पूछता है–[2]

धृष्टः किं पुरतोऽवरुध्य विहसन्गृह्णामि कण्ठे प्रियां

किं वा चाटुशतप्रपञ्च रचना प्रीतां करिष्यामि ताम् ।

किं तिष्ठामि कृताञ्जलिर्निपतितो देव्याः परः पादयोः

सत्यं सत्यमहो न वेद्म्यनुनयो देव्याः कथं स्यादिति ।।

गुस्सा दूर करने पर वह उसे खोजता फिरता है, मिल जाने पर[3]

भ्रूभंङ्. न करोषि रोदिषि मुहुर्मुग्धेक्षणे केवलं

नातिप्रस्फुरिताधरानवरतं निःश्वासमेवोज्झसि ।

वाचं नापि ददासि तिष्ठसि परं प्रध्याननम्रानना

कोपस्ते स्तिमितो निपीडयति मां गूढ़प्रहारोपमः ।।

1– प्रिय03./14– "भ्रूभङ्. क्रियते ललाटशशिनः कस्मात्कलङ्को मुधा

वाताकम्पितबन्धु जीव समतां नीतोऽधरः किमस्फुरन्।

मध्यश्चाधिककम्पित स्तन भरेणायं पुनः खिद्यते

कोपं मुञ्च तवैव चित्तहरणायै तन्मया क्रीडितम् ।।

अपि च, प्रिय03/15–स्वेदाम्भः कणभिन्न भीषणतर भ्रूभङ्.मेकं रुषा

त्रासेनापरमुत्प्लुतोत्प्लुतमृगव्यलोल नेत्रोत्पलम्

2– प्रिय0,4/1,टीका0पं0रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी ।

3– प्रिय04/3,टीका0पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी ।

युवती -

भास व हर्ष ने कवि प्रसिद्धि के अनुरूप युवतियों के सौन्दर्य की अतुलनीय उपमा दी है – वासवदत्ता को जब यह मालूम पड़ता है कि पद्मावती का विवाह महाराज उदयन से होना निश्चित है, इस पर धायी से पूछती है कि उदयन ने क्या स्वयं अनका वरण किया है ? इस पर धायी कहती है – नहि नहि । अन्य प्रयोजनेनेहागत स्याभिजन विज्ञानवयोरूपं दृष्टवा स्वयमेव महाराजेन दत्ता ।

यौवनोन्मत्त नवयुवतियाँ हाथ में पिचकारी लेकर पुरूषों के ऊपर अनुराग में जल की वर्षा कर रहीं हैं । रक्षा के लिए इधर–उधर दौड़ने वाले पुरूषों के संचार से प्रांगण पंकिल हो गया है । उद्धत स्त्रियों ने खूब सिन्दूर लगा रखा है अथवा पुरूषों ने मदमती प्रमदाओं के ऊपर सिन्दूर ।अबीर। की वर्षा की है । स्त्रियों के अनुरागी प्रहार से बचने के लिए अरूणिम पंक से गुजरने वाले पुरूषों के चरणों से फर्श भी लाल वर्ण वाला होकर सुन्दर लग रहा है । कहने का आशय यह है कि सर्वत्र अनुराग की वर्षा हो रही है । यथा–[2]

धारायन्त्रविमुक्तसन्ततपयः पूरप्लुते सर्वतः ।

सद्यः सान्द्रविमर्दकर्दमकृतकोडे क्षणं प्राङ्गणे ।।

उद्दामप्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारूणैः

सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासैः पुरः कुट्टिमम् ।।

1– स्वप्नवासवदत्ताम्,द्वि0 अंक, पृ030,टीका0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0सं01972.

2– रत्ना0,1/11, पृ018,टीका0 रामशंकर त्रिपाठी,प्रका0मोतीलाल बनारसीदास,वाराणसी,द्वि0सं01976.

हर्ष ने कवि प्रसिद्वि के अनुरूप युवतियों के सौन्दर्य की अतुलनीय उपमा दी है। यथा – युवतियों के मद्य से आरक्त मुखचन्द्र को देखकर चम्पा की कलियॉ खिल उठती हैं । सुन्दरी युवती के मुखरूपी चन्द्रमा के मद्य से आरक्त होने पर चिरकाल पश्चात आज चम्पा के पुष्प शोभित हो रहे हैं[1] –

मूले गण्डूष सेकासव इव बकुलैर्वास्यते पुष्पवृष्टया

मध्वाताम्रे तरूण्या मुखशशिनि चिराच्चम्पकान्यद्य भान्ति ।

आंकर्ण्याशोकपादाहतिषु च रसितं निर्भरं नूपुराणां

झंकारस्यानुगीतैरनुकरणभिवारम्यते भृंगसार्थे : ।।

कवि परम्परा के अनुसार अशोक रमणियों के पादाघात से खिलता है । श्री हर्ष ने भी ऐसा ही वर्णन किया है।[2] इसी के सन्दर्भ में कहा गया है कि चन्द्रकान्तिमणि चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से पिघलने लगती है, यह ऑसू के जल से सींची गयी चन्द्रकान्त शिला लगती है कि तेरे मुख रूपी चन्द्रमा के उदय होने से द्रवित हो रही है ।[3]

1– रत्ना0 1/18, पृ0 38, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, प्र0 सं0 ।

2– मल्लिनाथ – "स्त्रीणां स्यर्शात् प्रियंङ्गु विकसति वकुलः सीधु गण्डूषसेकात्

पादाघातादशोकास्तिलककुरवको वीक्षणा लिंगनाभ्ययाम् ।

मन्दारो नर्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्तृवाता

च्चूतो गीतान्नमेरू विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः ।।"

3– नागानन्द, 2/6 –

निष्यन्दत इवानेन मुखचन्द्रोदयेन ते

एतद् वाष्पाम्बुना सिक्तं चन्द्रकान्तसिलातलम् ।

रत्नावली द्वारा प्रियतम की प्रतीक्षा में व्यक्त व्याकुलता का चित्रण हर्ष ने किया है । यथा[1] –

विकसितबकुलाशोकक:[2] काङिःक्षतप्रियजनमेलकः ।

प्रतिपालनासमर्थकस्ताम्यति युवति सार्थकः ।।

काम महोत्सव के समय किसी स्त्री ने मदिरा का पान कर लिया है ।[3] जिससे उसने अपने अंग शरीर में जो आभूषण या वस्त्र डाले हैं, उनका जरा भी ध्यान नहीं है कि वे ढीले हो रहे हैं – तथा अस्त व्यस्त हो रहे हैं, इसी का वर्णन करता हुआ राजा कह रहा है –[4]

स्रस्तः स्रग्दामशोभां त्यजति विरचितामाकुलः केशपाशः

क्षीबायां नूपुरौ च द्विगुणतरमिमौ क्रन्दतः पाद लग्नौ ।

व्यस्तः कम्पानुबन्धादनवरतमुरोहन्ति हारोऽयमस्याः,

क्रीडन्त्याः पीडयेव स्तनभर विनमन्मध्यभङ्नपेक्षम ।।

कहा जाता है कि नवयौवना रमणियॉ यदि अपने मुख के जल से वकुल का सिंचन कर देती हैं तो वह पुष्पित हो जाता है ।[5] वसन्त के अवसर पर उन्होनें मदिरा का पान किया है इसलिए रमणियों में आज मदिरा के गण्डूष से सिंचित वकुल फूलों से लद गये हैं । वकुल वृक्ष की कृतज्ञता द्योतित करने के लिए अपनी जड़ों की मदिरा को पुष्प वर्षा से सुगन्धित कर रहे है। उदयन के राज्य की सुन्दरियॉ

1– रत्ना0 1/14, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्र0 सं0 वाराणसी ।

2– रत्ना0 1/14, पृ0 23, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0 1972–युवतियों का समूह मौलश्री । वकुल । तथा अशोक को विकसित करने वाला है । युवतियों के पैर की मार से अशोक में तथा अपने ऊपर मदिरा के कुल्ला करने से वकुल में फूल आ जाते हैं । यह साहित्यिक प्रसिद्धि है। इस क्रिया को दोहद कहते हैं ।

3– साहित्य दर्पण – "स एव सुरभिः कालः स एव मलयानिलः ।

सैवेयम्बला बाला किन्तु मनोऽन्यदिव दृश्यते ।।"

4– रत्ना0 1/16, पृ0 25, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0 1972.

5– मे0दू0, पृ0 78, तु0 "बदन मदिरा दोहदच्छद्मनाऽस्यः

चम्पे के पुष्प के समान सुन्दर हैं । उनके मुखाराशि से सुधा की वर्षा होती रहती है । इसलिए जब अपने बदन पर अलंकार के रूप में चम्पक पुष्पों को धारण करती थी तब दोनों को एक साथ होने से पहचानना कठिन था लेकिन आज स्त्रियों ने मदिरा पान कर लिया है इसलिए उनके चन्द्रवदन कुछ–कुछ लाल वर्ण के हो गये हैं ।

राजा जब चुपचाप सागरिका व सुसंगता की बातचीत को सुनते हैं तो वह विदूषक से सागरिका की सुन्दरता को, यौवनावस्था को इस प्रकार व्यक्त करते हैं – वयस्य, श्लाघ्ययौवनया प्रियतममनासादयन्त्या जीवितनिरपेक्षयोक्तम् ।[1] विदूषक के द्वारा दिखाये गये चित्रपट को देखकर राजा उसके यौवन अवस्था की सुन्दरता[2] का वर्णन करते हैं । चाहे कोई भी । स्त्री । कन्या हो, वह अपनी अवस्था में धीरे–धीरे विकसित होने लगती है तो उसका सौन्दर्य काफी बढ़ जाता है । उसकी सुन्दरता के विषय में निम्न श्लोक में व्यक्त किया गया है –

लीलावधूत[5]पदमा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः ।
मानसमुपैति[6] केयं चित्रगता राजहंसीव[3] ।।

इसकी तुलना राजहंसी से की गयी है अर्थात; राजहंसनी का गमन वित्रित होता है । इस रमणी[4] के गमन से काम विलास की वर्षा होती है । यह नवयौवना में चित्रित है अथवा चित्रगता अद्‌भुत सौन्दर्य को प्राप्त है । राजहंसनी जब अपने पंखों को कंपाती है तब वह अतीव मनोहारणी लगती है ।

1– रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 66, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी ।
2– रत्ना0, 2/9, पृ0 70, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी ।
3– अ0को0 2–5–24– "राजहंसास्तु ते चञ्चुरणैर्लोहितैःसिता ।"
4– भा0 वि0, 1/13– "नीरक्षीर विवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत ।
विश्वेऽस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिस्यति कः ।।"
5– दश0 2/37 – "प्रियानुकरण लीला मधुरांङ्‌विचेष्टितैः ।
भा0 प्र0, पृ0 9– "प्रियानुकरणं लीला ।"
6– सुभाषि0 – "रमते न मरालस्य मानसं मानसं बिना ।

इस सुन्दरी के हाव भाव को देखने से यह प्रतीत हो रहा है कि इसका हमारे प्रति अतुलनीय पक्षपात है अर्थात यह मुझे हृदय से चाहती है । इस प्रकार के अद्वितीय रूप और गुण वाली यह कौन बाला है जो मेरे निर्मल हृदय में प्रवेश कर रही है । युवती के अति सौन्दर्य निरूपण में यह मनोभाव दृष्टब्य है –[1]

"विधायापूर्वपूर्णेन्दुमस्या मुखमभूद् ध्रुवम् ।

धाता निजासनाम्भोज विनिमीलनदुः स्थितः ।।

ब्रम्हा जी सर्वदा कमल पर बैठते है, कमल उनका आसन है । चन्द्रमा को देखकर कमल सिकुड़ जाता है। सागरिका के मुखचन्द्र को बनाकर विधाता अवश्य पछताये होगें क्यों कि उस समय उनका आसन बन्द होने लगा होगा और उनको भी उसी में बन्द हो जाने का खतरा पैदा हो गया होगा । यह युवती सागरिका की अद्‌भुत सुन्दरता को व्यक्त करने का अनुपम तरीका है । राजा उदयन उसके एक–एक अंग का सूक्ष्मता व गहनता से दर्शन करते हुये कहते हैं । यथा –[2]

"कृच्छादूरूयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले[3]

मध्येऽस्यास्त्रिवली[4] तरंङ्ग विषमे निसपन्दतामागता ।

मद्‌दृष्टिस्तृषितेव संप्रतिशनैराहृय तुंङ्गौ स्तनौ

साकाक्षं मुहुरीक्षते जललव प्रस्यन्दिनी लोचने ।।

यहॉ प्रगाढ़ यौवन[5] का वर्णन किया गया है ।

1– रत्ना0 2/10, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0 1972.

2– रत्ना0 2/11, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्र0 सं0 1980

3– ऋतु0 सं0 6/33 – "गुरूतरकुचयुग्मं श्रोणिबिम्बं तथैव न भवति किमदानीयोषिता मनमथाय।"

4– कु0सं01/39– "मध्येन सा वेदविलग्नमध्या वलित्रयं चारू वभार वाला ।

आरोहणार्थ नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ।।"

5– कु0सं0 5/24– "वलीषु तस्याः स्खलिता प्रपेदिरेचिरेण नाभि प्रथमोद विन्दवः।"

दश0रू0उद्धृत 2/18 "अभ्युन्नतस्तनमुरो नयने च दीर्घे,

वक्रे भ्रुवावतिरां वचनं ततोऽपि।

मध्योऽधिकं तनुरतीवगुरूर्नितम्बो

मन्दा गतिः किमपि चाद्भुतयौवनायाः।।"

जिस समय आरण्यका गृहोद्योन में फूल चुन रही होती है तभी विदूषक की दृष्टि उस पर पड़ जाती है। वह वत्सराज उदयन से उसकी सुन्दरता के विषय में दृष्टिगोचर करता है। यथा–[1]

विदूषकः- । सकौतुकम् । भो वयस्य, पश्य पश्य। कैषा कुसुम परिमलसुगन्धवेणिमधुकरावलिविद्रुमलतारूणहस्तपल्लवा उज्ज्वलत्तनु कोमलबाहुलता सत्यं प्रत्यक्षचरीवोद्यानदेवता स्त्री दृश्यते।

राजा- । सकौतुकं विलोक्य । वयस्य,निरतिशयस्वरूप शोभजनित बहुविकल्पेयम्।यत्सत्यमहमपि नावगच्छामि। पश्य-[2]

पातालाद्भुवनावलोकनपरा किं नागकन्योत्थिता

मिथ्या तत्खलु दृष्टमेव हि मया तस्मिन्कुतोऽस्तीदृशी।

मूर्ता स्यादिह कौमुदी न घटते तस्या दिवा दर्शनं

केयं हस्ततल स्थितेन कमलेनालोक्यते श्रीरिव।।

राजा व विदूषक चुपचाप आरण्यका व चेटी की बातें सुनते हैं। जब उन्हें यह ध्यान आ जाता है कि यह वही बिन्ध्यकेतु की बेटी है तो उसके लावण्य को देखकर कहते हैं – इयं सा विन्ध्यकेतोर्दुहिता ।।सानुतापम्। चिरं मुषिताः स्मो वयम् । वयस्य, निर्दोषदर्शना कन्यका खल्वियम्।विस्रब्ध मिदानीं पश्यामः।[3]

राजा उसके अंग की एक–एक सुन्दरता का वर्णन करते हैं।[4]

1– प्रिय0,द्वि अंक, पृ029, पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी,द्वि0सं0 1976.

2– प्रिय02/6, पृ027,पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र,चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी,द्वि0सं0 1976.

3– प्रिय0,द्वि0 अंक, पृ042,व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी,चौखम्भा अमर भारती प्रकाशन वाराणसी, प्र0सं0वि0सं0 2035.

4– प्रिय02/7, पृ030, पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्या भवन वाराणसी, द्वि0सं0 1976.

"अच्छिन्नामृतबिन्दुवृष्टि सदृशींप्रीतिं ददत्या दृशा

यातायाविगलत्पयोधरपटाद्द्रष्टव्यतां कामपि।

अस्याश्चन्द्रमस्तनोरिव करस्पवर्शास्पदत्वं गता

नैते यन्मुकुली भवन्ति सहसा पद्मास्तदेवाद्भुतम्।।

आरण्यका के सौन्दर्य को देखकर राजा उसी प्रकार लालायित हो गये जैसे कोई भी पुरूष यदि किसी भी स्त्री की बढ़ती हुए यौवनावस्था को देख लेता है तो उसे प्राप्त करने के लिए प्रण कर लेता है। इसमें आकर्षण है, यही दशा महाराज की हुई। वह अपने कर्तव्य को भूलकर तथा घूँघट मारे हुए आरण्यका को गले से लगा लेते हैं । यथा–[1]

अयि विसृज विषादं भीरू भृङ्गास्तवैते

परिमलरसलुब्धा वक्त्रपद्मे पतन्ति।

विकिरसि यदि भूयस्त्रासलोलायतक्षी

कुवलयवनलक्ष्मीं तत्कुतस्त्वां त्यजन्ति।।

1– प्रिय02/8, टीका0 पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी द्वि0सं0।

विवाह संस्कार -

इस संस्कार को समाज की दृष्टि में सर्वोपरि स्थान प्राप्त है– प्रद्योत अपनी रानी अंगारवती से वासवदत्ता के विषय में कुछ परामर्श करता है।[1] वह विवाह के निमित्त भिन्न–भिन्न देशों से आये हुए राजाओं के नाम एवं गुणों का परिचय देता है और पूछता है कि इनमें से किसको योग्य एवं विवाह के अनुरूप समझती हो। इसी बीच कंचुकी वत्सराज के पकड़ जाने का शुभ समाचार देता है, राजा कहते है कि वर में अधिक गुण होना चाहिए, उसके लोभ से तथा पुत्री वासवदत्ता में अत्यन्त स्नेह होने के कारण मैं निश्चय नहीं कर पाता।[2]

जब वासवदत्ता अपनीं माता से वीणा–शिक्षक के लिए कहती है तो देवी राजा से इस प्रकार कहते हैं –[3]

राजा - उपस्थित विवाहकालायाः किमिदानीमाचार्येण।पतिरेवैनां शिक्षयिष्यति।

देवी - हम् एष इदानीं मे दारिकायाः कालः।

राजा - भोः ! नित्यं प्रदीयतामित्यस्माननुरुध्य किमिदानीं सन्तप्यसे।

देवी - अभिप्रेतं में प्रदानम्। वियोगो मां सन्तापयति ।अथ कस्मैपुनर्दत्ता।

राजा देवी को समझाते हुए कहते हैं, यह छोटी नहीं है। अर्थात् बड़ी हो चुकी है क्योंकि – सर्वथा श्वसुरपरिचरण समर्थे वयसि वर्तते वासवदत्ता । एष चापरः काशिराजोपाध्याय आर्य जैवन्तिरद्य दौत्येन प्राप्तो

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, द्वि0 अंक, पृ0 48, प्रका0 "प्रकाश संस्कृत–हिन्दी– व्याख्योपेतम्, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी ।

2– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, 2/4, पृ0 49 – "कुलं तावच्छलाघ्यं प्रथममभिकाङ.क्षे हिमनसा
ततः सानुक्रोशं मृदुरपि गुणो हयेष बलवान् ।
ततो रूपे कान्तिं न खलु गुणतः स्त्रीजनभयात्
ततो वीर्योदग्रं न हि न परिपाल्या युवतयः।।"

3– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, द्वि0 अंक, पृ0 53–54 प्रका0 "प्रकाश"संस्कृत–हिन्दी– व्याख्योपेतम्, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी।

विलोभयति मां चारित्रेण ।। आत्मगतम् । न किञ्चिदाह । अश्रुपूर्वा व्याकुला कथं निश्चयं गमिष्यति । भवतु, निवेदयान्यस्यै ।। प्रकाशम् ।। श्रूयन्तेऽस्मत्सम्बन्ध प्रयोजनागता राजानः।

बेटी के विवाह के सम्बन्ध में माताओं को भी पूर्ण जानकारी होनी चाहिए कि उसकी बेटी का घरबार कैसा है? क्यों कि अगर पिता बिना उसकी मॉ से पूछे बगैर कर भी देता है तो बाद में जब उसे कष्ट होगा तो माताओं के द्वारा उलाहना जरूर दिया जायेगा । अतः राजा अपनी रानी से कहता है कि तुम भी इस विषय में विचार कर लो।[1] यथा –

अस्मत्सम्बद्धो मागधः काशिराजो,

वाङ्गः सौराष्ट्रो मैथिलः शूरसेनः ।

एते नानार्थैर्लोभयन्ते गुणैर्मां

कस्ते वैतेषां पात्रतां याति राजा ।।

जिस समय महासेन अपनी रानी से यह विचार–विमर्श कर ही रहा था कि कौन सा राजा तुम्हारे मन के लायक है, उसी समय कंचुकी वत्सराज के बन्दी होने का शुभ–संवाद लाया और "गृहीतोवत्सराजः" । न कह कर आनन्द के मारे इतना ही कहा "वत्सराजः" । इस पर राजा ने यही समझा कि मेरे प्रश्न का समाधान कर रहा है अर्थात यह कह रहा है कि वत्सराज ही वर के अनुरूप है ।

रानी ने अप्रत्यक्ष रूप से अपने पतिदेव को संकेत किया कि वत्सराज जो कैदी हैं, आपकी सुपुत्री । वासवदत्ता । के लिए सुयोग्य एवं वांछित वर सिद्ध होगा । वासवदत्ता की मॉ अंगारवती को जब यह पता चलता है कि उनकी बेटी को वत्सराज उदयन के साथ यौगन्धरायण भगा ले गया है, इस वृतान्त को सुनकर वह कहती है कि मैं अपने प्राण त्याग दूँगी । इस पर महासेन कहते हैं कि – क्षत्रधर्मेणोदिदृष्टस्ते दुहितुर्विवाहः । किमिदानीं हर्षकाले सन्तप्यसे तच्चित्रफलकस्थयोर्वत्सराजवासवदत्तयोर्विवाहोऽनुष्ठीयताम्, इति । तत्रहि,

---

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्,द्वि0अंक,2/8पृ055 प्रका0 "प्रकाश"संस्कृत–हिन्दी– व्याख्योपेतम्, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी ।

स्त्रीजनेनाद्य सहसा प्रहर्ष व्याकुलक्रमा ।

क्रियते मङ्गलाकीर्णा सवाष्पा कौतुकक्रिया ।।

वासवदत्ता के विवाह के लिए निमित्त सुन्दर एवं सुयोग्य वर ढूँढने के लिए राजा को चिन्ता होती है, उसका चित्रण भास ने जिस रीति से किया है उससे ज्ञात होता है कि रमणीमानसतल तथा मानवस्वभाव का वर्णन करने में वे कितने प्रवीण थे ।

चेटी वासवदत्ता से कहती है कि पदमावती महासेन । राजा प्रद्योत । से विवाह नहीं करना चाहती है । इस पर वासवदत्ता कहती है कि फिर किसके साथ विवाह करना चाहती हो ? इस पर दासी कहती है – अस्ति वत्सराज उदयनो नाम ।[2] पदमावती उदयन के सौन्दर्य को देखकर आकर्षित हो जाती है अतः वह उसी से विवाह करने के लिये सोचती है तभी धायी उसे आकर यह शुभ – संवाद सुनाती है – "जयतु भर्तदारिका । भर्तदारिके ! दत्तासि ।"

पदमावती के जन्मांक[3] से ज्योतिषियों ने विवाह के लिए शुभ नक्षत्र की गणना निम्न प्रकार से की है – अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रम्[4] । अद्यैव कौतुकमंगल[5] कर्तव्यमित्यस्माकं भटिट्नी भणति[6] ।

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्,4/24,पृ0129 प्रका0 "प्रकाश"संस्कृत–हिन्दी– व्याख्योपेतम्, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी ।

2– स्वप्नवासवदत्तम, द्वि0 अंक, पृ0 36, व्या0 गणेश दत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, सुभाष बाजार मेरठ, प्र0 सं0 1968

3– स्वप्नवासवदत्तम, द्वि0 अंक, ले0 जयपाल विद्यालंकार, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

4– नक्षत्र से अभिप्राय शुभ तिथि एवं लग्न आदि से भी है । ज्योतिष में विवाह के लिए शुभ नक्षत्र की गणना निम्न प्रकार से की गई है – "रेवत्युत्तर रोहिणीमृगमघा मूलानुराधाकर स्वातीषु प्रमदा तुला मिथुन के लग्ने विवाहः शुभः । ''
मासः फाल्गुनमाघमार्गशुचयोः ज्येष्ठस्तथा माधवः शास्ताः सौम्य दिनं तथैव तिथयोरिक्ता कुहूवर्जिताः ।"

5— "वैवाहिकमंगलोचितं मंगलसूत्रम । विवाह मंगल सूत्र बनधनरूपं शुभकार्यमित्यर्थः" । यह एक विशेष विधि है जो विवाह के पहले सम्पन्न की जाती है।।मध्यम पदलोपी समास ।।

6— अकृताभिषिका दर्शकस्य राज्ञः पत्नी । "देवीकृताभिषेक कायामितरासु" तु भट्टिनी इत्यमरः ।

राजा उदयन को देखकर, सागरिका निम्न प्रकार से सोचती है । यथा –[1] (श्रुत्वा सहर्षं परिवृत्य राजानं सस्पृहं पश्यन्ती) कथमयं स राजा उदयनो यस्याहं दत्ता तातेन ।। दीर्घ निःश्वस्य। तत्परप्रेषणदूषितमपि मे जीवितमेतस्य दर्शनेनेदानीं बहुमतं संवृतम् ।

आरण्यका के पिता जी ने पहले ही उसका हाथ वत्सराज उदयन के लिए सौंप रखा था अतः आरण्यका उनको देखकर सोचती है – । राजानमवलोक्य संस्पृहं सलज्जं चात्मगतम् । अयं खलु स महाराजो यस्याहं तातेन दत्ता । स्थाने खलु तातस्य पक्षपातः ।[2]

नारी वेशभूषा -

स्त्री के सुहाग का चिन्ह मंगलसूत्र होता है । जब पद्मावती का उदयन से विवाह होना निश्चित हो जाता है तो चेटी आकर वासवदत्ता को यह सूचित करती है कि त्वरतां त्वरतां तावदार्या । अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रम्। अद्यैव कौतुक मङ्गल कर्तव्यमित्यस्माकं भट्टिनी भणति ।[3] महारानी वासवदत्ता अपने पैरों में बजने वाली पैजनियाँ पहनतीं थीं क्योकि जब वह अशोक वृक्ष के पास पूजन करने आती हैं, लेकिन जब उनके नूपुरों की आवाज बन्द हो जाती है तो राजा विदूषक से कहता है, लगता है कि महारानी अशोक के फूल के पास आ गयीं हैं – भो वयस्य यथा विश्रान्तो नूपुरशब्दस्तथा तर्कयामि आगता देव्याशोकमूलमिति।[4]

1– रत्ना0, प्रथम अंक, पृ038, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी द्वि0सं0 1976.

2– प्रिय0, द्वि0 अंक, पृ048, ले0डा0 रामनाथ त्रिपाठी, प्र0सं0 वि.सं0 2035, चौखम्भा अमर भारती प्रकाशन वाराणसी।

3– स्वप्नवासवदत्तम्, द्वि0 अंक, पृ038, प्रका0 रतिराम् शास्त्री, मुद्रक राज किशोर शर्मा, सर्वोदय प्रेस, जत्तीवाड़ा, मेरठ।

4– रत्ना0, प्रथम अंक, व्या0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल वनारसी दास वाराणसी, द्वि0 सं 1976.

वासवदत्ता कांचनमाला से कहती है कि–[1] हञ्जे काञ्चनमाले, सत्यमेव मम वेषं कृत्वा सागरिकाऽऽर्यपुत्रमभिसरिष्यति ।[2]

वासवदत्ता का वेश धारण कर सागरिका प्रवेश कर इस प्रकार कहती है–सागरिका – । सोद्‌वेगम् । दिष्टया खलु नाहमनेन विरचितदेवीवेषेणास्याश्चित्रशालिकाया निष्क्रामन्ती केनापि लक्षितास्मि। तदिदानीं किं करिष्यामिं। ।इति त्रासं चिन्तयति।[3]

पहले मणियों व आभूषणों का काफी प्रचनल था। विदूषक सुसंगता से पूछता है कि महाराज कहॉ गये, इस पर वह कहती है– आर्य एष खलु भर्ता देवी भवनान्निष्क्रम्य स्फटिक शिलामण्डपं गतः। तद्‌गच्छत्वार्यः। अहमपि देव्याः पार्श्ववर्तिनी भविष्यामि।[4]

पहले स्त्रियॉ हर समय आभूषणों से अपने को अलंकृत करतीं रहतीं थीं। लेकिन उनकें गले का आभूषण सदैव उसकी सुन्दरता बनाये रखता है। विदूषक चतुर्थ अंक में महाराज को यह सूचना देता है कि सागरिका महारानी के द्वारा उज्जयिनी भेज दी गयी है। लेकिन यह रत्नामाला सुसंगता ने मेरे पास भेज दी है। राजा उसी रत्नमाला को लेकर निम्न प्रकार से कहता है –

कण्ठाश्लेषं समासाद्य तस्याः प्रभ्रष्टयाऽनया।
तुल्यावस्था[5]सखीवेयं तनुराश्वास्यते मम।।[6]

पहले नियम, उपवास ।व्रतादि। धारण करने पर सुन्दर वस्त्र व

1– रत्नावली, तृतीय अंक, पृ0110, व्या0 रामशंकर त्रिपाठी शास्त्री, द्वि0 सं0।

2– प्रेमिका अपने से जब किसी पूर्व निश्चित स्थान पर रात्रि या संध्या आदि के समय रमण करने जाती है तो उसके उस कार्य को अभिसार कहा जाता है।

3– रत्ना0,तृ0 अंक, पृ0120, व्या0 रामशंकर त्रिपाठी शास्त्री, द्वि0सं0 1976.

4– रत्ना0, चतुर्थ अंक, पृ0134, व्या0 रामशंकर त्रिपाठी शास्त्री, प्रका0 मोतीलाल वनारसीदास, वाराणसी, द्वि0सं0 1976.

5– रत्नमाला सागरिका के कण्ठभाग में पहनी गयी थी। इस समय वह वहॉ से अलग हो गयी है। राजा का शरीर भी सागरिका के कण्ठ का आलिंगन करके अब विछुड़ा हुआ है। इस तरह दोनों ही सागरिका के कण्ठ से अलग हैं। अतः दोनों एक जैसी दशा वाले हैं।

6– रत्ना0,4/4, पृ0141, व्या0 रामशंकर त्रिपाठी शास्त्री, प्रका0 मोतीलाल वनारसी दास, वाराणसी, द्वि0सं0 1976.

आभूषणों से अलंकृत होकर पूजा की जाती थी। राजा आण्यका के विषय में इस प्रकार कहता है–

क्षामां मङ्ग.लमात्रमण्डनभृतं मन्दोद्यमालापिनी

मापाण्डुच्छविना मुखेन विजितप्राप्तस्तनेन्दुद्युतिम्।

सोत्कण्ठां नियमोपवासविधिना च्चेतो ममोत्कण्ठते

तां द्रष्टुं प्रथमानुरागजनितावस्थामिवाद्य प्रियाम्।।[1].

पहले रेशमी वस्त्र का दुपट्टा[2] हीरा जवाहरात तथा मणियों आदि का अलंकरण व वेशभूषा में काफी प्रचलन था।

वासवदत्ता आरण्यका के समीप जाती है तथा अपने शरीर के गहने उतारकर आरण्यका को सौंपती हुई कहती है :– आरण्यके एतैरेव मदङ.पिनदधैराभरणैर्नेपथ्यभूमिं गत्वात्मानं प्रसाधय।[3]

वह आरण्यका को ही गहने नहीं देती बल्कि मनोरमा को भी त्वमपि नलगिरिग्रहणपरितुष्टेन तातेनार्यपुत्राय दत्तान्याभरणानीन्दीवरिका सकाशादगृहीत्वा नेपथ्यभूमिं गत्वात्मानं मण्डय, येन सुसदृशी दृश्यसे महाराजस्य ।

नाटक के अभिनय के समय जो देवियॉ वस्त्र व अलंकार ग्रहण किये थीं उसी की शोभा का वर्णन कंचुकी ने किया है ।[4]

पादैर्नूपुरिभिर्नितम्बफलकैः शिञ्जानकाञ्चीगुणै,

हरि पादितकान्तिभिः स्तनतटैःकेयूरिभिर्बाहुभिः ।

कणैः कुण्डलिभिः करैः सवलयैः सस्वस्तिकैमूर्धजै,

र्देवीनां परिचारिका परिजनोऽप्येतेषु संदृश्यते ।।

1– प्रिय0, 2/1, पृ0 21, टीका0 रामचन्द्र मिश्र, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, द्वि0 सं0 ।

2– प्रिय0, द्वि0 अंक, पृ0 34, टीका0 रामचन्द्र मिश्र, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, द्वि0सं0

।। भ्रमरसंबाधं नाटयन्ती । हा धिक् हा धिक् । एते खल्वपरे परित्यज्य कमलिनी नीलोत्पलवनानि समापतन्तो निपुणतरं बाधमाना आयासयन्ति मां दुष्टमधुकराः ।। उत्तरीयेण मुखं पिधाय सभयम् । हला इन्दीवरिके, परित्रायस्व मां, परित्रायस्व माम् एते दुष्ट मधुकराः परिभविष्यन्ति।

3– प्रिय0, तृ0 अंक, पृ0 72, टीका0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौखम्भा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, प्र0 सं0 वि0 सं0 2035.

4– प्रिय0, 3/4 पृ0 56, टीका0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौखम्भा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 सं0 वि0 सं0 2035.

खान - पान -

भास के नाटकों में खान–पान का कहीं–कहीं वर्णन किया गया है जैसे विदूषक अपने मोदक लड्डू को ढूँढता फिरता है – भोः । देवीकुलपीठिकायां मम मोदक मल्लकं निक्षिप्य दक्षिणामाषकान् गणयित्वा बद्ध्वा प्रतिनिवृत्त इदानीं मोदकं मल्लकं न प्रेक्ष्ये । आ । एक मोदकपरितोषितो न तावदवलग्नो मामनुसरति । उच्चतया प्राकारस्यागतिः कुक्कुराणाम् । अक्षत भक्तातयाः लोभनीयं पथिकानाम् । अथवा अप्येनं खादामि । भवतु, उद्गरिष्यामि तावदहं । ही ही वृद्ध इव सूकरनस्तिः .... ।[1]

तभी उन्मत्तक । यौगन्धरायण । वत्सराज का मुख्यमंत्री आ जाता है, कहता है कि – किं मोदकाः ? कुत्र मोदकाः ? किमिमे मोदका उज्झयन्ते, अथवा पिनह्यन्ते उताहो खाद्यन्ते ?

विदूषकः – न खाद्यन्ते न खाद्यन्ते नोज्झयन्ते च ।

उन्मत्तकः– एषाखलु मम रसना खादितुकामा लिंगानि करोति ।

विदूषकः– भो उन्मत्तक ! आनय मम मोदक मल्लकम् ।

मा परकीये स्नेहं कृत्वा अवबध्यस्व ।

उन्मत्तकः – के के मां वध्यान्ति ? मोदकाः खलु मां रक्षन्ति ।[2]

नेपथ्यविशेषमण्डिताः प्रीतिमुपदातुमुपस्थिताः ।

राजगृहे दत्तमूल्याः कालवशेन मुहूर्तदुर्बलाः ।।[3]

विदूषक बड़े विषाद के साथ कहता है कि यह मोदक श्रमणक ने अशुद्ध कर दिया है अतः वह केवल देखने योग्य है , खाने के लिए नहीं । इस पर श्रमणक कहता है –

भो उन्मत्तकोपासक ! निर्यातय निर्यातय एतानि मोदकानि करस्थूलिकाफेनपाण्डराणिं बहुपिष्ट समृद्धकोमलानि निष्ठानिताः सुरा इव मंधुराणि। मा ते खादितानि क्षयमुत्पादयन्तु ।[4]

1– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, 'प्रकाश' संस्कृत–हिन्दी व्याख्योपेतम् प्रकाश चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी ले0 कपिल देव गिरि , पृ0 73.

2– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्,'प्रकाश' संस्कृत – हिन्दी व्याख्योपेतम् प्रका0 चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी,। ले0 कपिल देव गिरि , पृ0 77–78.

3– प्रतिाायौगन्धरायणम्, 3/1 पृ0 78 **'प्रकाश'** संस्कृत–हिन्दी व्याख्योपेतम् प्रका0 चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी। ले0 कपिल देव गिरि।

4– प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् , तृतीय अंक , पृ0 83.

श्रमणक विदूषक से कहता है कि अगर तुमने उन्मत्तक को लड्डू न दिये तो मैं तुम्हें शाप दे दूंगा । इस पर वह दुःखी हो कर है – ही ही मदीयैः स्वस्ति वाचयामि । मयापि कौटुम्बिकस्य हस्तात् प्रतिग्रहगृहीतानि । तानि भवतोऽप्यु पायनं भविष्यति । सोऽपि समृद्धो भवतु । एष उन्मत्तकोऽकग्नि गृहम्भिमुखो गच्छति । स्थितो मध्याह्नः । पूर्वाह्णऽपि तावदयम् देशः शून्यो भविष्यति ।[1]

खान – पान के अन्तर्गत पेय पदार्थ– दूध, चाय, कॉफी, शरबत, आसत, शराब आदि । आ जाते है। यथा – किं भणसि एष गात्रसेवकः कुण्डिलशौण्डिक्या गेहम् । यावदेनं शब्दापयामि । भो गात्रसेवक ! गात्रसेवकः !![2]

अत्याधिक नशे में चूर होकर गात्रसेवक कहता – क इदानीमेषो ऽत्र राजमार्गे गात्रसेवक । गात्रसेवक । इति मां शब्दापयति ।

धन्याः सुराभिर्मता धन्याः सुरुभिरनुलिप्ताः ।[3]

धन्याः सुराभिः स्नाता धन्याः सुराभि संज्ञापिता ।।

जब व्यक्ति नशे में चूर होता है तो उसे कुछ नहीं सूझता है जैसा कि भटने उससे कहा कि मैं तुम्हें सभी जगह खोज रहा हूँ और तुम यहॉ घूम रहे हो । इस पर गात्रसेवक कहता है – इत आहिण्डे , अत्र पिबामि , एतेन पिबामि , मा संरम्भेंण । किं क्रियताम् ?[4]

हर्ष ने खान – पान का वर्णन अपने नाट्य साहित्य में अत्यन्त सूक्ष्म किया है । विभिन्न समारोहों में मद्यपान के सेवन का उन्होने उल्लेख किया है । विवाह आदि उल्लासपूर्ण अवसरों पर लोग उद्यान में प्रतिगोष्ठियों का आयोजन कर अपना आमोद – प्रमोद करते थे। ऐसे अवसरों पर मद्यपान का भी आनन्द लेते थे । वर – वधू के जनों से हंसी – मजाक भी किया जाता था ।[5]

---

1. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, पृ0 85, "प्रकाश" संस्कृत–हिन्दी व्याख्योपेतम् चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी ।

2. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, पृ0 102, "प्रकाश" संस्कृत–हिन्दी व्याख्योपेतम् चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी ।

3. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, 4/1, पृ0 104 चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी ।

4. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, चतुर्थ अंक, पृ0 106 चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी ।

5. नागानन्द, तृतीय अंक– "सम्बन्धरूपः खल्वेष मया परिहास कृतः" ।

रत्नावली नाट्य में नारी मद्यपान की एक अनूठी उपमा द्रष्टव्य है –

स्त्रीणां स्पर्शात प्रियंङ्.विकसति वकुलः सीधुगण्डूषसेकात् ।

पादाघातादशोकास्तिलककुरवको वीक्षणालिंङ्.नाभ्याम् ।

मन्दारो नर्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाता

च्चूतो गीतान्नमेरूर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः ।।

हर्ष ने वर्णन किया है कि वकुल के वृक्ष जड़ में मुँह से भर–भर कर सींची गयी मदिरा को अपनी पुष्पवृष्टि से सुगन्धित कर रही है । यथा –

मूले गण्डूषसेकासव इव बकुलैर्वास्यते पुष्पवृष्टया

मध्याताम्रे तरूण्या मुखशशिनि चिराच्चम्पकान्यद्य भान्ति ।[2]

दाम्पत्य जीवन -

पति का स्नेह पत्नी के लिए सबसे बड़ा सौभाग्य है । पति–स्नेह पत्नी के शरीर त्याग के बाद भी उसे जीवित रखता है । दाम्पत्य प्रेम का आदर्श निम्नवत प्रस्तुत किया है [3]–

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका[4]

नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः ।[5]

धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता

भर्तुस्नेहात सा हि दग्धाऽप्यदग्धा ।।

---

1. मल्लिनाथ।
2. रत्ना0 1/18, ले0डा0 बैजनाथ, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, प्र0 सं0 1980.

3. स्वप्नवासवदत्तम्, 1/13, व्या0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, द्वि0 सं0 1972.

4. स्वप्नवासवदत्तम्, 1/13, व्या0 गणेशदत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, सुभाष बाजार मेरठ, प्र0 सं0 1968–चकेव– "चकवा पक्षी के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह प्रतिदिन रात्रि में अपनी प्रिया चकवी से बिछुड़ जाता है । वासवदत्ता से वियुक्त उदयन की विरह वेदना इतनी तीव्र है कि विरह में चकवे भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते ।"

5. महान कवि भास ने यहाँ इतिहास प्रसिद्ध सीता, शकुन्तला आदि स्त्रियों की ओर संकेत किया है कि जिनके विरह में राम, दुष्यन्तादि ने अत्यन्त तीव्र वेदना का अनुभव किया था । वासवदत्ता के विरह में उदयन की वेदना उनसे भी अधिक है। धन्या–धनम् लब्धा धन्या ।"

विवाह के बाद यदि नारी को ज्ञात हो कि उसका पति किसी अन्य के वियोग में व्याकुल है तो उसके दुख की कल्पना करना भी दुष्कर है । यथा उदयन उवाच –

इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा[2] व्यथां व्रजेत् ।

कामं धीर स्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु[3] कातरः ।।

कोई भी स्त्री हो अगर उसके दाम्पत्य जीवन में किसी अन्य स्त्री का प्रवेश हो जाये तो स्वाभाविक ही है उसे ईर्ष्या व कुढ़न की भावना पैदा हो जावेगी या उसका पति अन्य किसी कामातुर स्त्री को गौर से देख रहा है तब उसका मुख क्रोध से किंचित् लाल वर्ण का हो जाता है। यथा –

---

1. स्वप्नवासवदत्तम् 4/8 पृ0 60, व्या0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0 1972.
2. स्वप्नवासवदत्तम् व्या0 गणेश दत्त शर्मा, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्र0 सं0 1968, पृ0 67 उदयन अश्रुपात के वास्तविक कारण को छिपाने के औचित्य के विषय में मन ही मन सोचता है कि यदि मैं सच कह देता कि मैं वासवदत्ता के वियोग में ऑसू बहा रहा हूँ तो यह सुनकर पद्मावती बहुत ही व्यथित होती है ।
3. उदयन पद्मावती के धैर्य के विषय में जानता है। साथ ही दर्शक भी पदमावती की धैर्यशीलता से परिचित हैं । यद्यपि पद्मावती को वास्तविकता का पता है तथापि वह उद्विग्न नहीं हुई है परनतु फिर भी वह है तो स्त्री ही और स्त्रियॉ प्रायः स्वभाव से ही भीरू होती हैं । वह तनिक सी बात से घबड़ा उठती हैं । उदयन ने यहॉ पद्मावती के किसी स्त्री प्रसिद्ध स्वभाव का उल्लेख किया है । महान कवि भवभूति ने भी स्त्रियों के चित्त की कोमलता व अधीरता का चित्रण किया है – पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुम सुकुमारं हि भवति ।

उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररूचं[1] प्रारब्धजृम्भां क्षणा –

दायासं श्वसनोद्ग[2]मैरविरतैरातन्वतीमात्मनः ।

अद्योद्यानलतामिमां समदनां गौरीमिवान्यां ध्रुवं

पश्यन्कोप विपाटलद्युतिमुखं देव्याः करिष्याम्यहम् ।।[3]

अर्थात राजा के कहने का भाव यह है कि लता पालने एवं उसको विकसित करने में मैं रानी को जीत चुका हूँ । महारानी जब देखेगीं कि मैं विजय के गर्व के साथ अपनी लता को देख रहा हूँ तब वे मेरे ऊपर उसी तरह कुद्व हो जावेंगी मानों मैं किसी स्त्री को कामातुर दृष्टि से देख रहा हूँ ।

वासवदत्ता के द्वारा वह चित्रपट देख लिया जाता है जिसमें सागरिका व उदयन चित्रित किये गये । उस चित्र को देखकर वह कुपित हो जाती है । राजा उदयन उसको क्रोधित जानकर उसकी साड़ी का छोर पकड़ कर निम्न प्रकार से मनाते हैं –

---

1. काव्य प्रकाश, 7/64 पर उद्वत – पाण्डुक्षामं वदनं हृदयं सरसं ....
आवेदयति नितान्तं क्षेत्रियरोगं सखि ! हृदन्तः ।
ऋ0सं0 6/9–10– "उच्छवासयन्त्यः श्लघबन्धनानि गात्राणि कंदर्प समाकुलानि ।
2. समीपवर्तिश्वधुना प्रियेषु समुत्सुका एवं भवन्ति नार्यः ।।
तनूनि पाण्डूनि मदालसानि मुहुर्मुहुर्जम्भणतत्पराणि ।
अंगान्यनंङ्ग प्रमदाजनस्य करोति लावण्यस संभ्रमाणि ।।
X X X X X X X X X X X X X X X X X X
दशरू0 2/76 पर उद्धत –
"स्मरदवथुनिमित्तं गूढमुन्नेतुमस्याः
सुभंग तव कथायां प्रस्तुतायां सखीभिः ।।
भवति विततपृष्ठोदस्तपीनस्तनाग्रा
ततवलयितबाहुर्जम्भितैः सांग भांगैः ।।
3. रत्ना0 2/4, पृ0 54, सम्पा0 तथा व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्र0सं0 1980.

प्रसीदेति ब्रूयामिदमसति कोपे न घटते

करिष्याम्येवं नो पुनरिति भवेदभ्युपगमः ।

न मे दोषोऽस्तीति त्वमिदमपि[1] च ज्ञास्यसि मृषा

किमेतस्मिन् वक्तुं क्षममिति न वेद्मि प्रियवमे ।।[2]

कोई भी स्त्री रतिकीडा के समय अपने पति के मुख से किसी अन्य स्त्री का नाम सुनती है तो उसे अत्यन्त कोध हो जाता है । यहाँ निम्न श्लोक में वासवदत्ता राजा को मार कर प्रस्तुत होती है । उदयन उसे अपनीं प्रेयसी सागरिका समझता है अतः वह उसे इसप्रकार पुकारता हुआ कहता है ।

– शीतांशुर्मुखमुत्पले तव दृशौ पद्मानुकारौ करौ

रम्भागर्भनिभं तथोरूयुगलं बाहू मृणालोपमौ ।

इत्याह्लादकराखिलाङ्गि. रभसान्निःशङ्क.मालिङ्ग.य मा

मङ्ग.ानि त्वमनङ्ग.तापविधुराण्येह्योह्येहि निर्वापय ।।[3]

वासवदत्ता राजा के द्वारा आरण्यका स्पर्श का चित्रण देखकर तुरन्त भड.क उठती है –[4]। सहसोत्थाय। भगवति, पश्यत्वम् । अहं पुनरलीकं न पारयामि प्रेक्षितुम् ।

उसकी दासी सांकृत्यायनी महारानी को समझाती है राजपुत्रि ,धर्मशास्त्र विहित एष गान्धर्वो विवाहः[5]। किमत्र लज्जास्थानम् । प्रेक्षणीयकमिदम् । तन्न युक्तमस्थाने रसभङ्ग. कृत्वा गन्तुम् ।

---

1. विक्रमो0 5/21–"प्रियवचन कृतोऽपि योषितां दयितजनानुनयो रसादृते ।
   प्रविशति हृदयं न तदविदां मणिरिव कृतिमरागयोजितः ।।"
2. रत्ना02/20, पृ0 97, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय , प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास , वाराणसी , प्र0 सं0।
3. रत्ना0 3/11, पृ0 129 , डा0 रामशंकर त्रिपाठी शास्त्री , प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास , वाराणसी, द्वि0 सं0।
4. प्रिय0, तृ0 अंक, पृ0 94 व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी, चौखम्भा अमर भारती प्रका0 वाराणसी , वि0 सं0 2035.
5. प्रिय0 , तृ0 अंक ,व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी, चौखम्भा अमर भारती प्रका0 वाराणसी

"इच्छ्या न्योन्यसंयोगः कन्यायाः च वरस्य वा गान्धर्वः सतु विज्ञेयोमेधुन्यः कामसंभवः।" यही इसका स्वरूप है । दुष्यन्त और शकुन्तला का विवाह भी इसी प्रकार हुआ था ।

दैनिक गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित विविध क्रिया कलाप एवं उत्तरदायित्व -

प्राचीन काल में भी बड़े घरानों में समय को व्यतीत करने के लिये कन्यायें खेल–कूद तथा आदि के प्रति आस्था रखतीं थीं तथा जिस देव का पूजन करतीं थीं , रानी अपनीं सखियों के साथ मन्दिर जाती थीं । आज भी पूजा – पाठ आदि धार्मिक क्रियाओं का कार्य स्त्रियॉ व और लोग करते है। विदूषक कहता है –[1]या सा कालाष्टमी अतिक्रान्ता , तस्यां तत्रभवती वासवदत्ता नाम राजदारिका धात्री द्वितीया कन्यकादर्शनं निर्दोषमिति कृत्वाऽपनीत कञ्चुकायां शिविकायामवघट्टितप्रणाली प्रस्तुसलिल विषमं राजमार्ग परिहृत्य यत्तद्बन्धनद्वारस्याग्रतो भगवत्या यक्षिण्याः स्थानं , तस्मिन् देवकार्यं कर्तुं गतासीत् ।

स्त्रियों को भी पुरूषों के समान क्रीडा में बराबर का स्थान मिलता था । पद्मावती कन्दुक से खेलती है –[2] भर्तृदारिका माधवी लतामण्डपस्य पार्श्वतः कन्दुकेन क्रीडतीति । यावद् भर्तृदारिका मुपसर्पामि । अम्मो । इयं भर्तृदारिका उत्कृतकर्णचूलिकेन व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दु विचित्रितेनं परिश्रान्तरमणीय दर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीत एवागच्छति । यावदुपसर्प्यामि ।

जब वह गेंद खेल कर आती है तो वासवदत्ता उससे कहती है – हला अतिचिरं कन्दुकेन क्रीडित्वाधिकसञ्जातरागौ[3] परकीयाविव ते हस्तौ संवृत्तौ ।

---

1. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् , अंक तृतीय 'प्रकाश' संस्कृत – हिन्दी व्याख्योपेतम् चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी, पृ0 93.

2. स्वप्न वासवदत्तम् द्वि0 अंक , पृ026, लेखक जयपाल विद्यालंकार , प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास , द्वि0सं0 1972.

3. स्वप्नवासवदत्तम् , पृ0 18 अंक द्वितीय व्या0 गणेशदत्त शर्मा , प्रका0 रतिराम शास्त्री, प्र0 सं0 1968 –"कन्दुक क्रीडा में रत पदमावती का हाथ अत्यन्त लाल हो गया है । लक्ष्यार्थ से ऐसा अर्थ निकलता है रंगे हुए पद्मावती के हाथ अब दूसरे के हो गये हैं । महान कवि कालिदास ने भी – "अर्थो हि कन्या परकीय एव"। से इसकी पुष्टि की है । वासवदत्ता मे उत्पन्न सपत्नी की ईर्ष्या का आभास भी प्रस्तुत उक्ति में मिलता है।

इस पर दासी कहती है कि – कीडतु[1] कीडतु तावद् भर्तृदारिका । निर्वर्त्यतां तावद् अयं कन्याभावरमणीयः[2] कालः । दैनिक कार्यो में फूलों आदि का चुनना भी आ जाता है जिससे कि वह अपने आर्य का स्वागत करती है । इन फलों का वर्णन चेटी ने इसप्रकार किया है –[3] भर्तृदारिके ! ते कुसुमितानाम , प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिकलम्बकैराचिताः कुसुमैः ।

प्राचीन काल से ही हिन्दू समाज में त्योंहारों को अत्यन्त महत्व दिया जाता था । नरियों को सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । स्त्रियॉ पुरूषों के साथ – साथ सामाजिक कार्यो में सहयोग करतीं थी । हर्षोल्लास के साथ त्योंहारों को मनाते थे उन उत्सवों में होली का त्योहार विशेष महत्व रखता था । आधुनिक युग की तरह लोग होली खेलते थे , स्त्री पुरूष के ऊपर पूर्ण सतर्कता एवं निर्भीकता के साथ रंग लगाया करती थी । आधुनिक जीवन में नारी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है यद्यपि सामाजिक जीवन में नारी की भूमिका सदैव विवादास्पद रही है । सामाजिक क्षेत्र में नारी के योगदान को कोई भी दार्शनिक अनदेखा नहीं कर पाया है । भास व हर्ष ने अपने – अपने नाटकों में नारी की सामाजिक गतिविधियों का अत्यन्त सुन्दर , मनोरम एवं सरस वर्णन किया है ।

पहले मन को बहलाने के लिए विशेष प्रकार के उत्सव मनाये जाते थे । विदूषक राजा को मदन महोत्सव की सुन्दरता को दिखाता है जिसको देखकर राजा प्रसन्नता के साथ वर्णन करता है [4]–

कीर्णैः पिष्टातकौधैः कृतदिवसमुखैः कुङ्.कुमक्षोदगौरै
हेमालङ्क.ारभाभिर्भरनमितशिखैः शेखरैः कैङ्कि.रातैः ।
एषा वेषाभिलक्ष्य स्व विभव विजिताशेष वित्तेशकोशा
कौशाम्बी शातकुम्भद्रवखचितजनेवैकपीता विभाति ।।

---

1. स्वप्नवासवदत्तम् , द्वि0 अंक, पृ034, व्या0 गणेशदत्त शर्मा , प्र0सं0 1968.

"क्वारेपन की स्वच्छन्दता एवं अल्हणता का बोध इससे कराया गया है ।

2. बालोचित लीलाओं को करती हुई राजकुमारी के स्वच्छन्द विचरण का समय जो समाप्त प्राय है । आनन्द पूर्वक बीते, क्योंकि निकट ही वह समय है जब राजकुमारी प्रणय सूत्र में बंध जावेगी और उस समय सारी चपलता समाप्त हो जायेगी ।

3. स्वप्नवासवदत्तम् , चतुर्थ अंक , पृ040 , ले0 जयपाल विद्यालंकार , द्वि0 सं0 1972.

4. रत्ना 1/10, व्या0 डा0 वैजनाथ पाण्डेय , प्रका0 मोतीलाल वनारसीदास वाराणसी , प्र0सं0 1980.

रत्नावली में काम महोत्सव[1] तथा मदन महोत्सव आदि क्रिया – कलाप होते थे जिनमें महारानी कामदेव की पूजा करने कांचनमाला के साथ जाती थीं । वासवदत्ता दैनिक कार्यो[2] में रूचि रखतीं हैं यहाँ तक कि वह ईश्वर के प्रति भी आस्था रखतीं थीं । जिस समय वह कामदेव की पूजा करतीं हैं तो उसकी क्रिया – कलाप को देखकर राजा कह उठता है –

प्रत्यग्रमज्जन विशेष विविक्तकान्तिः

कौसुम्भरागरूचिरस्फुरदंशुकान्ता ।

विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती

बालप्रवालविटपिप्रभवा लतेव ।।

दैनिक कार्यो से निवृत होने के बाद घर में स्त्रियाँ अपने मनोरंजन आदि के लिए हाथों से सिलाई, कढ़ाई, बुनाई तथा पेन्टिंग आदि करती हैं । यहाँ पर सागरिका ने निपुणिका । (वासवदत्ता की दासी) । को पेन्टिंग का सामान लिये हुए देखा उसी के विषय में वह उसकी प्रिय सखी सुसंगता से कहती है[3] – सखि, दृष्टा मया ते प्रियसखी सागरिका गृहीतचित्रफलक वर्तिका समुद्रगका समुद्विग्नेव कदलीगृहं प्रविशन्ती । तद्गच्छ प्रियसरवीम् । अहमपि देव्याः सकाशं गमिष्यामि ।

प्रियदर्शिका में वासवदत्ता ने अपनी दासी को आज्ञा दी कि थोड़े से फूल ले आओ क्यों कि मुझे[4] – "हञ्जे इन्दीवरिके, अद्य मया अगस्त्य महर्षयेऽर्घ्य दातव्यम् । तद्गच्छ त्वम् । शेफालिका कुसुममालां लघु गृहीत्वाऽऽगच्छ । एषाप्यारण्यका धारागृहोद्यान दीर्धिकाया यावदेव विकसितानि कमलानि नास्ताभिलाषिणा सूर्येण मुकुलाय्यन्ते तावदेव लघ्ववचित्यागच्छतु" इति । एषा तपस्विनी तां दीर्धिकां न ।

---

1. रत्ना0, प्र0 अंक, पृ0 34, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी, 1976.
2. रत्ना0 1/20 व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी, 1976.
3. रत्ना0, द्वि0 सं0, पृ0 46, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदा, वाराणसी, द्वि0 सं0 1976.
4. प्रिय0, द्वि0 अंक, पृ0 34, पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौखम्भा अमर भारती प्रकाशन वाराणसी, प्र0 सं0 वि0सं0 2035.

न जानाति । तदगृहीत्वा तां गमिष्यामि । नेपथ्याभिमुखमवलोक्य । इत इत आरण्यके[1] एहि।

दैनिक जीवन में कुछ ऐसे कार्य होते हैं जिससे लोग अपने मन को बहलाकर तसल्ली कर लेते हैं । इस नाटक के अभिनय के समय उसके गीत को सुनकर राजा बड़ी तारीफ करता हुआ इस प्रकार कहता है[2] –

व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना दशविधेनाप्यत्र लब्धाधुना

विस्पष्टो द्रुतमध्यलम्बितपरिच्छिन्नस्त्रिधायं लयः ।

गोपुच्छप्रमुखाः क्रमेण यतयस्तिस्रोऽपि संपादिता

स्तत्वौघानुगताश्च वाद्य विधवः सम्यकत्रयो दर्शिताः ।।

अन्य विविध सामाजिक रूपों में नारी का चित्रण -

भास व हर्ष ने अपने–अपने नाटकों में सामाजिक जीवन में परिवार के विभिन्न सदस्यों, माँ, बहिन, भ्रातृजाया, सखि आदि रूपों में नायिका, उनकी सखियों व दासियों का स्वाभाविक व सहज वर्णन किया है । इन विविध सामाजिक रूपों में चित्रित नारी का वर्णन निम्नवत् किया जा रहा है।

सखि - (सहचरी) -

यह एक ऐसा पात्र होता है जिससे हर एक को कुछ प्रेरणा मिलती है । अपनी सखि या सहेली से सुख–दुःख की बात कहने पर मन का बोझ हल्का हो जाता है । यह कहावत है कि औरत के मन में किसी भी बात को छिपाने के लिए सीमा नहीं होती । वह किसी न किसी तरीके से मन की बात भी व्यक्त ही कर देती हैं।

---

1. प्रिय0, द्वि0 अंक, ृ0 34–35, व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौखम्भा अमर भारती प्रकाशन वाराणसी, प्र0 सं0 वि0सं0 3035.

"आरण्यका प्रस्तुत नाटिका की नायिका प्रियदर्शिका का दूसरा नाम है । आरण्यका के स्थान पर कतिपय विद्वान "आरण्यिका" पाठ मानते हैं । उनके अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है – आरण्यकेभवा आरण्यिका । अरण्यान्मनुष्ये इस सूत्र से वुञ । अक् । ततः टाप प्रत्ययस्थात्कात्" इस सूत्र से इत्व है ।

2. प्रिय0, 3/10, व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौ0 अमर भारती प्रकाशन वाराणसी, प्र0 सं0 वि0 सं0 2035.

मधुकरिका और पदिमनिका पद्मावती की सखियॉं हैं । जब पद्मावती सिर दर्द से पीड़ित होती है तो उसका बिस्तर सखि समुद्रगृह में बिछाती है । [1]यथा – समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा । गच्छेदानीं त्वम् । अहमपि भर्तुर्निवेदनार्थ मार्यवसन्तकमन्विष्यामि ।

पहले महारानी व रानी के साथ सहचरी साथ में ही रहती थी जिसके द्वारा सारा कार्य किया जाता था तथा महारानी अपने दिल की बात भी उन्हीं से कह देती थी । वासवदत्ता अपनी ही सहचरी कांचनमाला से पूछती है कि रक्ताशोक वृक्ष कितनी दूरी पर है जहॉं हमें कामदेव की पूजा करनी है । इस पर वह बताती है –[2] भर्त्रि । आसन्न एव । किं न प्रेक्षते भर्त्री । इयं खलु सा निरन्तरो द्भिन्नं कुसुम शोभिनी भत्र्यां परिगृहीता माधवीलता । एषाप्यपरा नवमालिका लता यस्या अकाल कुसुम समुद्गम श्रद्धालुना भर्त्रानुदिन मायास्यत आत्मा । तदे तामतिक्रम्य दृश्यत एव स रक्ताशोकपादपो यत्र देवी पूजां निर्वर्तयिष्यति ।

जब वासवदत्ता सागरिका से कोधित होती है तो वह कहती है कि सागरिका को मैने अपने ही हाथों से प्रियसखि सुसंगता को सौंप दिया है –[3]यद्भत्र्याज्ञापयति । । इति तथा कृत्वा कतिचित्पदानि गत्वा आत्मगतम् । सारिका मया पुनः सुसंगताया[4] हस्ते समर्पिता ।———————————— कुसुमान्यवचेष्यामि ।

सागरिका अपनीं प्रिय सखि के हाथ में सारिका का पिंजड़ा छोड़ जाती है , काफी प्रतीक्षा के बाद वह नहीं आती तो वह बड़ी चिन्तित होकर

---

1. स्वप्न वासवदत्तम् , पंचम अंक , लेखक जयपाल विद्यालंकार , प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास , दिल्ली , वाराणसी , पटना , मद्रास द्वि0सं0 1972.
2. रत्ना प्रथम अंक , पृ030 , व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी , प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, द्वि0सं0 वाराणसी ।
3. रत्नावली ,प्र0 अंक ,पृ032 ,व्या0 रामशंकर त्रिपाठी ,प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास , द्वि0सं0 वाराणसी ।
4. यह महारानी की सेविका तथा सागरिका की घनिष्ठ सहेली है ।

स्वयं से कहती है –[1] हा धिक् ! हा धिक् ! कुत्रेदानीं मम हस्ते सारिकापञ्जरं निक्षिप्यगता में प्रियसखी सागरिका । तत्क्व प्रनरेनां प्रेक्षिष्ये ? । अग्रतो निरुप्य । कथमेषा खलु निपुणिकेत एवागच्छति । तद्यांवदेनां प्रक्ष्यामि ।

सुसंगता निपुणिका के बताये अनुसार कदलीगृह में प्रवेश करती है तथा छिपकर सागरिका के द्वारा बनाये हुये चित्र को निम्न प्रकार से देखती है – एतत्तत्कदली गृहम्। तत्प्रविशामि । (प्रविश्याग्रतो विलोक्य सविस्मयम्) एषा मे प्रियसखी सागरिका । किं पुनरेषा गुरू कानु रागोत्क्षिप्त सहृदया – – – – । जब उसकी प्रियसखि उसके द्वारा बनाये हुये चित्र को देखती है –[2] कि इसमें कुछ सूना – सूना सा लग रहा है , लाओं मैं चित्रित करके देखूँ –[3] अहो ते निपुणत्वम् । किं पुनः शून्यमिवैतच्चित्रं प्रतिभाति । तदहमप्यालिख्य रतिसनाथं करिष्यामि । इस पर सागरिका सुसंगता के द्वारा बनाये हुए चित्र को देखकर कहती है –[4] । विलोक्य सासूयम् । सुसंगते कस्मात्वयाहमलिखिता । चित्र को देखकर सागरिका नाराज होने लगती है । उसकी नाराजगी को देखकर सुसंगता कहती है –[5] । विहस्य । सखि , किम्कारणं कुप्यसि । यादृशस्त्वया कामदेव आलिखितस्तादृशी मया रतिरालिखिता । तदन्यथासम्भाविनि किं तवैतेनालपितेन । कथय तावत्सर्व वृतान्तम् ।

सागारिका इस बात से बड़ी लज्जा अनुभव करती है हमारे उदयन के प्रति प्रेम को हमारीं सखि (सुसंगता) भी जान गयी है । वह उससे कहती है–

---

1. रत्ना0, प्र0 अंक, पृ0 55, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्र0सं0 1980.
2. रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 48, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0सं0 वाराणसी ।
3. रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 60, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्र0सं0 1980 ।
4. रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 50, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0सं0 वाराणसी ।
5. रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 50, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0सं0 वाराणसी ।

कि तुम मेरे प्रेम के विषय में किसी से चर्चा नहीं करना ।[1] सागरिका का संताप काफी बढ़ने लगता है तो उसकी सखि मृणाल[2] के पत्तों को लेकर छाती से लगाती है । इस पर सागरिका कहती है कि इनसे कुछ नहीं होगा क्योंकि –[3]

दुर्लभजनानुरागों लज्जा गुर्वी परवश आत्मा ।
प्रिय सखि[4] विषमं प्रेम मरणं शरणं नवरमेकम्[5] ।।[6]

सागरिका की सुन्दरता के विषय में राजा के मुख से अनाप – सनाप बकते हुए सुसंगता सुनती है , वह अपनीं प्रियसखि से इस प्रकार कहती है –[7] हा धिक् ! हा धिक् ! गुर्वनुरागोत्क्षिप्तहृदयो भर्ता संवद्धमपि मन्त्रयितुं प्रवृत्तः । तन्न युक्तमतः परमुपेक्षितुम् । भवतु । एवं तावत् । प्रकाशम् । सखि , यस्य कृते त्वमागता सोऽयं ते पुरतस्तिष्ठति ।

---

1. रत्ना०, द्वि० अंक, पृ० 50, व्या० डा० रामशंकर त्रिपाठी, द्वि०सं० वाराणसी ।
2. कमल की पंतली जड़ों को मृणाल कहते हैं। प्राचीन काल में काम व्यथा से पीड़ित व्यक्ति की गर्मी को कम करने के लिए इस तरह का उपचार किया जाता था । ठंडी वस्तुओं से शरीर की गर्मी का ताप कम होना स्वाभविक ही है ।
3. मालविका० " दुर्लभः प्रियो मे तस्मिन्मव हृदय निराश ।"
4. अभि० शा० 3/8– " पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला ,
   नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम् ।"
5. दशरू० 1/55, प्रतिमुख संधि का भेद "विधूतम्" विधूतं स्यादरतिः
6. रत्ना०, 2/1 पृ० 39 व्या० रामशंकर त्रिपाठी, द्वि० सं० वाराणसी ।
7. रत्ना०, द्वि० अंक, पृ० 78, व्या० डा० रामशंकर त्रिपाठी, द्वि० सं० वाराणसी ।

इस प्रकार दोनों आपस में बातचीत करती हैं ।

सागरिका – । सासूयम् ।[1] सुसंगते, कस्य कृतेऽहमत्रागता[2] ।

सुसंगता – । विहस्य ।[3] अयि अन्यशङ्कितेे ननु चित्रफलकस्य ।

तद् गृहाणैतम् ।

सागरिका – । सरोषम् ।[4] अकुशलास्मि तवेदृशानामालापानाम् ।

तदन्यतो गमिष्यामि ।

सुसंगता – । सागरिकां हस्ते गृहीत्वागच्छामि। अपि असहने इहं,

तावन्मूर्तयावदस्मात् कदली गृहच्चित फलकं गृहलागच्छामि।

सागरिका – सखी, एवं कुरू ।[5]

एक सखि अगर अपने मन की बात दूसरे से कह दे तो उसके मन का बोझ हल्का हो जाता है । मन की बात कहने के लिए आरण्यका इस प्रकार सोचती है – कस्मै तावदेतं वृत्तान्तं निवेद्य सहयवेदनमिव[6] दुःख करिष्यामि । । विचिन्त्य । अथवा अस्ति मे हृदयनिर्विशेषा प्रियसखी मनोरमा । तस्या अप्येतल्लज्जया न पारयामि कथयितुम् । सर्वथा मरणं वर्जयित्वा कुतो मे हृदयस्यान्या निर्बृतिः ।[7]

---

1. "असूया तु दोषारोपो गुणेष्वपि" । अ0को0। गुण रूप मनो अनुकूल वर्णन पर लज्जा के कारण तिरष्कार का आरोप है ।
2. दशरू0 1/33– प्रतिमुख संधि का भेद – नर्म , परिहास , बचोनर्म ।
3. "सागरिका के द्वारा छिपाये अभिप्राय को सुसंगता समझ रही है इसलिये उसका हंसना यह व्यक्त कर रहा है कि " मैं सब समझ रही हूँ "।
4. " वह सीधे बचन को विपरीत समझ रही है," इसलिये कोप कर रही है "।

5. रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 99, व्या0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, प्र0सं0 1980.

6. सह्य वेदना0– " लोगों से कह देने पर उनकी सहानुभूति से वेदना की असहता कम हो जाती है, इसी तात्पर्य से ऐसा कहा है । इसी तरह की उक्ति कालिदास की भी है – " स्निग्धजनसंविज्ञतं ही दुःखं सह्यवेदनं भवति "। किसी और कवि ने भी कहा है – "कस्या यायायव्यति करमिमं मुक्तदुःखो भवेयम् ।"

7. प्रिय0, वृ0 अंक, पृ0 43, टीका0 पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन वाराणसी, द्वि0सं0 1976.

नाटक के प्रारम्भ से ही वासवदत्ता आरण्यका के प्रति बहिनवत् व्यवहार करती है ।[1] आरण्यका अपनीं सखी से नाटक के अभिनय के समय में जब राजा के हाथ का स्पर्श करती है उसी के विषय में मनोरमा से इस प्रकार कहती है – । स्पर्श विशेषं नाटयन्ती, आत्मगतम् । हा धिक् ! हा धिक् ! एतां मनोरमां स्पृशन्त्या अनर्थमेव मेड.ानि कुर्वन्ति ।[2] अपनीं प्रिय सखी की दशा को देखकर मनोरमा वासवदत्ता से कहती है – हा धिम् हा धिक् । दृष्टिरप्यस्याः संक्रान्ता विषेणैव । । वासवदत्तां दृष्ट्वा । भट्टिनि, लघु परित्रायस्व लघु परित्रायस्व । गुरूभूतमस्या विषम् ।[3]

प्रेयसी - । प्रेमिका । –

प्रेम का प्रत्येक व्यक्ति में होना स्वाभाविक है । उसके कई रूप हैं लेकिन प्रेमिका के प्रति जो प्रेम होता है वह प्रगाढ़ होता है उसमें किसी भी प्रकार का स्वार्थ नहीं होता है । यह कब और किस समय किसके प्रति हो जाय, कहना असम्भव होगा । भास के नाटक में नायक वासवदत्ता के प्रति अत्यन्त प्रगाढ़ प्रेम ।रतिभाव। रखता है ।[4] नायक अपनीं प्रेयसी वासवदत्ता से प्यार करता है । कहा जाता है कि अगर कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका या प्रेयसी को सच्चे मन से याद करता है तो वह या तो स्वप्न में , या वास्तव में मिलन हो जाता है । जब उदयन समुद्रगृह की सेज पर चादर ओढ़े हुए लेटा होता है,[5] तभी वासवदत्ता आती है वह समझती यह पद्मावती लेटी है, अतः वह भी उसकी शैय्या पर बैठे ही नहीं जाती है बल्कि लेट भी जाती है। सोते में जब वासवदत्ता नाम सुनती है तो समझ जाती है कि यह आर्यपुत्र है , वह उठकर चल देती है तभी उदयन जागकर उसको जाता

---

1. प्रिय0 तृतीय अंक , टीका0पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन वाराणसी, द्वि0सं0, पृ0 53 –" आरण्यके , एतैरेव मदाङ्.पिनदर्धराभरणैर्नेपथ्यभूमिं गत्वात्मानं प्रसाधय।। आभरणान्यङ्.ा दवतार्यारण्यकायाः समर्पयति ।।"

2. प्रिय0, तृ0 अंक, **पृ0** 93, व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी, चौ0 अमर भारती प्रकाशन वाराणसी, प्र0सं0वि0सं0 **2035.**

3. प्रिय0, चतुर्थ **अंक,** पृ0 98, टीका0 पं0 रामचन्द्र **मिश्र** , चौ0 विद्याभवन , वाराणसी, द्वि0सं0 1970.

4. स्वप्नवासवदत्तम् , 5/1, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास , द्वि0सं0 –

   श्लाघ्याभवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां , **कालक्रमेण पुनरागतदारभारः** ।

   लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टि , तां पद्मिनीहिमहतामिव चिन्तयामि ।।

5. स्वप्नवासवदत्तम् , पंचम अंक , पृ0 84 ,ले0 **जयपाल विद्यालंकार** , प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास , वाराणसी ।

हुआ देखकर विदूषक से कहता है । मैं खुश खबरी सुनाता हूँ वासवदत्ता निःसन्देह जीवित है । इस पर विदूषक कहता है । कहाँ है वासवदत्ता ? वह तो बहुत पहले ही मर गयी । ऐसा न कहो । यथा –

श्य्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे ! गता ।
दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वञ्चितोऽस्मि रूमण्वता ।।[1]

पति के वियोग काल में श्रृंगार वर्जित होता है, क्यों कि मैंने । राजा । उसे बिना सजा – संवरा[2] देखा है । जब प्रेमी को अपनी प्रेयसी का जरा सा भी स्पर्श होता है तो रोमों का पुलकित हो जाना स्वाभाविक ही है अर्थात उसका हर स्पर्श रोमांच[3] युक्त होता है । प्रेयसी में मनो – विनोदादि संगीत आनन्दित करने वाला होता है । वीणा की आवाज को सुनकर –

श्रुति सुखनिनदे ! कथं नु देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता ।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम् ।।[4]

वासवदत्ता उदयन के वियोग में घोषवती को बजाकर अपनी विरह वेदना प्रकट करती थी । अब उदयन वासवदत्ता के वियोग में घोषवती को

---

1. स्वप्नवासवदत्तम्, पंचम अंक, 5/8, व्या0 गणेशदत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, प्र0 सं0 1969.
2. स्वप्नवासवदत्तम् 5/10– "स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रेषिताञ्जनम् ।
   चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम् ।।"
3. स्वप्नवासवदत्तम् 5/11– "योऽयं संत्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः ।
   स्वप्नेऽप्युत्पन्न संस्पर्शो रोमहर्ष न मुञ्चति ।।"
   ऐसा ही मनोमुग्धकारी चित्रण उत्तर रामचरित्र में भी सीता के हस्त स्पर्श का मिलता है। रोमांच भी श्रृंगार के सात्विक भावों में से अन्यतम माना जाता है ।
4. स्वप्नवासवदत्तम्, 6/1, व्या0 गणेशदत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, प्र0 सं0 1968.

लेकर क्रन्दन कर रहा है । यथा –

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि

खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि ।

उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि

वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ।।[1]

निम्न श्लोक में वासवदत्ता के प्रति उदयन के असीम प्यार का आभास होता है । मानों वासवदत्ता की मृत्यु के साथ ही सारी अभिलाषायें भी तो गयी हैं और पुनः इस वीणा के दर्शन से जागरूक हो गयी हैं[2] ।

प्रेम एक ऐसी चीज है कि कब और किसके प्रति उमड़ पड़े, वत्सराज कारागार में था फिर भी वह वासवदत्ता को प्रथम बार में ही देखकर उस पर आसक्त हो जाता है तथा वह अपने मन में वासवदत्ता को छोड़कर कारागार से निकलने का नाम भी नहीं लेता । इस पर यौगन्धरायण कहता है कि –

सुभद्रामिव गाण्डीवी नागः पद्मलतामिव ।

यदि तां न हरेद् राजा नास्मि यौगन्धरायणः ।।[3]

अपि च,

यदि तां चैव तं चैव तां चैवायतलोचनाम्

नाहरामि नृपं चैव नास्मि यौगनधरायणः ।।[4]

यदि किसी रमणी का प्रिय दूर देश में स्थित हो तो प्रिय बिरह में उसका मुख पाण्डु । पीला । हो जाता है । निम्न श्लोक में राजा कहता है –

उदयतटान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ्.निशानाथम् ।

परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थिता रमणी ।।[5]

---

1. स्वप्नवासवदत्तम् 6/2, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, द्वि0 सं0 1972.

2. स्वप्नवासवदत्तम् 6/3, – "चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः ।

तां तु देवी न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ।। "

3. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, 3/8, प्रकाश संस्कृत – हिन्दी व्याख्योपेतम्, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी ।

4. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, 3/9, प्रकाश संस्कृत – हिन्दी व्याख्योपेतम्, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी ।

5. रत्ना0 1/24, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

कोई भी प्रेमी या प्रेमिका अगर अपने कामीजन को देख लेती है तो उन्हें बस यही लगता है कि बस वह अपने चाहने वाले को निहारते रहे जैसा कि यहॉ पर उदयन को देखकर सागरिका निम्न ढंग से कहती है [1]– कथं प्रस्थिता देवी । भवतु । तदहमपि त्वरितं गमिष्यामि । । राजानं सस्पृहं दृष्टवा (निःश्वस्य) । हा धिक्! हा धिक् । मन्दभागिन्या मया प्रेक्षितुमपि चिरं न पारितोऽयं जनः ।

सागरिका ही नहीं बल्कि उदयन भी घूमता हुआ देखकर कहता है[2] –

देवि त्वन्मुखपंकजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा

पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम् ।

श्रुत्वा त्वपरिवार वारवनि तागीतानि भृंगागना

लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः सञ्जात लज्जा इव ।।

कोई भी स्त्री हो जब वह अपने चाहने वाले को देख भर लेती है तो उसका मन उससे मिलने के लिए छटपटाने लगता है, यही दशा सागरिका की भी हुई । वह स्वयं से कहती है[3] (निःश्वस्य) । हृदय प्रसीद, प्रसीद । किमनेनायासमात्रफलेन दुर्लभजन प्रार्थनानुबन्धेन । अन्यच्च येनैव दृष्टेन त ईदृशः सन्तापो ननु वर्धते .... प्रेक्षिष्ये ।

कामी व्यक्ति अपनी प्रिया को अपने अनुकूल ही देखता है ।[4] प्रायः सागरिका को देखकर कह रहे हैं कि यह साक्षात लक्ष्मी में अद्वितीय कान्ति है ।[5]

---

1. रत्ना0, प्रथम अंक, पृ0 53, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी प्र0 सं0 1980·
2. रत्ना0, 1/25, पृ0 53, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी प्र0 सं0 1980·

   अभि0 शा0 6/20, तु0 – "त्वां कारयामि कमलोदर बन्धनस्थम् ।

3. रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 46,. टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

4. अभि0 2/2, – "कामी स्वतां पश्यति ।"

5. श्रीमद् भा0 पु0 88 8– "ततश्चाविर्भूति साक्षाच्छीरमा भगवत्परा ।

रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत सौदामनी यथा ।।"

उसी प्रकार समुद्र से प्राप्त होने वाली सागरिका में अद्वितीय रमणीयता है । जैसे विष्णु ने लक्ष्मी को अपने हृदय[1] में रखा है, उसी प्रकार इस सागरिका को मैं अपने हृदय में रखूँगा । राजा से प्रेम करने वाली युवती के मन में यह सन्देह[2] रहता है कि मुझे प्यार करेगें या नहीं । राजा उदयन सागरिका को "श्री" कहकर उसे अपने हृदय रखने का विश्वास दिलाते हैं । यथा[3] –

श्री रेषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः ।

कुतोऽन्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रवः ।।

कांचनमाला, मदनिका व उदयन विदूषक प्रेम को बतलाती है जिस विषय में सुसंगता विदूषक से कहती है उसी का वर्णन कांचनमाला सुसंगता से इस प्रकार कहती है[4] तथैवं भणितम् – अद्य खलु देव्या चित्रफलक वृत्तान्तशंङ्कितया सागरिकां रक्षितुं मम हस्तें समर्पयन्त्या यन्नेपथ्यं[5] मे प्रसादीकृतं तेनैव विरचित भट्टिनी वेषां सागरिकां गृहीत्वाऽहमपि काञ्चनमाला[6] वेषाधारिणी भूत्वा प्रदोष इहागमिष्यामि । त्वमवीहैव चित्रशालिकाद्वारे मां प्रतिपालयिष्यसि । ततो माध्वीलतामण्डपे तया सह भर्तुः समागमो भविष्यतीति ।

---

1. श्रीमद्0 8/8/25– "तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या वक्षो निवासमकरोत् परमंविभूतेः ।"
2. अभिशा0 3/16– "हला , किमन्तःपुरविरहपर्युत्सुकस्य राजर्षेरूपरोधेन ।"
3. रत्ना0 2/18, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी ।
4. रत्ना0, तृ0 अंक, पृ0 96, द्वि0 सं0, 1976.
5. पिछली चित्रफलक वाली घटना से महारानी शंकित हो गयी थीं । अतः उन्होनें अपनी एक दासी कांचनमाला को सागरिका की निगरानी में नियुक्त कर दिया था । वह तत्परता के साथ अपने कर्तव्य का निर्वाह करे, एतदर्थ महारानी ने उसे अपना वस्त्र आदि प्रदान कर दिया था । अब कांचनमाला यही वस्त्रादि सागरिका को पहना कर ले जाने की बात सोच रही है, ताकि देखने वाले को यही ज्ञात हो कि यह महारानी ही जा रही हैं ।
6. कांचनमाला महारानी की प्रिय दासी थी ।

उस रमणी की दशा जो दिन भर अपने प्रेमी के साथ रमण कर लेने पर जब बिछुड़ती है उसी का वर्णन निम्न श्लोक में वर्णित है [1] –

यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष

सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया ।

प्रत्यायनामयमितीव सरोरूहिण्याः

सूर्योऽस्तमस्तक निविष्टकरः करोति ।।

प्रेमी को अपनी प्रेमिका के दर्शन से ही काफी आनन्द मिलता है । यहाँ उदयन । प्रेमी । तथा सागरिका । प्रेमिका । को दर्शन मात्र से ही आनन्द की अनुभूति होती है । यथा[2] –

प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शंङ्कि.ता[3]

घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ ।

वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताऽप्यहो

रमयतितरां[4] संकेतस्था तथाहि कामिनी ।।

जब प्रेमी का समय अपनी प्रेयसी से मिलने के लिए नजदीक आने लगता है तो मन अत्यधिक विकल होने लगता है । यही दशा महाराज उदयन की हुई । यथा[5] –

तीव्रः स्वमरसंतापो[6] न तथादौ बाधते यथासन्ने ।

तपति प्रावृषि नितरामभ्यर्णजलागमो दिवसः ।।

---

1. रत्ना0,3/6, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0।
2. रत्ना0,3/9, टीका0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, दिल्ली, वाराणसी, पटना, प्र0 सं0।

3. मा0वि0 4/8, निसर्गशालिनः स्त्रीजनः । पश्य –

"कार्त्स्न्येन निर्वर्णयितुं च रूपमिच्छन्ति तत्पूर्वसमागमानाम् ।

न प्रियेष्वापतलोचनानां समग्रवृत्ती न विलोचनानि ।।"

4. शिशु0 व0 9/22 – "अवधार्य कार्यगुरूतामभवन्न भयाय सान्द्रतम न्तमसम् ।

सुतनोः स्तनौ च दयितोपगमे तनुरोमराजिपथवे पथवे

तभी तो किसी कवि ने कहा है कि – "गाली मीठशाली की और नारी मीठ चोरी की ।"

5. रत्ना03/10, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, द्वि0 सं0।

6. स्मरण कराने वाला कामदेव निरन्तर प्रिया का स्मरण कराता रहता है । प्रिय सभी दिशाओं में अनन्त रूप में दिखायी पड़ती है ।

जब प्रेमिका को अपने प्रेमी की तरफ से निराशा का भाव नजर आने लगता है तो सिवाय उसके मरने का और कोई उपाय नजर नहीं आता । यहाँ सागरिका यही विचार करती है।[1] – । विमृश्य। वरमिदानीं स्वयमेवात्मनमुदबध्यो परता न पुनर्ज्ञातसंकेतवृत्तान्तया देव्या परिभूतास्मि । तद्यावदहमशोकपदपं गत्वा यथा समीहितं करिष्यामि । इतना ही नहीं बल्कि वह – । उपसृत्य तद्यावदेतस्याः माधवीलतायाः पाशं विरचय्याशोकपादप आत्मानमुदबध्य व्यापादयामि । । इति लतापाशं रचयन्ती । हा तात हा अम्ब एषेदानीमहमनाथऽशरणा विपद्ये मन्दभागिनी । आत्महत्या करते समय अगर किसी प्रेमिका का प्रेमी उसे बचाने के लिए आता है तो अन्तर्मन में उसमें फिर से जीने की कामना जाग्रत हो जाती है। यही दशा सागरिका की हुई।[2] –राजानं दृष्टवा।अम्मो । कथमेष भर्त्ता । सहर्षमात्मगतम् । यत्सत्यमेनं प्रेक्ष्य पुनरपि मे जीविताभिलाषः संवृत्तः । अथवैनं प्रेक्ष्य कृतार्था भूत्वा सुखेनैव जीवितं परित्यक्ष्यामि । । प्रकाशम् । मुञ्चतु मुञ्चतु मां भर्त्ता । पराधीनः खल्वयं जनः न पुनरीदृशमवसरं मर्तुं प्राप्नोति ।

---

1. रत्ना0 तृ0 अंक, पृ0 122, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0 ।
2. रत्ना0 तृ0 अंक, पृ0 124, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0, वाराणसी ।

सागरिका के कहने का भाव यह है कि मैं एक दासी हूँ, मेरा जीवन स्वामिनी वासवदत्ता के हाथों में है । अतः मैं कब और कैसे मर जाऊँगी, इसका कुछ ठिकाना नहीं । मरते समय आपको देख पाऊँगी यह तो सम्भव है । अतः आज यह एक अच्छा सुअवसर मिल गया है, मैं आपको देखते हुए अपने प्राणों को छोड़ सकूँगी ।

राजा जब ध्यान से देखता है कि अरे यह तो मेरी प्रिय सागरिका है तो इस प्रकार कहता है [1]–

अलमलमतिमात्रं साहसेनाऽमुना ते

त्वरितमयि विमुञ्च त्वं लतापाशमेतम् ।

चलितमपि निरोद्धुं जीवितं जीवितेशे[2]

क्षणमिह[3] मम कण्ठे बाहुपाशं निधेहि ।।

अग्नि से घिरी हुई सागरिका को बचा लेता है तो वह इस प्रकार कहता है[4] –

मुहूर्तमपि सह्यतां .... माम् ।।

गले से लगाकर ऑखे बन्द किये हुए स्पर्श सुख का अभिनय करते हुए अहो ! मेरा यह संताप क्षण भर में ही दूर हो गया प्रिय सागरिके धैर्य रखिये –

व्यक्तं लग्नोऽपि भवतीं न दहत्येव पावकः ।

यतः सन्तापमेवायं स्पर्शस्ते हरति प्रिये ।।[5]

जब वत्सराज उदयन व आरण्यका का मिलन आपस में होता है तो दोनों दिलों में अचानक एक दूसरे के प्रति चाह की अनुभूति होने लगती है । आरण्यका भी उसको मुड़कर देखती जाती है तथा उसके चले जाने पर बड़ा दुखी होकर कहती है[6] –

हृत्वा पद्मवनद्युतिं प्रियतमेवेयं दिनश्रीर्गता

रागोऽस्मिन्मम चेतसीव सवितुबिम्बेऽधिकं लक्ष्यते ।

चक्राह्वोऽहमिव स्थितः सहचरीं ध्यायन्न लिन्यास्तटे

सञ्जाताः सहसा ममेव भुवनस्याप्यन्धकारा दिशः ।।

---

1. रत्ना0 3/17, पृ0 169, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास द्वि0 सं0 वाराणसी ।

2. आ0को0 1/4/11 – "अष्टादश निमेषास्तु कण्ठा त्रिशंतुताः जनाः ।

तास्तु त्रिशंतक्षणः ।"

3. मालविका0 4/13, तु0 – "विसृज सुन्दरि संगम साध्यवसं तव

चिरात्प्रभृति प्रणयोन्मुखे ।

परिग्रहण गते सहकारतां त्वमतिमुक्तलता चरितं मयि ।।"

4. रत्ना0 4/17, पृ0 223, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास द्वि0 सं0 वाराणसी ।

5. रत्ना0 4/18, पृ0 224, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास द्वि0 सं0 वाराणसी ।

6. प्रिय0 2/10, पृ0 40, टीका0 पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1976.

आरण्यका जब एकान्त में होती है वह स्वयं ही सोचती है कि :– निःश्वस्य हृदय, दुर्लभजनं प्रार्थयमानं त्वं कस्मान्मां दुःखितां करोषि । उसकी इस प्रेम विषयक वार्ता को चुपचाप मनोरमा सुनती है । जब प्रेमी व प्रेयसी का आपस में परिस्थितियोंवश मिलन नहीं हो पाता है तो मन फड़फड़ाता है । वह सोचती है कि किससे अपने मन की व्यथा कह दूँ जिससे कि दिल को शान्ति मिल जाये । नाटक के अभिनय के समय आरण्यका अपने मन के भावों को गीत के द्वारा व्यक्त कर देती है[1] –

अभिनवरागक्षिप्ता मधुकरिका वामकेन कामेन
उत्ताम्यति प्रार्थयमाना द्रष्टुं प्रियदर्शनं दयितम् ।।

नाटक के अभिनय के समय में अर्थात जब दृश्य चल रहा होता तो राजा आरण्यका का हाथ पकड़ कर[2] –

सद्योऽवश्यायबिन्दुव्यतिकरशिशिरः ....व्यक्तमेतत् ।।

अपि च[3] –

एतेन बालविद्रूमपल्लवशोभापहारदक्षेण
हृदये मम त्वायायं न्यस्तोरागः स्वहस्तेन ।।

माता –

परिवार के सदस्यों में सर्वोपरि स्थान माता या संरक्षिका का होता है । राजमाता वत्सराज के बन्दी होने का समाचार सुनकर खिन्न होती हैं और साथ ही यौगन्धरायण के बुद्धिवैभव की प्रशंसा करते हुए यह प्रार्थना करतीं हैं कि उसे उदयन को बन्धनमुक्त करना चाहिए । वह प्रतिहारी से आदेश देती हैं कि मैं पुत्र । यौगन्धरायण । को देखना चाहती हूँ । लड़की के विवाह के समय माताओं को बड़ा दुःख होता है । –

---

1. प्रिय० 3/9, पृ० 88, व्या० पं० रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौ० अमर भारती प्रकाशन वाराणसी, प्र० सं०, वि० सं० 2035.
2. प्रिय० 3/11, पृ० 93, व्या० पं० रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौ० अमर भारती प्रकाशन वाराणसी, प्र० सं०, वि०सं० 2035
3. प्रिय० 3/12, पृ० 93, व्या० पं० रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौ० अमर भारती प्रकाशन वाराणसी, प्र० सं० वि० सं० 2035

कन्याया वरसम्पत्तिः पितुः प्रायः प्रयत्नतः ।

भाग्येषु शेषमायत्तं दृष्टपूर्वं न चान्यथा ।।[1]

राजा जब रानी के समक्ष यह प्रस्ताव रखता है कि अब वासवदत्ता विवाह के योग्य हो गयी है इसका विवाह कर ही देना चाहिए । इस पर वासवदत्ता की माता कहती हैं कि मैं अभी तक निश्चित नहीं कर पायी । इस पर राजा कहते हैं[2] –

अदत्तेत्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः ।

धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः ।।

वासवदत्ता के मन में पद्मावती को देखकर माता जैसा स्नेह उमड़ने लगता है । वह इस प्रकार भी सोचती है – इयं सा राजदारिका । अभिजनानुरूप खल्वस्या रूपम् ।[3] यौगन्धरायण पद्मावती के लिए कहता है कि इसका पति परदेश गया है अतः संरक्षण के रूप में मैं पूजनीया राजकुमारी । वासवदत्ता । के पास धरोहर के रूप में रखना चाहता हूँ ।

यथा – [4]

कार्यं नैवार्थैर्नापि भोगैर्न वस्त्रै

नहिं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः ।

धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा

शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः ।।

संरक्षिका होने के कारण वह दासी से पूछती है कोई भी माँ हो अगर वह अपनी बेटी को ब्याह दे और उसका पति दूसरी स्त्री के प्रति लगाव रखे तो उन्हें अत्यन्त दुःख होता है । इसी विषय में उदयन से कहती है –[5] आर्यपुत्र !तातो अम्बा वा किन्नु खलु भणिष्य तीत्याविग्नेव संवृत्ता।

---

1. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, 'प्रकाश' संस्कृत – हिन्दी व्याख्योपेतम्, चौ० विद्याभवन वाराणसी, 2/5, पृ0 47.
2. प्रतिज्ञा0. 2/7, पृ0 51, 'प्रकाश' संस्कृत – हिन्दी व्याख्योपेतम्, चौ0 विद्याभवन वाराणसी।
3. स्वप्नवासवदत्तम्, प्र0 अंक, पृ0 8, ले0 गणेश दत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, सुभाष बाजार मेरठ, प्र0 सं0 1968.
4. स्वप्नवासवदत्तम्, 1/9, ले0 गणेश दत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, सुभाष बाजार मेरठ, प्र0 सं0 1968.
5. स्वप्नवासवदत्तम्, पृ0 84, ले0 जयपान विद्यालंकार, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0 ।

इस पर राजा कहता है[1] –

किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कित मे

कन्या मयाप्यपहृता च रक्षिता सा ।

भाग्यैश्चलैर्महदवाप्तगुणोपद्यातः

पुत्रः पितुर्जनितरोष इवास्मि भीतः ।।

उदयन को समझाते हुए पद्मावती की उपमाता कहती हैं[2] – आह भट्टिनी – उपरता वासवदत्ता । मम वा महासेनस्य वा यादृशो गोपालपालकौ, तादृश एव त्वं प्रथम मेवाभिप्रेतो जामातेति । एतन्निमित्तमुज्जयिनीमानीतः । अग्नि साक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता । आत्मनश्चपलतयाऽनिर्वृत्त विवाहमंगल एव गतः । अथ चावाभ्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं चित्रफलकायामालिख्यं विवाहो निवृत्तः । एषा चित्रफलका तव सकाशं प्रेषिता । एतां दृष्टवा निर्वत्तो भव ।

वत्सराज उदयन प्रतिहारी से कहते हैं कि प्रियदर्शिका को वासवदत्ता को सौंप दो, वह इसे नृत्य, गीत, वाद्य आदि में विशिष्ट कन्या की तरह शिक्षा दिलावें तथा इससे बहन के जैसा व्यवहार किया जाये व उसी दृष्टि से रखें । मुझे तब याद दिलाना जब यह कन्या विवाह के योग्य हो जाये।[3] वासवदत्ता सांकृत्यायिनी कंचुकी के विषय में कहती है कि तुम इन्हें पहचान रही हो कि नहीं । इस पर वह कहती है[4] – कथं नाभिजानामि । ननु स एषः, यस्य हस्ते मातृष्वसा ते पत्रिकामनुप्रेषितवती । नाटक के अन्त में आरण्यका की मूर्छा दूर हो जाने पर वह कंचुकी को देखकर – कथं कंचुक्यार्य विनयवसुः । सास्रम् । हा तात् हा मातः ।

---

1. स्वप्नवासवदत्तम्, 6/4, पृ0 84, व्या0 जयपाल विद्यालंकार, वाराणसी, द्वि0 सं0 1972.
2. स्वप्नवासवदत्तम्, षष्ठ अंक,पृ0 102, टीका0 गणेशदत्त शर्मा, प्र0 सं0 1967.

3. प्रिय० चतुर्थ अंक,. पृ० 80 – परिवार के सदस्यों में परस्पर अत्यन्त प्रेम रहता था । मातायें पुत्रों के लिए प्राण न्योछावर करने को उद्यत रहती थीं । पुत्र अपने माता–पिता की सेवा को सर्वोपरि मानते थे ।

4. प्रिय० चतुर्थ अंक, पृ० 135, व्या० पं० रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौ० अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, प्र० सं० वि० सं० 2035.

सास -

उदयन की माता । सास । का वासवदत्ता सागरिका, पद्मावती के प्रति व्यवहार का वर्णन भास व हर्ष के उदयन रूपकों मे नहीं है परन्तु उनके नाटकों से आभास होता है कि उनका व्यवहार पुत्रीवत रहा होगा । उदयन ने अपनी सास अंगारवती की महानीयता प्रदर्शित करते हुए कहा है कि यद्यपि हमने उनकी कन्या का अपहरण आदि अनेक अक्षम्य अपराध किये हैं परन्तु हम अपराधियों पर से भी उन्होनें अपना प्रेम नहीं भुलाया । यथा[1] –

वाक्यमेतत् प्रियतरं राज्यलाभशतादपि ।
अपराद्धेष्वपि स्नेहो यदस्मासु न विस्मृतः ।।

भातृजाया -

पोषण करने वाली या संरक्षिका । चाहे वह भाभी, चाची, ताई आदि हो । को जन्म देने वाली माँ से भी अधिक चिन्ता रहती है । उसे वह बेटी के समान मानने लगती है । कन्या के सयानी होने पर उसके परिवार वालों को हाथ पीले करने की चिन्ता बहुत अधिक रहती है ।

नाटक के प्रारम्भ में ही सूत्रधार नटी से कहता है कि वेशभूषा आदि धारण कर लो क्यों कि रत्नावली नाटिका के अभिनय को देखने की उत्कण्ठा हो रही है । इस पर नटी कहती है कि – । निःश्वस्य सोद्वेगम् । आर्यपुत्र, निश्चिन्त इदानीमसि त्वं तत्कस्मान्न नृत्यसि । मम पुनर्मन्दभाग्या एकैव दुहिता । सापि त्वया कस्मिन्नपि देशान्तरे दत्ता । कथमेवं दूरदेशस्थितेन जामात्रा सहास्याः पाणिग्रहणं भविष्यतीत्यनया चिन्तयात्मापि मे न प्रतिभाति । किं पुनर्नर्तितव्यम् ।[2]

जब वासवदत्ता आग विषयक कोलाहल को सुनती है तो सहायता के लिए महाराज को पुकारती है कि बचाइये । राजा कहते हैं महारानी आश्वस्त हो ।

---

1. स्वप्नवासवदत्तम्, 6/12, पृ0 95, टीका0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0 ।
2. रत्ना0, प्रथम अंक, पृ0 8, टीका0 पं0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0, वाराणसी ।

पर वह कहती है – आर्यपुत्र, मयात्मनः कृते न भणितम् । एषा खलु मया निर्घणयेह निगडेन संयमिता सागरिका विपद्यते । तत्तां परित्रायतामार्यपुत्रः ।[1]

सागरिका वसुभूति को देखकर पहचान जाती है तथा इस प्रकार कहती है – हा तात, हा अम्ब, कुत्रासि । देहि मे प्रतिवचनम् ।[2]

जिस प्रकार बेटी को ससुराल विदा करते हुए माँ उसके पति से कहती है कि आप इसे इतना प्यार देना कि यह अपने घर को भूल जाये, उसी प्रकार से वासवदत्ता भी अन्त में सागरिका को अपने आभूषणों व वस्त्रों से सजा कर ऐसा कहती है – आर्यपुत्र, दूरे खल्वेतस्याः पितृकुलम् । तत्तथा कुरू यथा न बन्धुजनं स्मरति ।[3]

बहिन -

परिवार में बहिन व ननद का स्थान समान होता है । वासवदत्ता के मन में पद्मावती को देखकर स्नेह उमड़ने लगता है – राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते ।[4]

सागरिका जब वसुभूति को पहचान जाती है तथा हाय माता जी, हाय पिता जी, इस प्रकार विलाप करती हुई मूर्च्छित हो जाती है तो वासवदत्ता पहचान जाती है कि यह मेरी बहन रत्नावली है तथा वासवदत्ता सागरिका को पास बुलाकर – । रत्नावलीमालिंग्य । भगिनि, समाश्वसिहि, समाश्वसिहि । इस पर वसुभूति कहते हैं – आयुष्मति, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।[5] नन्वियं ज्यायसी ते भगिनी दुःखमास्ते । तत्परिष्वजस्वैनाम् ।

---

1. रत्ना0, चतुर्थ अंक, पृ0 156, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, वाराणसी, द्वि0 सं0 1976.
2. रत्ना0, चतुर्थ अंक, पृ0 214, ले0 डा0 बाबूराम पाण्डेय, प्र0 सं0 वाराणसी ।

3. रत्ना0, चतुर्थ अंक, पृ0 221, ले0 डा0 बाबूराम पाण्डेय, प्र0 सं0 वाराणसी, वाराणसी, 1980.

कु0 सं0 8/16 – आप इसे इतना अधिक प्यार दें, जिससे यह सुखी रहे ।

तु0 – "तं यथात्मसदृशं वरं वधूरन्वरज्यत परस्तथैव ताम् ।

सागरादनपगा हि जाह्ववी सोऽपि तन्मुखरसेक वृत्तिभाक् ।।"

4. स्वप्नवासवदत्तम्, प्र0 अंक, पृ0 8, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0 1972.

5. रत्ना0, चतुर्थ अंक, पृ0 164, टी0डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0सं0 वाराणसी ।

सागरिका वासवदत्ता को देखकर सोचती है कि महारानी के प्रति अपराध[1] करने वाली मैं । इनको । मुख दिखलाने में समर्थ नहीं हूँ ।

वासवदत्ता आँखों में आँसू भरे हुए दोनों बाहें । फैलाकर । आ, आ, अतिनिष्ठुर अब भी तो स्नेह दिखलाओ । वासवदत्ता कहती हे कि मंत्री यौगन्धरायण ने मुझे दुर्जन बनाये रखा । जानते हुए भी जिस यौगन्धरायण के द्वारा मुझसे नहीं बतलाया गया । इतना ही नहीं अन्त में वासवदत्ता – । हस्तं प्रसार्य । एहि, रत्नावलि, एहि । एतावदपि तावन्मे भगिनिकानुरूपं भवतु । इति । रत्नावली स्वैराभरणैरलंकृत्य हस्ते गृहीत्वा राजानमुपसृत्य । आर्यपुत्र प्रतीच्छैताम् ।[2]

राजा – । सपरितोषं हस्तौ प्रसार्य को देव्याः प्रसादो न बहुमन्यते ।

। राजा उदयन सागरिका के लिए कैसे मरा था, इसे पाठक बहुत बार देख चुके हैं किन्तु वह इस समय यह प्रदर्शित कर रहा है कि रत्नावली के प्रति तो मेरी कोई खास अभिलाषा न थी किन्तु महारानी जी कृपापूर्वक दे रही हैं, अतः मैं इसे सहर्ष गृहण कर रहा हूँ । मेरी यह प्रसन्नता महारानी की कृपा को देख कर है, न कि रत्नावली को पाकर ।

अन्त में मूर्च्छितावस्था में पड़ी हुई प्रियदर्शिका को देखकर वासवदध्त्ता कहती है – । सास्रम । प्रियदर्शने, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । पश्यैष महाराजस्तिष्ठति । कथं वेदनाप्यस्या नष्टा । किमिदानीं मयापराद्धमजानव्या, येन कुपिता नालसि । तत्प्रसीद प्रसीद । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ । न खलु पुनरपरात्स्यामि । । उर्ध्वमवलोक्य । हा दैवहतक, किम्दिानीं मयापकृतम् येनैतदवस्थां गता मे भगिन्यादर्शिता ।[3]

---

1. रत्ना0, चतुर्थ अंक, पृ0 162, ले0 डा0 बैजनाथ, प्र0 सं0 वाराणसी – सागरिका ने महारानी वासवदत्ता के पति को अपने सौन्दर्य जाल में फंसाया था, अपने प्रति आकृष्ट किया था । उन्हें वासवदत्ता के प्रति उदासीन होने की मानसिक प्रेरणा दी थी । यही उसका वासवदत्ता के प्रति अपराध था ।
2. रत्ना0, चतुर्थ अंक, पृ0 168, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी ।
3. प्रिय0, चतुर्थ अंक, पृ0 101, टीका0 पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी, द्वि0 सं0 1976.

प्रियदर्शिका की मूर्च्छा दूर होने पर वासवदत्ता कहती है – आर्यपुत्र, दिष्टया प्रत्युज्जीविता मे भगिनी ।[1] विष का वेग शान्त हो जाने पर वासवदत्ता कहती है – । सास्रम । एह्यलीकशीले । इदानीमपि ते भगिनिस्नेहं दर्शय । कण्ठे गृहीत्वा । इदानीं समाश्वत्तास्मि ।[2]

वासवदत्ता से विदूषक कहता है कि आप तो बहन को गले लगाकर वैद्य की फीस भी भूल गयी हैं । इस पर वह कहती है कि मैं फ़ीस नहीं भूली हूँ अर्थात् वह अपनी बहन के लिए इतना त्याग कर देती है कि – "राज्ञो हस्तं बलादाकृष्य प्रियदर्शिकामर्पयति ।"[3]

दासी –

यह महारानी की सेवा सुश्रूषा तथा अन्य कार्य करने के लिए रखी जाती थी । पद्मावती की दासी कुंजरिका थी। वह द्वितीय अंक में पद्मावती को ढूंढती फिरती है[4] – कुञ्जरिके![5] कुञ्जरिके ! कुत्र[6] कुत्र भतृदारिका[7] पद्मावती ? किं भणसि, एषा भर्तृदारिंका माध्वीलतामण्डपस्य पार्श्वतः कन्दुकेन क्रीडतीति ? यावद भर्तृदारिकामुपसर्पामि।

---

1. प्रिय0 चतुर्थ अंक, पृ0 103, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी, द्वि0 सं0।
2. प्रिय0 चतुर्थ अंक, पृ0 105, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी, द्वि0 सं0।
3. प्रिय0 चतुर्थ अंक, पृ0 106, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी, द्वि0 सं0।
4. स्वप्नवासवदत्तम्, द्वि0 अंक, पृ0 26, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0 सं0 1972.
5. कुंजरिका किसी दासी का नाम है जो पद्मावती की प्रिय दासियों में से है और ऐसा प्रतीत होता है कि इसे पद्मावती की प्रत्येक गतिविधियों का पूर्ण पता रहता है, संवाद में नाम की पुनरावृत्ति शीघ्रता को द्योतित करती है ।

6. इससे पद्मावती के दर्शन की उत्कण्ठा व्यक्त होती है, ऐसा आभास होता है कि दासी पद्मावती को कोई अत्यन्त शुभ समाचार सुनाने के लिए उत्कण्ठित है ।

7. क्या कहती हो ? यह दासी स्वयं ही कहती है यह वाक्य प्रश्न की उत्तर प्राप्ति की सूचना देता है । संवाद में एषा .... से प्रारम्भ होने वाला वाक्य ही उत्तर के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इस प्रक्रिया को आकाश भाषित कहते है इसका लक्षण कि

"व्रवीषिति यन्नाट्ये बिनापात्रं प्रयुज्यते ।

श्रुत्वेवा नुक्तकप्यर्थ तस्यादाकाश भाषितम।"

अगर जरा भी कार्य करना होता है तो रानी अपनी दासी को ही आज्ञा देती है जैसा कि दासी वासदत्ता से कहती है 1. अस्माकं भट्टिनी भणति महाकुलप्रसूता 2. स्निग्धा निपुणेति इमा तावन्न कौतुकमालिकां[3] गुम्फत्वार्या ।

यदि किसी भी राजा या महारानी को किसी भी प्रकार की पीड़ा या दुःख होता है तो उसके सेवक सेविकायें तुरन्त उस उपचार के विषय में सोचने लगते हैं । पंचम अंक में पद्मावती की सिर वेदना को जानकर उसकी दासी मधुकरिका और पद्मिनिका चिन्तित होने लगती है । तभी विदूषक आ जाता है तो पद्मिनिका उससे कहती है कि आप शीघ्र जाइये और महाराज से इस विषय में बतायें , तब तक मैं सिर वेदना का लेप तैयार कर रही हूँ । विदूषक महाराज से पद्मावती की सिर वेदना की बात कह देता है । राजा दुःख के साथ कहते हैं –

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां

लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः ।

पूर्वाभिधातसतरूजोऽप्यनुभूतदुःखः

पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ।।[4]

1. स्वप्नवासवदत्तम् , तृतीय अंक, पृ040, टीका गणेश दत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, अध्यक्ष , साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, प्र0सं0 1968.
2. महितिकुलेप्रसूताउच्चेवंशे गृहीत जन्मा कुलीनेति यावत्। महान अर्थात् उच्च कुल में पैदा हुई। मनुष्य का स्वरूप एवं आचार विचार सहज ही उसके वंश का अनुमान करा देता है । वासवदत्ता के भी समस्त आचरण मनोहारी हैं । उसके उच्च कुल के होने में सन्देह नहीं है ।
3. "सौभाग्यसूचकां मंगलस्रजम् ।" स्त्री के सोहाग को सूचित करने वाली माला ।
आज समय की क्रूर गति ने इस परम्परा को नष्ट कर दिया है । सम्भव है आज की जयमाल प्रकिया इसी परम्परा का परिवर्तित रूप हो ।

4. स्वप्नवासवस्तम् 5/2, पृ0 85 टीका0 जयपाल विद्यालंकार मागैलालं बनारसी दास, वाराणसी द्वि0 सं0 1972.

5. प्राथमिक आघात से पीड़ित । रूज् +क्विप् रूज् – रोग, पीड़ा, रूजा– सह वर्तमान सरूअपूर्वश्चासौभिघातः पूर्वाभिघातः तेन सरूक् इति पूर्वाभिघातसरूक् तेन् ।

राजा यहाँ वासदत्ता को इतना प्यार करता है, इसका पता चलता है, उसे यह संदेह है कि कहीं पद्मावती ही नष्ट न हो जाय, इसकी पुष्टि " अति– स्नेह पापशंङ्की " इस तथ्य से स्पष्टता हो जाती हैं।"

चेटियाँ या सेविकायें अपने स्वामी का सदैव हित चिन्तन करती थी । वे ईमानदार और कर्तव्यपरायण होती थी

विश्वास –घात नहीं करती थी । प्राण की बाजी लगाकर भी नमक अदा करने की कोशिश करती थीं । दृढ़वर्मा के ऊपर कलिंगराज द्वारा आक्रमण करने तथा बन्दी बनाने के बाद जब दृढ़वर्मा के कंचुकी असहाय प्रियदर्शिका को देता है तो चुपके से उसे वत्सराज तक पहुँचाने के लिए सावधानीपूर्वक चल पड़ा[1]।

सेविकायें अपने स्वामी के समक्ष जाने में सदैव संकोच और भय का अनुभव करती थीं ।

इनको हञ्जे और नामों से पुकारा जाता था । यथा[2] – हञ्जे[3] मदनिके चिरं खल्वाभयां क्रीडितम् । तदेहि । निवेदयावस्तावत् भत्र्यार्ः संदेशं महाराजस्य । आः[4] दास्याः[5] पुत्रि, किं देव्याज्ञापयति ।

अगर कोई कार्य लापरवाही से करतीं हैं तो महारानी उसे डांटती भी हैं । जैसा कि वासवदत्ता इस प्रकार कहती हैं[6] – । निरूप्यात्मगतम् । अहो प्रमादः परिजनस्य । यस्यैव दर्शनपाथात्प्रयत्नेन रक्ष्यते तस्यैव दृष्टिगोचरे पतिता भवेत् । । भवतु । एवं तावद् भणिष्यामि। । प्रकाशम् । हज्जे सागरिके,[7] कस्मात्वमद्य मदनमहोदत्सवे पराधीने परिजने सागरिका मुज्झित्येहागता । तत्तत्रैव लघु गच्छ । एतदपि सर्व पूजोपकरणं कांचनमालाया हस्ते समर्पय ।

1. प्रिय0, प्र0 अंक, टीका0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी, चौ0 अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी।
2. प्रिय0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौ0 अमर भारती प्रका0, प्र0 सं0, वि0 सं0 2035
3. रत्ना0, प्र0 अंक, पृ0 25, टीका, डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी ।

   यह सम्बोधन वाचक अव्यय है । इसका प्रयोग नीच स्त्री पात्रों के लिए होता है । कभी–कभी सखियों के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है ।
4. पत्नी पति को आज्ञा दे रही है इसलिए निर्भत्सना कर रहे हैं । "आः" कोपवाचक अवयय है ।" आस्तु स्यात्कोपपीछयोः ।"
5. इसका शाब्दिक अर्थ है सेविका या गुलाम स्त्री की लड़की । किन्तु इसका प्रयोग गाली देने के लिए किया जाता है, जिसका अर्थ है – हराम की बेटी ।
6. रत्ना0, प्र0 अंक, पृ0 32, ले0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी ।
7. सागरिका जिसका असली नाम रत्नावली था, अनुपम सुन्दरी थी । यही कारण है कि वासवदत्ता सर्वदा यह प्रयत्न करती थी कि वह राजा के सामने न आने पाये अन्यथा सागरिका के सौन्दर्य जाल में फँसकर राजा वासवदत्ता को प्यार करना कम कर दे ।

निपुणिका महारानी वासवदत्ता की दासी है अतः वह राजा उदयन को समाचार देने के लिए वासवदत्ता के पास जाती है[1] – । सविस्मयम् । आश्चर्यम् , आश्चर्यम् । अनन्यसदृशः प्रभावो मन्ये देवतायाः । उपलब्धः खलु मया भर्तुर्वृत्तान्तः । तद्गत्वा भर्त्र्यै निवेदयिष्यामि ।

निपुणिका जाने लगती है तभी सुसंगता अपनी प्रिय सखी के विषय में पूछती है कि तुम यहाँ खड़ी मेरी उपेक्षा क्यों कर रही हो । इस पर वह कहती है – कथं सुसंगता[2] ! हला सुसंगते, सुष्ठु त्वया ज्ञातम् । एतत्खलु मम विस्मयस्य कारणम् । अद्य[3] किल भर्ता श्री पर्वतादागतस्य[4] श्री खण्डदास नामधेयस्य धार्मिकस्य सकाशादकाल कुसुमसञ्जनन दोहद[5] शिक्षित्वात्मनः परिगृहीतां नवमालिकां कुसुमसमृद्धि शोभितां करिष्यतीति । तत्रैतद्वृत्तान्तं ज्ञातुं देव्या प्रेषितास्मि । त्वं पुनः कुत्र प्रस्थिता?

महारानी की प्रिय दासी कांचनमाला थी अतः जब नाटक के अभिनय होने के पूर्व सुसंगता ने उससे कहा कि मैं कांचनमाला का वेशधारण करके यहाँ आऊँगी।

---

1. रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ0 55, ले0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, प्र0 सं0 1980
2. "कथमत्रसम्भ्रमे कथं" हर्षे च गर्हियां प्रकारार्थे च संग्रमे मेदिनी ।
3. अ0 को0 – किलेतिवातार्याम् – "वार्ता सम्भाव्ययोः किल ।"
4. दे0 रत्ना0 काले, पृ0 35 – "श्री पर्वत हैदराबाद से 120 मील दूर कृष्णा नदी के किनारे अवस्थित है।"
5. दे0 30 20 च0 1–10–11– "सामान्यतः गर्भवती स्त्री की इच्छा को देहद कहा जाता है । "अभिलाषे तथा गर्भे हेमाः

   किन्तु यहाँ "दोहद" शब्द पुष्प को विकसित करने की विशेष क्रिया के रूप में प्रयुक्त है ।

अद्य[1] खलु देव्या चित्रफलकवृत्तान्तशंकतया सागरिकां रक्षितुं मम हस्ते समर्पयन्त्या यन्नेपथ्यं मे प्रसादीकृतं तेनैव विरचितभट्टिनीवेषां सागरिका गृहीत्वाऽहमपि काञ्चनमाला वेषाधारिणी[2] भूत्वा प्रदोष इहागमिष्यामि । त्वमपीहैव चित्रशालिका द्वारे मां प्रतिपालयिष्यसि । ततो माधवीलता मण्डपे तया सह भर्तुः समागमो भविष्यति इति ।"

इस वृतान्त को जानकर मदनिका को सुसंगता के ऊपर बड़ा क्रोध आता है जो इस तरह से परिजनों पर अत्यन्त स्नेह करने वाली महारानी को ठग रही है । पहले सजने सवंरने के लिए महारानियॉ अपने जेवर उस समय दे दिया करतीं थीं । जब उन्हें कहीं जाना होता था। नाटक आदि में भाग लेने के लिए । वासवदत्ता ने अपने दासी से इस प्रकार कहा[3] – मनोरमे, त्वमपि नलगिरिग्रहण परितुष्टेन तातेनार्यपुत्राय दत्तान्याभरणानीन्दीवरिका सकाशाद्गृहीत्वा नेपथ्यभूमि गत्वात्मानं मण्डय, येन सुसदृशी दृश्यसे महाराजस्य ।

---

1. रत्ना0 तृतीय अंक, पृ0 96, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0 सं0 वाराणसी ।
2. कांचनमाला महारानी की प्रिय दासी थी । वे उसी को साथ लेकर बाहर निकला करतीं थीं । यही कारण है कि सुसंगता स्वयं काञ्चनमाला का वेश धारण करने की बात कह रही है।
3. प्रिय0, तृतीय अंक, पृ0 54, टीका0 पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, द्वि0 सं0 ।

समीक्षा –

सामाजिक जीवन में नारी के विभिन्न रूपों की गतिविधियों का चित्रण भास व हर्ष के रूपकों में किया गया है । कन्या, सहचारिणी तथा युवती के रूप में नारी के सामाजिक जीवन के वृतान्त में भास तथा हर्ष दोनों ने लगभग समान विद्वता का परिचय दिया है । विवाह संस्कार, वधू वेशभूषा, दाम्पत्य संस्कार के वर्णन में भास वधू वेशभूषा तथ दाम्पत्य–जीवन के वर्णन में हर्ष तुलनात्मक दृष्टि में अधिक प्रतीत होते हैं । अन्य नारी के विविध सामाजिक रूपों जैसे मॉ, बहन, भातृजाया, सखी, दासियों आदि का सहज व स्वाभाविक चित्रण भास व हर्ष ने यद्यपि समनिपुणता से किया है परन्तु कहीं पर भास और कही पर हर्ष अग्रणी हैं ।

तृतीय अध्याय

नाटकों में सांस्कृतिक पृष्ठभूति पर नारी पात्रों की भूमिका

तृतीय अध्याय

नाटकों में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर नारी पात्रों की भूमिका -

किसी भी राष्ट्र अथवा समाज की सांस्कृतिक समुपलब्धियों में आचार–विचार, विविध धर्मिक क्रियायें अध्यात्म– दर्शन, आमोद– प्रमोद, संस्कार, समारोह आदि विशेष रूप से उल्लेखनरय हैं । मानव जीवन की भूषण – भूत भव्य भावपूर्ण क्रियाओं को सांस्कृतिक , परिवेश में सम्पन्न कराने में साधना सम्पन्न करके , साथ में नारी की भी अपरिहार्य भूमिका आदि काल से रही है । इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए भास तथा हर्ष ने अपनीं नाट्य कृतियों में नारी पात्रों की सांस्कृतिक भूमिका को वर्ण्य विषय के साथ प्रस्तुत किया है जिसका संक्षेप में यहॉ तुलनात्मक विवेचन किया जा रहा है ।

1. यज्ञादि विविध धार्मिक क्रियायें एवं नारी पात्र -

दैनि[illegible] [illegible]वन में भास व हर्ष – काब्य में वर्णित नारी की प्रवृत्ति विविध धर्मिक क्रियाओं में परिल[illegible] होतीं हैं । नारियॉ यम – नियमों को ग्रहण करती हुई संयम पूर्वक विविध व्रतों का सीहेश्य अनुष्ठान किया करतीं थीं । हमारे हिन्दू समाज में प्राचीनकाल से धर्म का एक अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान रहा है । लोग धार्मिक स्थलों पर जातें हैं तथा अनेक विधि – विधान के अनुसार इन क्रियाओं व अनुष्ठानों पूरा करतें हैं । संस्कृत व हिन्दी के नाटककारों ने तत्कालीन धार्मिक, सांस्कृतिक क्रियाओं का उल्लेख अपने नाटकों, कहानियों , कविताओं , श्लोकों आदि में किया है ।

महाकवि भास ने तत्कालीन राजाओं के चरित्र की एक झांकी प्रस्तुत की है । राज – परिवार के लोग भी उस समय आश्रम मर्यादा सतर्कता से पालन किया करते थे । वह सांसारिक सुखों को लात मारकर वृद्धावस्था में आश्रम में जाकर तपश्चर्या का जीवन व्यतीत करते थे। यथा–

[1]तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्

स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि ।

धर्मप्रिया[2] नृपसुता न हि धर्म पीडा

मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ।।

प्राचीन काल में दानशीलता का सुन्दर चित्रण मिलता था जैसा कि पद्मावती चाहती है कि तपस्वीजन निःशंक होकर अपनीं आवश्यकताओं को उनके सामने रखें, वह जो चाहें सो मांगें । पद्मावती तपस्वियों को यथेच्छ दान देकर ही अपने को कृतार्थ समझती है । पद्मावती ने कंचुकी द्वारा दान की उक्त घोषणा कराई । यथा –[3]

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं

दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद्[4] भवेत् ।

आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया

यद् यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम् ।।

आश्रमवासियों की आवश्यताओं का स्वाभाविक निर्देश है कि आश्रमवासी जलादि रखने के लिए कमण्डलु का प्रयोग करते हैं । उन्हें वस्त्रों की भी आवश्यकता होती है । आश्रम में ब्रह्मचारी वेदाध्ययन किया करते हैं और वेदाध्ययन के पश्चात दीक्षान्त होने पर उन्हें गुरू को गुरू–दक्षिणा भी देनी होती है । इस भाँति स्वाभाविक रूप से आश्रमवासियों की ये आवश्यकतायें हैं । पद्मावती उक्त सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कृत संकल्प है ।

महाकवि भास ने यहाँ कंचुकी द्वारा गुरू दक्षिणा का निर्देश दिया है । यह भारत की एक परम पुनीत परम्परा थी । विद्यार्थी आश्रमों में रहकर गुरू के चरणों में शिक्षा प्राप्त किया करते थे।

---

1. स्वप्न0 1/6, पृ0 16, व्याख्या0 आचार्य श्रीशेषराजशर्मा रेग्मी, चौखम्भा सुरभारती प्रका0, वाराणसी, 2001.

2. स्वप्न0 गणेशदत्त शर्मा, प्र0 11, प्र0 सं0 1968 – "पद्मावती के लिए धर्मप्रिया विशेषण उसकी धर्मप्रियता को द्योतित करता है । तपस्वियों के कार्य में विघ्न डालना उस समय पाप समझा जाता था । समाज में तपस्वियों को सम्मान प्राप्त था ।

3. स्वप्न0 1/8, पृ0 23, व्याख्या आचार्य श्री शेषराज शर्मा रेग्मी, चौ0 सुरभारती, प्रका0 वाराणसी, 2001.

4. महर्षि मनु ने कहा है – "स्नास्यंस्तु – गुराणांज्ञप्तः शक्तिया गुर्वर्थमाहरेत् ।"

शिक्षा की समाप्ति के बाद शिष्य अपनी श्रद्धा एवं सामर्थ्य के अनुसार गुरूदक्षिणा देते थे । यदि शिष्य के पास कुछ भी नहीं होता थ तो वह कम से कम एक नारियल या यज्ञोपवीत का जोड़ा गुरू को अवश्य ही समर्पित कर देता था, परन्तु इस परम्परा का निर्वाह हर हालत में था ।

हर्ष के नाटक में वासवदत्ता और काञ्चनमाला हाथ में पूजा की सामग्री सहित तथा यथायोग्य परिजन वर्ग प्रवेश करते हैं । यथा[1] –

कुसुमसुकुमारमूर्तिर्दधती नियमेन तनुतरं मध्यम् ।

आभाति मकरकेतोः पार्श्वस्था चापयष्टिरिव ।।

हर्ष ने नारियों के व्रत का मुख्य अंग उपवास का उल्लेख किया है जिसे स्वल्पाहार के द्वारा निश्चित समय में समाप्त किया जाता था । नायक ने नायिका वासवदत्ता को क्षीण कटि वाला बताया है क्यों कि कामदेव की उपासना के लिये उसने नियम, उपवास, व्रत धारण कर लिया है । जैसा कि उसको देखकर राजा कहते हैं [2] –

प्रत्यग्रमज्जनविशेष विविक्तकान्तिः

कौसुम्भरागरूचिरस्फुरदंशुकान्ता ।

विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती

बाल प्रवाल विटपिप्रभवा लतेव ।।

अपि च[3] –

स्पृष्टस्त्वयैष दयिते स्मरपूजा व्यापृतेन हस्तेन ।

उद्भिन्नापरमृदुतर किसलय इव लक्ष्यतेऽशोकः ।।

काञ्चनमाला वासवदत्ता से कहती हैं कि कामिनी अपने हाथ से कुंकुम, चन्दन तथा वस्त्रादि से कामदेव की पूजा करो । वासवदत्ता कामदेव की पूजा करती है।

---

1. रत्ना0 1/19, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, वाराणसी, द्वि0 सं0 1976.

2. रत्ना0 1/20, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, वाराणसी, द्वि0 सं0 1976.

3. रत्ना0 1/21, पृ0 46, व्या0 डा0 राजेश्वर (राजू) शास्त्री, मुसलगॉवकर, प्रका0 चौ0 संस्कृत संस्थान वाराणसी, प्र0 सं0 वि0 सं0 2054.

तुलना – भावप्रकाशः "वासोऽङ्गरागमाल्यावैः हृधैर्यः पेयसीं रहः।

प्रसादयन्प्रीणयति दयितः सोऽभिव्वीयते।

जिस पर राजा उसकी तुलना लता के समान उत्तम कुल से करता है । यथा[1] –

अनंगोऽयमनंगत्वमद्य निन्दिष्यति ध्रुवम् ।

यदनेन न संप्राप्तः पाणिस्पर्शो[2]त्सवस्तव ।।

सागरिका राजा उदयन को ओट में छिपकर देखती है तो वह मान ही मन कह उठती है, भगवान कामदेव तुम्हे नमस्कार है, मेरे लिये आपका दर्शन सफल हो । यह कहकर प्रणाम करती है। जो देखना था देख लिया यहॉ किस प्रकार काम पूजा होती है । अतः जब तक मुझे कोई न देख ले उससे पूर्व ही यहॉ से चली जाऊॅगी । ऐसा कहकर कुछ पग चलती है ।

प्राचीन काल में धार्मिक आस्था के साथ–साथ वह ब्राम्हणों आदि के प्रति श्रद्धा का भाव रखती थी । जैसा कि विदूषक राजा से कहता है कि – अर्चति खलु देवी ब्राम्हण[3] । वासवदत्ता की आज्ञानुसार चेटी महर्षि अगस्त्य की पूजा के लिये, फूल चुनने के लिये जाती है और इस कार्य को उसने स्वयं न करके इन्दीवरिका को आज्ञा दी । यथा[4] –

चेटी – आज्ञप्तास्मि देव्या वासवदत्तया – 'हञ्जे इन्दीवरिके, अद्य मया अगस्त्यमहर्षयऽर्घ्य दातव्यम् । तद्गच्छ त्वम् । शेफालिका कुसुममालां लघु गृहीत्वा गच्छ । एषाप्यारण्यका[5] धारागृहोद्यान दीर्घिकाया यावदेव विकसितानि

---

1. रत्ना0 1/22, व्या0 डा0 राजेश्वर (राजू) शास्त्री मुसलगॉवकर, प्रका0 चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,प्र0 सं0, वि0सं0 2054, पृ0 47.
2. उ0रा0च0 3/11, पृ0 25, 'आश्चयोतनं न हरिचन्दनपल्लवानां

   निष्पीडितेन्दु कर कन्दलजो नु सेकः ।

   आतप्त जीवित पुनः परितर्पणोऽयं संजीवनौषधि रसो ह्रदि न प्रसक्तः ।।
3. प्रियदर्शिका द्वि0 अंक, पृ0 21, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिर, प्रका0 चौ0 विद्याभवन वाराणसी ।
4. प्रिय0 द्वि0 अंक, पृ0 25, व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी, प्र0 सं0 2035.
5. प्रिय0, द्वि0 अंक, पृ0 25, व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी, प्र0 सं0 2035.

आरण्यका प्रस्तुत नाटिका की नायिका प्रियदर्शिका का दूसरा नाम है। आरण्यका के स्थान पर कतिपय विद्वान "आरणियका" पाठ शुद्ध मानते हैं । उनके अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है – "आरण्येमवा आरणियका"

"आरण्यान्मनुस्ये" । इस सूत्र से वुञ् । अक् ततः टाप् प्रत्ययस्थात्कात् इस सूत्र से इत्व प्रत्यय ।

कमलानि नास्ताभिलाषिणा सूर्येण मुकुलाय्यन्ते तावदेव लघ्ववचित्यागच्छतु इति । एषा तपस्विनी तां दीर्घिकां न जानाति । तद्गृहीत्वा तां गमिष्यामि (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) इत इत आरण्यके एहि।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि भास तथा हर्ष के नारी पात्र विविध धार्मिक क्रियाओं, व्रत, उपवास, यज्ञादि के पालन में पर्याप्त साम्य रखते हैं ।

2– सांस्कृतिक समारोह तथा नारी –

समारोह किसी भी समाज अथवा राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्कर्ष के द्योतक होते हैं । प्राचीनकाल से मानव उत्सव प्रिय रहा है, इस तथ्य को भास व हर्ष ने भी पुष्ट किया है । इन आल्हादकारी विविध सांस्कृतिक उत्सवों या समारोहों के स्वरूप निर्धारण एवं प्रचलन में पुरूषों के साथ नारियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है जिसे अधोलिखित प्रमुख समारोहों के विवेचन से पुष्ट किया जा रहा है ।

पुत्र जन्मोत्सव –

जन्मोत्सव के अवसर पर नर–नारियों द्वारा आमोद–प्रमोद पूर्वक उत्सव मनाया जाता था जिनमें वारांगनाओं का नृत्य गीत होता था । मंगल वाद्य बजते थे तथा पुत्र जन्म के परमानन्द में बन्दियों को कारागार से मुक्त कर दिया जाता था । आज भी स्त्रियॉ शिशु के वर्षगॉठ उत्सव को पुत्र जन्मोत्सव रूप में मांगलिक गीतों ढोलक वाद्यों के साथ मिलजुल कर मनाती हैं । हर्ष व भास ने पुत्र व पुत्री के जन्मोत्सव का वर्णन नहीं किया है ।

विवाहोत्सव –

भास तथा हर्ष के नाटकों में विवाहोत्सव का वर्णन किया गया है । विवाहोत्सव की तैयारी तथा सजावट पर्याप्त रूप से गृह तथ नगर की होती थी । इन्द्र धनुष सदृश रंग–बिरंगे तोरण तथा पताकाओं से नगर को सुसज्जित किया जाता था ।

सुर सुन्दरियाँ अन्य सभी कार्यो को छोड़कर वर–कन्या को देखने के लिये अट्टालिकाओं के झरोखों के पास आ जाती थीं । देखने की उत्सुकता और व्यग्रता उन्हें इतनी प्रबल रहती थी कि किसी का केशपाश खुल जाता था तो उसे बांधने का भी ध्यान नहीं रहता था, खुले केशों से गुँथे हुए पुष्प भी नीचे बिखर जाते थे । यदि कोई रमणी अपने पैरों में आलक्तक लगवा रहीं होती थी तो वह भी पैर खींच गवाक्ष जाल की ओर दौड़ जाती थी जिससे वहाँ तक लाल पैरों के चिन्ह अंकित हो जाते थे । यदि कोई स्त्री अपनी ऑखों में अंजन लगा रही होती थी तो बिना दूसरे नेत्र में अंजन लगाये सलाका लिये अधीर होकर दौड़ पड़ती थी । वर – कन्या को देखने की हड़बड़ी में उसका नीवीबन्ध खुल जाता था । अधोवस्त्र को हाथ से थामें झरोखों के पास खड़ी हो जाती थीं जिससे आभूषणों की द्युति नाभि तक पहुँच जाती थी । यदि कोई बाला मणियों की करधनी गूँथ रही होती थी तथा एक छोर पैर के अँगूठे से बांध रखा होता था तो अर्द्धपरायी होने पर अधीरतापूर्वक कन्या को देखने की व्यग्रता में मणियॉ बिखर जाती थीं और केवल सूत पैर में बँधा रह जाता था । इस प्रकार वर–कन्या झरोखों पर बैठी पुरवासियों के द्वारा देखे जाते हुए, विवाहोत्सव स्थल पर पहुँचते थे जहाँ उनका विधिवत विवाह संस्कार सम्पन्न होता था ।

भास ने अपने नाटक में विवाहोत्सव का अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन किया है । विवाह के समय पद्मावती का अलंकरण पुष्पों के द्वारा किया जा रहा है यथा[1] – कौतुकम् विवाहस्य माल्यं वधूवरयोरनिष्ट निवारणार्थमौष धा गुम्फनं समुदचार आसीतपुरा इति ज्ञायते ।

---

1. स्वप्न0, तृतीय अंक, पृ0 35, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, द्वि0 सं0 1972.

कौमुदी महोत्सव -

शरद पूर्णिमा को सामान्यतः कौमुदी महोत्सव मनाया जाता था जिसको वात्स्यायन ने "कौमुदीजागरः" तथा भोज ने "कौमुदीप्रचार" कहा है । भास व हर्ष ने अपने नाटकों में कहीं – कहीं सूक्ष्म वर्णन किया है । इन नाटकों में इसका वर्णन न के बराबर हुआ है ।

बसन्तोत्सव -

बसन्त ऋतु में स्त्री–पुरुषों द्वारा यह उत्सव धूमधाम से कई दिनों तक मनाया जाता था जिनमें बौर आये आम के वृक्ष पर पडे. झूलों पर स्त्रियॉ झूला करती थीं । कभी–कभी विशिष्ट विषाद जनक घटना के कारण इस उत्सव को मनाया जाना रोक भी दिया जाता था । इस उत्सव को का वैविध्य अनेक उत्सव क्रीड़ाओं में दृष्टिगत होता है। बसन्त के अवसर पर मधुममास पहले लोगों के हृदय को कोमल बना देता है तत्पश्चात् अवसर प्राप्त करने वाला कामदेव पुष्प बाणों[1] से उनके हृदय को बेधता है[2]। बसन्तोत्सव को सुन्दर चित्रण इस प्रकार है। काम महोत्सव के उपलक्ष्य में किसी स्त्री ने मदिरा का सेवन कर लिया है, बसन्त का समय होने के कारण उसके हृदय में काम केलि कर रहा है। इसलिए वह मतवाली हो गयी तथा विशाल पयोधरों के भार से नम्र हो जा रही हैं फिर कटि प्रदेश के टूटने की चिन्ता को छोड़कर खूब नाच रही है[3]।

---

1. अ0 को0 1/1/12 में उद्रधृत निर्णय सं0 1944, काम के पांच बार– " उन्मादनस्तापनञ्च

 शोषणः स्तम्भनस्तथा ।

 सम्मोहनञ्च कामस्य य चवाणः प्रकीर्तिताः।"

2. रत्ना0 1/15, पृ0 27, व्या0 डां0 राजेश्वर (राजू) शास्त्री मुसलगॉवकर प्रका0 चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी, प्र0 सं0 वि0सं0 2054 –

"इह प्रथमं मधुमासो जनस्य हृदयानि करोति मृदुलानि ।

पश्चाद्विध्यति कामो लब्धप्रसरैः कुसुमबाणैः ।।"

3. रत्ना0 1/16, पृ0 30, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी

स्रस्तः स्रग्दाम शोभां त्यजति विरचितामाकुलः केशपाशः

श्रीवायां नूपुरौ चद्विगुण तरनिमौ क्रन्दतः पायलग्नौ,

व्यस्तः कम्पानुबन्धादनवरतमुरो हन्ति हारोऽयमस्याः

क्रीड़न्त्याः पीडयेव स्तनभर विनमन्मध्यभंगा न पेक्षम् ।।

बसन्त के अवसर पर स्त्रियों ने मदिरा का सेवन कर लिया है उसी का अत्यन्त रमणीय वर्णन इस प्रकार है । यथा[1] –

उद्यदिद्रुम कान्तिभिः किसलयैस्ताम्रां त्विषं बिभ्रतो

भृंगालीविरूतैः कलैरविशद व्याहारलीलाभृतः ।

घूर्णन्तो मलयानिलाहतिचलैः शाखासमूहै र्मुहुः

भ्रान्तिं प्राप्य मधु प्रसंगमधुना मत्ता इवामी द्रुमाः[2] ।।

अर्थात ये वृक्ष मधु के अवसर पर पुष्प रस के कारण उन्माद को प्राप्त् कर, मतवाले की भाँति सुशोभित हो रहे हैं । मदिरापान करने वाला बसन्त के अवसर पर जब मदिरा का सेवन करता है तब उसकी आँखों में लालिमा छा जाती है, मुख अरूणिम हो जाता है अस्पष्ट उच्चारण । प्रलाप, अनियन्त्रित भाषण । करता है, बाहु संचालन करता है और लड़खड़ाता हुआ चलता है । व्यक्ति जैसे अपने अतुल ऐश्वर्य को देखकर मदान्ध हो जाता है, उसी प्रकार विटप भी अपनी पुष्प सम्पत्ति को देखकर मदमत्त हो जाते हैं । बसन्त के आ जाने पर तरूओं में मूँगे के समान अरूणिम कान्ति वाले नूतन पल्लव निकल जाते हैं । ये नूतन पल्लव ऐसे प्रतीत होते है मानों मदमत्त तरू की शराबी आँखें हैं। वृक्षों के पुष्प रस का पान करने के लिए गुँजार करती हुई भ्रमरों की मण्डली दौड़ पड़ती है । भ्रमरों की अस्पष्ट गुंजार की मधुमयी लीला ही मदमस्त तरूओं का प्रलाप है । बड़बड़ाते हुए मद्यप की अस्पष्ट और कौतूहलमयी बातों की भाँति भ्रमरों की गुञ्जार का अर्थ समझ में नहीं आता है । इसलिए कवि ने "अविशद" शब्द का प्रयोग किया है । मन्द–मन्द मलयानल की बाहों में वृक्षों का झूमना मानों उनका बाहु संचालन है अथवा मद्यप की भाँति भ्रमित होना है अथवा लड़खड़ाते हुए चलना है ।

---

1. रत्ना0 1/17, पृ0 37, टीका0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्र0 सं0 1980.

2. अ0को0 1/7/2 – "विद्रुमो रत्नवृक्षेऽपि प्रवालेऽपि पुमानयम्" । मेदिनी ।

"ध्वनौ तु मधुरास्फुटे"

अ0को0 1/6/1 – "व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितः वचनं वयः"

अ0को0 3/3/103– "मधु मद्ये पुष्परते क्षौद्रेऽपि"

कामोत्सव -

इस उत्सव में लोग महीने भर उपवास रखते थे[1] । पति की कुशलता को दुर्गा प्रसन्न करने लिए तथा उसकी प्रणय अनुकूलता के लिए कामदेव का पूजन किया जाता था[2] । ऐसा विश्वास था कि कामदेव के प्रसन्न रहने पर वैवाहिक जीवन प्रेमपूर्ण रहेगा । विघ्नों को दूर करने के लिए महर्षि अगस्त्य को अर्घ्य देने की परम्परा थी[3] ।

सभी वर्गों के लोग उत्सव–प्रिय थे । समय–समय पर पारम्परिक तथा व्रतोत्सव का आयोजन किया जाता था। बसन्तोत्सव के अवसर पर कामदेव के पूजन का भी आयोजन किया गया था । उत्सव में अत्यधिक उल्लास से भाग लेते हुए लोग खूब बजाते, गाते और नाचते थे तथा रत्नावली में होली का पर्व बड़ी ही धूमधाम से मनाये जाने का वर्णन है । अबीर–गुलाल । रंगीन चूर्णो । और सुगन्धित द्रव्यों का खूब प्रयोग किया जाता था । ऐसे अवसरों पर अपने घरों को सजाया जाता था । यह बसन्तोत्सव – मदन महोत्सव के रूप में अत्यन्त लोकप्रिय था[4] । हर्ष के रूपकों का अभिनय भी किसी न किसी महोत्सव के अवसर पर ही हुआ था[5]।

---

1. प्रिय0 चतुर्थ अंक, पृ0 86, चौ0 अमर भारती प्रका0 वाराणसी, प्र0 सं0 2035.

   "मासोपवासं कृत्वा जीवितं धारय । एवं देवी चण्डी प्रसत्स्यति ।"

2. रत्ना0, प्रथम अंक,

3. रत्ना0,द्वि0 अंक व्या0 पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौ0 अमर भारती प्रका0 वाराणसी, पृ024.

   "अद्य मया अगस्त्यमहर्षयऽर्घ्य दातव्यम् ।"

4. रत्ना0, प्रथम अंक । मदन महोत्सव का सविस्तार वर्णन ।

5. प्रियदर्शिका का अभिनय बसन्तोत्सव के अवसर पर, रत्नावली का भी अभिनय बसन्तोत्सव के अवसर पर तथा नागानन्द का अभिनय इन्द्रोत्सव के अवसर पर किया गया था ।

मदन महोत्सव -

बसन्त ऋतु में मनाये जाने वाले इस उत्सव का उल्लेख हर्ष ने रत्नावली नाटिका में "रतोत्सव" नाम से किया है । राजा उदयन की प्रसंशा करते हुए यौगन्धरायण कहता है कि साक्षात् कामदेव के समान वत्सराज प्रतीत हो रहे हैं[1] । यथा–

विश्रान्त विग्रह कथो रतिमाञ्जनस्य

चित्ते वसन्तिवसन्तक एव साक्षात् ।

पर्यत्सुको निजमहोत्सवदर्शनाय

वत्सेश्वरः कुसुमचाप इवाभ्युपैति ।।

मदन महोत्सव को मनाने के लिए लोगों ने इतना गुलाल उड़ाया है कि सम्पूर्ण दिशाओं ने अरूणिम साड़ी पहिन ली है ।

जैसा कि इस श्लोक में अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है –[2]

कीर्णैः पिष्टातकौधैः कृतदिवसमुखैः कुङ्.कुमक्षोदगौरे

हेमालंकारभाभिर्भरनमितशिखैः शेखरैः कैङ्कि.रातैः[3] ।

एषा वेषाभिलक्ष्यस्व विभवविजिताशेष वित्तेशकोशा

कौशाम्बी शातकुम्भद्रवखचितजनेवैकपीता विभाति ।।

अपि च[4]–

धारायन्त्रविमुक्तसन्ततपयः पूरप्लुते सर्वतः

सद्यः सान्द्रविमर्दमकृतकीडे क्षणं प्राङ्गणे ।

उद्दाम प्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारूणैः

सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासैः[5]पुरः कुट्टिमम् ।।

---

1. रत्ना0 1/8. पृ020, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी .

2. रत्ना0 1/10पृ024, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी .

3. भा0 प्रका0 नि0 " पुष्पा040 किङ्किरातो हेमगौराः पीतकाः पीतभद्रकः " .

4. रत्ना01/11, पृ025, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी .

5. कु0 सं03/26–" असूत सर्वः कुसुमान्यशोकःस्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि ।

पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां सम्पर्कमासिञ्जितनू–पुरेण "।।

उपर्युक्त श्लोकों में मदन महोत्सव[1] का वर्णन अति गम्भीर और सुन्दर किया गया है।

अशोक दोहद -

बसन्तोत्सव के साथ ही उत्सव रूप में सम्पन्न होने वाले मौलश्री एवं अशोक दोहद का उल्लेख है । हर्ष ने इसका अपने नाटक में अतिसुन्दर वर्णन किया है, यथा[2]–

मूले गण्डूषसेकासव[3] इव बकुलैर्वास्यते पुष्पवृष्ट्या

मध्वाताम्रे तरूण्या मुखशशिनि चिराच्चकान्यद्य भान्ति ।

आकर्ण्याशोकपादाहतिषु च रसितं निर्भरं नूपुराणां

झक्ड.ारस्यानुगीतैरनुकरणमिवारभ्यते भृङ्ग.सार्थैः ।।

यह उत्सव उद्यान अथवा अन्तः के समीप प्रमद वन में मनाया जाता था, जिसके सम्बन्ध में मान्यता थी कि सुन्दर स्त्री के पद प्रहार से अशोक वृक्ष पुष्पित हो जाते थे। प्रमदा स्त्री का यही पदाघात दोहद[4] कहा जाता था । पद प्रहार करने वाली सुन्दरी स्त्री पहले अशोक के पल्लवों का अवतंसक धारण करती थी, तदुपरान्त बायें पैर से अशोक पर पैर का आघात करती थी। यह कीडामय उत्सव ाम से मनाया जाता था जिसमें अन्तःपुर की रानियॉ एवं राजा सम्मिलत होते थे । इस संदर्भ में कवियों में प्रसिद्ध है कि –

स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्ग.विकसति वकुलः सीधुगण्डूषसेकात्

पादाघातादशोकास्तिल ककुरवकौवीक्षणालिङ्गनाभ्याम् ।

मन्दारो नर्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्तृवाता

च्चूतो गीतान्नमेरूर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः ।।[5]

---

1. कामसूत्र 1/4/42 तथा दृष्टव्य – "जयमंगला" टीका0 1/4/42 "सुसंतोमदनोत्सवः तत्र नृत्यगीताद्यप्रायाः क्रीड.ाः"

2. रत्ना01/18, पृ028, व्या0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0सं0 वाराणसी .

3. रत्ना0, प्रथम अंक, पृ028, व्या0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0सं01976, वाराणसी – "मौलश्री की जड़ में सुन्दरी स्त्रियों के द्वारा मदिरा का कुल्ला करने पर उसमें फूल आ जाते हैं ।"

4. मेघदूत 78–तु0–" वदन मदिरा दोहदच्छद्मनाऽस्याः"

5. मल्लिनाथ ।

दोला -

बसन्त ऋतु में नारियों द्वारा दोला उत्सव भी सम्पन्न होता था । पति – पत्नी या राजा – रानी दोनों ही दोलात्सव समद वन में जाकर मनाते थे जहॉ दोला । झूले। प्रायः एक स्थान विशेष में सदैव पड़े रहते थे । इसे दो गृह कहा जाता था । राजाओं के दोले प्रायः उनके परिजन लाते रहते थे । रानियॉ दोलादि रोहण में निपुण होती थीं, किन्तु कभी–कभी असावधानी वश फिसल कर नीचे गिरने से उनके चरण आहत भी हो जाते थे किन्तु कभी – कभी आलिंगन सुख हेतु नारियॉ दोला की रस्सी छोड़कर प्रियतम के गले में अपनीं बाहें डाल देती थी ।

नाटकाभिनय -

विशिष्ट समारोहों पर नाटकाभिनय समायोजित होता था जिसमें नारियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहती थी । नाटक के अभिनय का अतिसुन्दर वर्णन देखने को मिलता है, नाटक शुरू होने से पूर्व महारानी वासवदत्ता ने नाटकाभिनय हेतु स्वयं अपने गहने उतार कर आरण्यका को दे देती है तथा राजा के वस्त्राभूषण मनोरमा को इस आशय से महाराज को देती है कि वह महाराज के समान दिखायी पड़े । इन्हीं लोगों की साज – सज्जा को देखकर कंचुकी कहता है। यथा –[1]

पादैर्नूपुरिभिर्नितम्बफलकैः शिञ्जानकाञ्चीगुणै
र्हारापादित कान्तिभिःस्तनतटैः केयूरिभिर्बाहुभिः ।
कर्णैः कुण्डलिभिः करैः सवलयैः सस्वस्तिकैर्मूर्धजै
र्देवीनां परिचारिका परिजनोऽप्येतेषु संदृश्यते ।।

लेकिन वासवदत्ता से छिपाकर मनोरमा विश्वासघात करके यहवस्त्र आभूषण राजा उदयन को दे देती है[2] –

सपरिजनं प्रद्योतं विस्मयमुपनीय वादयन्वीणाम् ।
वासवदत्तामपहरामि नचिरादेव पश्याम्यहम् ।।

1. प्रिय0 3/4, पृ056, टीका0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, मुद्रक चौ0 प्रेस वाराणसी, प्र0सं0वि0सं0 2035.
2. प्रिय0 3/6, पृ061, टीका0पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन वारीणसी, द्वि0सं0.

वासवदत्ता को यह भ्रम उत्पन्न हो जाता है कि नाटकाभिनय मनोरमा या वास्तविक राजा के द्वारा सम्पन्न किया जा रहा है । यथा[1] – कथं मनोरमैषा । मया पुनर्ज्ञातमार्यपुत्र एष इति । साधु मनोरमे साधु । शोभनं नर्तितम् । परन्तु कुछ समय पश्चात् वासवदत्ता पहचान जाती है कि मनोरमा का अभिनय राजा के द्वारा किया जा रहा है ।

राज्याभिषेकोत्सव -

भास व हर्ष की कृतियों के अध्ययन से तत्कालीन शासन व्यवस्था के सम्बन्ध में कोई विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं होता है तथापि कुछ सामान्य संकेतों के आधार पर राज्याभिषेकोत्सव की अस्पष्ट झलक मिलती है । भास के अभिषेक नाटक में राज्याभिषेक का वर्णन है । राज्याभिषेक प्रायः सबसे बड़े पुत्र । अग्रज । का होता है । इस उत्सव में नगर व राज दरबार को पुष्पों से सजाया जाता था एवं दीप मालायें प्रज्वलित की जाती थीं। ध्वजा, पताका, कलश, घोड़े रथ, हाथी सबको सजाया जाता था । श्रेष्ठ तीर्थो के जल, औषधि, फल–फूल और श्रेष्ठ पत्तों से श्री गणेश जी, गुरू और कुलदेवता की पूजा तथा ब्राम्हणों की सेवा की जाती थी । उदयन के राजगद्दी सम्हालने पर राज्याभिषेकोत्सव अवश्य सम्पन्न हुआ होगा परन्तु उसका वर्णन हर्ष या भास के उदयन रूपकों में नहीं है ।

राजा के बाहर से नगर लौटने पर उत्सव -

अपने राज्य से किसी कार्यवश बाहर गया राजा जब पर्याप्त समय पश्चात अपने नगर लौटता था तो प्रजा उसके स्वागत सत्कार हेतु पताकायें ऊँचा कर देती थीं । राजा की अनुपस्थिति में राज्य का उत्तरदायित्व जिस पर रहता था, वह ससैन्य नगर के बाहर आगे स्वागतार्थ आता था तथा राजा को नगर से कुछ दूरी पर उपवन में विश्रामार्थ ठहराया जाता था जिससे उसके सभी ज्ञात बन्धु वहाँ आकर भेंट कर सकें ।

---

1. प्रिय0 तृतीय अंक, पृ0 62, टीका, पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन वाराणसी, द्वि0 सं0 1976.

राजा के नगर में प्रवेश करने से पूर्व नगर को वन्दनवारों आदि से पूर्णतया सजा दिया जाता था तथा राजा के शुभागमन पर श्वेत भवनों के झरोखों से नगर की नारियों अथवा कन्याओं द्वारा खीलें बरसायी जाती थीं । गवाक्षों पर बैठीं पौरांगनायें राजमहषी को प्रणाम करतीं थीं। मंगल वाद्य बजाये जाते थे तथा प्रजाजनों से अभिनन्दित एवं सत्कृत होता हुआ उत्सव पूर्वक राजा अपने राज प्रासाद में प्रवेश करता था ।

उदयन को प्रद्योत के द्वारा कैद में डाल दिया जाता है । यौगन्धरायण की योजना से राजा वासवदत्ता का हरण करने में सफल हो जाता है । उसके पश्चात राजा को राज्य पर वापस लौटने पर उत्सव होना स्वाभाविक है परन्तु इस उत्सव का वर्णन महाकवि भास व हर्ष द्वारा नहीं किया गया है ।

अन्य विविध उत्सव एवं समारोह -

उपर्युक्त सांस्कृतिक एवं सामाजिक उत्सव समारोहों के अतिरिक्त हर्ष तथा भास के समय प्रचलित अन्य विविध उत्सवों का अपनी कृतियों में अति सूक्ष्म संकेतात्मक उल्लेख किया है जिनमें नववधू गृह प्रवेशोत्सव, नव गृह प्रवेशोत्सव, पान भूमि रचना, तीर्थयात्रा, पवित्र नदी स्नानादि, धार्मिक उत्सव उल्लेखनीय हैं।

नववधू गृह प्रवेशोत्सव -

नव परिणीता वधू को बड़ी धूमधाम से गीत वाद्ययुक्त समारोह पूर्वक पतिगृह में प्रवेश कराया जाता था । भास व हर्ष ने नववधू गृहप्रवेशोत्सव का सन्दर्भानुसार वर्णन किया है ।

नवगृह प्रवेशोत्सव -

भास व हर्ष के काल में भी नवनिर्मित गृहों में प्रथम प्रवेश के समय सोल्लास समारोह मनाया जाता था । नये गृह के निर्मित होने पर प्रथम प्रवेश के समय सोल्लास विधिपूर्वक, पूजनादि सहित मनाया जाता था, तत्पश्चात पशु आहार दिया जाता था ।

पानभूमिरचना -

यह एक प्रकार का सामूहिक रूप से सुरा पीने का समारोह था जो आजकल भी कोक्टेल पार्टी के रूप में प्रचलित है । भास तथा हर्ष दोनों महाकवियों ने इस सामूहिक सुरापान गोष्ठी समारोह का उल्लेख किया है । प्रतीत होता है, इसमें पुरूषों के साथ सुन्दरी नारियॉ भी भाग लेकर मदिरा पान करती थीं ।

तीर्थ यात्रा एवं तीर्थ स्थान -

भास व हर्ष के काल में नारियॉ समारोह (उत्सव) सहित तीर्थयात्रा, स्नानादि में भाग लेती थीं, तिथि विशेष पर गंगा–यमुना ऐसी पावन नदियों के संगम पर पुरूषों के साथ स्त्रियॉ भी स्नान करती थीं ।

उपर्युक्त वर्णित विविध सांस्कृतिक उत्सव समारोहों के आधार पर कहा जा सकता है कि भास व हर्ष के नारी पात्रों की इन सामाज़िक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक समारोहों में विशेष अभिरूचि या उत्साहपूर्ण आस्था थी । बिना नारियों के सभी उत्सव समारोह निरानन्द एवं निरर्थक होते थे।

नारी की मनोविनोदपूर्ण क्रियायें -

भास तथा हर्ष दोनों नाटककारों ने अपनी नाट्यकृतियों में नारी को नाना प्रकार की मनोविनोदपूर्ण क्रियाओं में संलग्न चित्रित किया है जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं –

वन विहार -

घनी बस्तियों के कोलाहल में गृहों में रहकर वहॉ के कृत्रिम वातावरण से ऊब कर कभी–कभी नारियॉ प्राकृतिक छटा से रम्य वनों में बिहार करती हुई अपना मनोविनोद करती थीं ।

जल क्रीड़ा -

सामान्यतः स्त्रियों द्वारा गृहदीर्घिका या नदी में जल क्रीड़ा द्वारा ग्रीष्म ऋतु में मनोरंजन किया जाता था । नारियों के स्नान करने से उनके शरीर पर लगा अंगराग सरिज्जल में घुल जाता था जिससे नदी की धारा रंगबिरंगी होकर मेघमयी संध्या सी सुन्दर लगती थी । जल बिहार से युवतियों के सुगन्धित शरीर का संस्पर्श पाकर जल भी महकने लगता था । जल की उठती हुई लोल लहरें सुन्दरियों के अंजन को धोकर मद्यपान के समय भी लालिमा उनके नेत्रों में भर देती थी । जल क्रीड़ा में कानों से खिसके शिरीष कर्ण फूल नदी में तैरने लगते थे जिन्हें देखकर मछलियों को शैवाल का भ्रम हो जाता था ।

धारा गृहोद्यान -

त्यन्त सुन्दर वर्णन कवि ने किया है । पढ़ने या सुनने मात्र से उद्यान का हूबहू चित्र आ ने खड़ा हो जाता है[1] –

पश्य पश्य अविरतपतद्विविध कुसुम सुकुमार शिलातलोत्संङ्ग्स्य परिमलनिलीनमधुकर भर भग्नबकुल मालती लता जालकस्य कमलगनध ग्रहणोद्दाममारूत पर्यवबुद्धबन्धूक बनधनस्याविरलमालतरूपिहिता तपप्रसारस्यास्य धारागृहोद्यानस्य सश्रीकताम् ।

संगीत एवं लोकनृत्य -

विविध प्रकार के गायन–वादन एवं नर्तन से नारियों का मनोविनोद हुआ करता था । वासवदत्ता उदयन के वियोग में घोषवती वीणा को बजाकर अपनी विरहवेदना प्रकट करती थी लेकिन यहाँ पर उदयन खुद वासवदत्ता के वियोग में घोषवती को लेकर क्रन्दन कर रहा है । यथा[2] –

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि

खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि[1]।

उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि

वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ।।

वीणा को देखकर राजा की सारी अभिलाषायें सो गयीं थीं फिर से जागरूक हो गयीं[3] –

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः ।

तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ।।

---

1. प्रिय0, द्वि0 अंक, पृ0 22, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन वाराणसी, द्वि0सं0 1976.
2. स्वप्नवासवदत्तम्, 6/2, पृ0 112, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0 1972.
3. स्वप्नवासवदत्तम्, 6/3, पृ0 113, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0 1972.

आरण्यका के द्वारा बजायी गयी वीणा की प्रशंसा करते हुए उदयन कह रहे हैं कि[1] –

व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना दशविधेनाप्यत्र लब्धाधुना

विस्पष्टो द्रुतमध्यलम्बित परिच्छिन्नस्त्रिध्यायं लयः ।

गोपुच्छ प्रमुखाः क्रमेण यतयस्तिस्रोऽपि संपादिता

स्तत्वौधानुगताश्च वाद्यविधयः सम्यक्त्रयोदर्शिताः ।।

चित्रकला –

मनोरंजन के अनेक साधनों में संगीत के समान चित्रकला का भी नारियों में प्रचुर रूप से प्रचलन था । चित्रकला निपुण गृहणी नारियॉ अपने प्रियतम को चित्रफलक पर प्रतिरूप अंकित किया करती थीं । सागरिका के द्वारा चित्रपट पर बने हुए चित्र को ही देखकर राजा उसके प्रति इतना अनुरक्त हो जाता है कि [2]–

भाति पतितो लिखन्त्यास्तस्या वाष्पा[3]म्बुशीकरकणौघः ।

स्वेदोद्[4]गमस्तव करतल संस्पर्शादेष मे वपुषि ।।

सागरिका अपनी सखी के साथ छिपकर राजा के मनोभाव देखती है तथा मन ही मन अपने को धन्य मानती है । सुसंगता राजा को बताती है कि सागरिका मुझसे बहुत कुपित हो रही थी, इस चित्रपट में तुमने मेरा चित्र क्यों अंकित किया है ।

कथा आख्यायिका –

कथा आख्यायिकाओं के कथन–श्रवण से भी नारियॉ अपना मनो–विनोद यथा समय एकान्त में किया करती थीं । कथा आख्यायिका का वर्णन भास व हर्ष के उदयन रूपकों में नहीं है।

---

1. प्रिय0 3/10, व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी, चौ0 अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण वि0 सं0 2035 पृ0 66.
2. रत्ना0 2/12, ले0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, प्र0 सं0 वाराणसी 1980 1980 पृ0 91.
3. अ0 को0 3/3रु130– "वाष्पभूष्णासु"
4. भ0प्र0 पृ0 14– "स्वेद .... सुख लज्जादिभिभवेत्"

क्रीड़ा पशु -पक्षी, क्रीड़ा शैल उद्यानादि -

मनोविनोद के साधनों में कीड़ा पक्षियों में शुकसारिका, मयूर, हंस आदि उल्लेखनीय हैं जिनसे नायिकायें या अन्य नारी पात्र कीड़ा करते हुए अपना मन बहलाया करते थे । शुकसारिका सामान्यतः मानव वाणी का अनुसरण करते हैं । अतः एकान्त में नारी पिंजड़े में विद्यमान उससे वार्तालाप कर अपना मनोविनोद करती थी । भास व हर्ष के उदयन रूपकों में यद्यपि कीड़ा पशु–पक्षी व कीड़ा शैल शैल उद्यान का वृतान्त नहीं है परन्तु उदयन के राजमहल में कीड़ा पशु–पक्षी व कीड़ा शैल उद्यान की विद्यमानता आवश्यक है ।

कुमारियों की विविध कीड़ायें -

अन्य विविध प्रकार की कीड़ाओं से भी नारी पात्रों का मनोविनोद वर्णित हुआ है जिनमें अधोलिखित उल्लेखनीय हैं –

कन्दुक क्रीड़ा -

कन्दुक कीड़ा अति प्राचीन मनोविनोद का साधन है । बाल्यावस्था में प्रायः सभी नर–नारी कन्दुक कीड़ा से आनन्दित होते हैं । कन्दुक को हाथ से मारकर, फेंककर व उसके पीछे भागकर विविध कीड़ायें सम्पन्न की जाती हैं । पद्मावती कन्दुक खेलती है, उसी समय वासवदत्ता उसके हाथों को देखकर कहती है[1] –

हला ! अतिचिरं कन्दुकेन क्रीड़ित्वार्धिकसञ्जातरागौ परकीयाविव ते हस्तौ संवृतौ ।

पुत्तलिका -

आज भी कन्यायें गुड्डा व गुड्डी का विवाह आदि पुत्तलिका क्रीड़ा से मनोविनोद किया करती हैं, पुत्तलिका क्रीड़ा की परम्परा प्राचीन काल से आज तक अविच्छिन्न चली आ रही है । प्राचीन काल में पुत्तलिकायें । गुड़िया । सूत, लकड़ी, श्रृंग, हाथी दॉत, मोम एवं मिट्टी से निर्मित होती थीं । पुत्तलिका का वर्णन भास व हर्ष के उदयन रूपकों में नहीं है ।

---

1. स्वप्न0 द्वि0 अंक, पृ0 26, टीका0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, द्वि0 सं0 1972.

युवती नारियों की क्रीड़ायें -

युवतियों में अनेक प्रकार की क्रीड़ायें प्रचलित थीं जिनका शालमंजिका, उद्‌दालक, पुष्पमणिका आदि रूप में सारिकावृत्ति । 6/74 । में उल्लेख्य हुआ है । युवती नारियों की इन क्रीड़ाओं का संदर्भानुसार कहीं–कहीं पर वर्णन हर्ष व भास के नाट्य ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होता है।

वृक्षों का विवाह -

प्राचीन काल में स्त्रियॉं परस्पर किसी स्थान में यह कीड़ा खेलती थीं किसी वृक्ष का दूसरी लता से विवाह रचाने का स्वांग रचा करती थीं तथा प्रसन्न होती थीं । सम्पन्न व्यक्ति अपना मनोहर उद्यान रखते थे । उसमें दो लतायें ऐसी हुआ करती थीं, जिनमें एक पुरूष की होती थी तथा दूसरी स्त्री की । किसकी लता अधिक तथा सुन्दर रूप से खिलती है एतदर्थ होड़ लगा करती थी । कभी–कभी अन्य दोहदों के साथ ही मन्त्र यन्त्र के सहारे भी बेमौसम लताओं में फूल लगाने का प्रयास किया जाता था । यह विलासिता का ही एक अंग था । इसी की ओर यहॉं संकेत है[1] –

भर्त्रि, आसन्न एव । किं न प्रेक्षते भर्त्री । इयं खलु सा निरन्तरोदिभिन्नकुसुमशोभिनी भत्र्र्या परिगृहीता माधवी लता । एषाप्यपरा नवमालिकालता यस्या अकालकुसुम समुद्र गम श्रद्वालुना भर्त्राऽनुदिनमायास्यत आत्मा । तदेतामतिकम्य दृश्यत एव स रक्ताशोक पादपो यत्र देवी पूजां निर्वर्तयिष्यति ।

पुष्प श्रृंगार मनोविनोद -

पुष्प श्रृंगार द्वारा नारी मनोविनोद करने की परम्परा अति प्राचीन काल से चली आ रही है। घने वृक्षों के वन–उपवनों से नारियॉं पुष्प तोड़कर उनसे विविध कीड़ायें करती थीं । यथा – पुष्पशैय्या, माला, अलंकार आदि श्रृंगार प्रसाधन की रचना । भास व हर्ष के समय पुष्प श्रृंगार मनोविनोद की प्रचलित कीड़ाओं का प्रसंगानुसार उल्लेख अनेक रूपकों में हुआ है ।

---

1. रत्ना० प्र० अंक, पृ० 30, टीका० पं० रामशंकर त्रिपाठी, द्वि० सं० 1976, वाराणसी ।

वार्तालाप द्वारा मनोविनोद -

परस्पर सरस हास–परिहासपूर्ण वार्तालाप द्वारा भी युवतियॉ अपना मनोविनोद किया करती थीं । जिस समय आरण्यका चेटी के साथ वन में वासवदत्ता की आज्ञा के अनुसार शेफालिका के फूलों को तोड़ती हैं, तभी – हा धिक् हाधिक् । एते खल्वपरे परित्यज्य कमलिनीं नीलोत्पलवनानि समापतन्तों निपुणतरं बाधमाना आयासयन्ति मां दुष्टमधुकराः ।। उत्तरीयेण मुखं पिधाय सभयम्। हला इन्दीवरिके, परित्रायस्व मां परित्रायस्व माम् । एते दुष्टमधुकराः परिभविष्यन्ति ।[1]

इसीप्रकार रत्नावली में भी जिस समय राजा चित्रपट को देखकर उसकी सुन्दरता का वर्णन करता है, सागरिका ओट में छिपकर राजा व विदूषक की वार्ता को सुनकर अपनी सखी सुसंगता से कहती है – । विहस्य। त्वमेव श्रुण यस्या आलेख्यविज्ञानमेवं वर्णयते ।[2] अर्थात् सागरिका के कहने का भाव यह है कि मेरे सौन्दर्य का महत्व नहीं अपितु तुम्हारे चित्र बनाने की चतुरता का महत्व है इसलिये राजा इस प्रकार प्रशंसा कर रहे हैं ।

भास तथा हर्ष दोनों ने अपने उदयन रूपकों में रानी व वासवदत्ता की वार्ताओं के द्वारा विद्वतापूर्वक मनोविनोद अनेक स्थलों पर प्रदर्शित किया है ।

3. नारी का आध्यात्मिक दृष्टिकोण -

जहॉ जगत के विविध भौतिक विषयों में नारी की प्रभावी भूमिका दृष्टिगत होती है, वहॉ गहन एवं सूक्ष्म आध्यात्मिक विषय में भी नारी के स्पष्ट दृष्टिकोण को प्रसंगानुसार भास तथा हर्ष ने अपनीं कृतियों में अभिव्यक्त करने का समीचीन प्रयास किया है । उनके नारी पात्र आध्यात्मिक भावनाओं से ओत – प्रोत थे । इन नायिकाओं एवं सखियों का बाह्य रूप कुछ अधिक अलंकृत होने पर भी इनकी अन्तरात्मा रहती है । इस सन्दर्भ में नारी का लोक – परलोक, ब्रह्म, ईश्वर, माया, मोक्ष, पुनर्जन्म आदि के विषय में दार्शनिक दृष्टिकोण उल्लेखनीय है ।

1. प्रिय0, द्वि0 अंक, पृ045, टीका0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, चौ0 अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, प्र0सं0 वि0सं0 2035.
2. रत्ना0, द्वि0 अंक, पृ091, व्या0डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, प्र0सं0 1980.

लोक-परलोक -

सांसारिक आकर्षणों और भौतिक इच्छाओं के वशीभूत होकर नर एवं नारी बाह्य संसार को सब कुछ समझ लेता है और केवल कुछ भौतिक सुविधाओं का सुख ही प्राप्त कर पाता है । केवल इस लोक के विषय में सोचने के कारण मनुष्य सांसारिक दुःखों को भोगता है परन्तु जब नर एवं नारी अपने अन्तर्मन में झांककर देखते है। तो उन्हें इस लोक के साथ – साथ परलोक का भी स्मरण होता है । जैसा कि राजा वासवदत्ता को याद करके विदूषक से कहता है – वयस्य ! जानाति भवानवस्थाम् ! कुतः–

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं
प्राप्ताऽऽनृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ।।[1]

इस पर कंचुकी महाराज को सान्त्वना देकर कहता है कि वासवदत्ता मर कर भी अमर है–

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां
काले काले छिद्यते रूह्यते च ।।[2]

इस पर राजा कहते हैं कि आर्य नहीं ऐसा नहीं –

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया ।
कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ।।[3]

यदि मनुष्य । प्राणी । जीवन में सत्कर्म करता है तो मृत्यु के अपरान्त उसको स्वर्ग में स्थान मिलता है ।

भास एवं हर्ष के नाट्य ग्रन्थों की नारियाँ लोक एवं परलोक दोनों पर विश्वास रखतीं थीं । इसी कारण वह पतिव्रता धर्म का पालन व ईश्वर की उपासना पर अधिक ध्यान देतीं थीं ।

---

1. स्वप्न0, 4/6, पृ0118, व्या0 गंगासागरराय, प्रका0चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,प्र0सं0 वि0सं0 2054.
2. स्वप्न0, 4/10, पृ0152, व्या0 आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, सर्वाधिकार सुरक्षित सं0 2001.

   तुलना – 1–1–6– "सस्यमिव मर्ता पच्यते सस्यमिव जायते पुनः।"
3. स्वप्न0, 6/11, पृ0192, व्या0 गंगासागर राय, प्रका0 चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, प्र0सं0वि0सं0 2054.

कर्मवाद एवं पुनर्जन्म -

पुनर्जन्म भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है । भास व हर्ष को नारी के आध्यामिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत कर्मवाद एवं पुनर्जन्म विषयक पर्याप्त जानकारी थी । इनके नारी पात्रों को आत्मा की अमरता सहित पुनर्जन्म तथा कर्मवाद पर भारी आस्था थी । महाभारत में पुनर्जन्म को बड़े ही अच्छे तरीके से वर्णित किया है । महाभारत के शान्ति पर्व में कहा गया है –

यथा हि पुरूषः शालां पुनः सप्रविश्नन्नवाम् ।

एवं जीवः शरीराणि तानि तानि प्रवर्धते ।

देहान्पुराणानुत्सृज्य नवान्संप्रतिपद्यते

एवं मृत्युर्मुख प्राहुर्जना ये तत्वदर्शिनः ।।[1]

उपनिषदों तथा ब्राम्हण ग्रन्थों में पुनर्जन्म का वर्णन प्राप्त होता है । बाद के साहित्य में तो इस प्रकार की धारणा सुस्पष्ट हो गयी है कि ब्रह्म से पृथक होकर जीव चौरासी लाख यौनियों में भटकता रहता है । प्रत्येक बार उसे नया जीवन अपनी पूर्व जन्म की अपूर्ण अभिलाषाओं के अनुसार मिलता है । सती ने पार्वती के शरीर में जन्म लिया । लक्ष्मण शेषनाग के अवतार थे । रावण पूर्व जन्म में हिरण्यकश्यप था । महाभारत में भी पुनर्जन्म की व्याख्या स्पष्ट है।

विज्ञान के इस युग में भी पुनर्जन्म की कुछ घटनायें सुनने को मिल जाती हैं । कुछ बालक–बालिकायें अपने पूर्व जन्म की स्मृति भूलते नहीं और विज्ञान को अचम्भे में डालने वाले संस्मरण सुनाते हैं । यह संस्मरण जब वास्तविक सिद्व होते हैं तो पुनर्जन्म में अविश्वास करना कठिन हो जाता है । रामचरित मानस में काकभुशुण्ड का अपने पूर्व जन्मों का ब्योरा बताना इसे सिद्व करता है । पूर्व जन्म का सिद्धान्त सभी जीवों में समान आत्मा होने की कल्पना करता है। "आत्मवत् सर्वभूतेषु" के अनुसार चींटी, हाथी, ब्राम्हण और कुत्ता सभी में एक ही आत्मा का निवास है ।

---

1. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, ले0 डा0 वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, चतुर्थ संस्करण, 1981.

पुण्यकर्म -

गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को बताया कि यह संसार कर्मक्षेत्र है । यहाँ कोई व्यक्ति बिना कर्म के नहीं रह सकता है । कर्म करने के लिए व्यक्ति को शरीर धारण करना तथा संसार में जन्म लेना पड़ेगा । ब्रह्म भी कर्म करने के लिए संसार में अवतरित होता है ।

संसार में आकर अकर्म कोई रह नहीं सकता । कर्म मनुष्य की सहज प्रकृति में सम्मिलित है। प्रश्न यह है कि यदि वह सुकर्म करता है तो अपने संचित पुण्य फलों को भोग करने के लिए उसे बार–बार पैदा होना तथा मरना पड़ेगा । यही बात दुष्कर्म पर लागू होती है इसलिए गीता में निष्कर्म रहने को कहा गया है अर्थात कर्म करते हुए भी उसकी अनुभूति न होना । पौराणिक कथा है कि राजा जनक ऐसे ही व्यक्ति थे जो सभी कर्म करते परन्तु संसार में लिप्त न होते । गीता में ही भगवान कृष्ण ने कहा है कि व्यक्ति को केवल कर्म करने का अधिकार है, उसे फल की आशा नहीं करनी चाहिए ।

वेदान्त अकर्मण्यता का उपदेश करता है । यह काम्य कर्मा की तो उपेक्षा करता है, किन्तु निष्काम भाव से किये गये श्रेष्ठ नैतिक कर्मो को अन्तःकरण की शुद्धि में सहायक मानता है –

ब्रहमविद्याय एवं फलायां काम्यैकदेशवर्जितं,

कृत्स्नं कर्मकाण्डं तादर्थ्येन विनियुज्यते ।।[1]

श्रेष्ठ कर्म किसी भी व्यक्ति को निरन्तर उत्कृष्टता को प्राप्त कराते हुए उसे कमिक मुक्ति प्रदान करने में समर्थ है । निश्चेष्टता अथवा निष्क्रियता से मुक्ति ग्राह्य नहीं । अतः वेदान्त पर निष्क्रियता का आरोप नहीं लगाया जा सकता है ।[2]

---

1. वेदान्तसार, लेखक डा0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, प्रका0 साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, प्रथम संस्करण । 1973 । से चतुर्थ संस्करण । 1979 – 80 ।
2. प्रो0 हिरियन्ना का कथन – "नैष्कर्म्य कर्म का त्याग नहीं वरन् कर्म में त्याग है ।"

माया तथा मोह -

जीव के अज्ञान अथवा अविद्या से अपहृत जो व्यक्ति जगत के विषय भोगों के बन्धन में बंधता है उसे माया तथा मोह ग्रन्थि माना जाता है । माया तथा मोह में लिप्त व्यक्ति आध्यात्म की ओर ध्यान नहीं दे पाता । माया की प्रचण्ड सेवा संसार भर में छायी हुई है । काम, कोध, लोभ उसके सेनापति हैं और दम्भ, कपट और पाखण्ड उसके योद्धा हैं। माया का परिवार बड़ा बलवान् है । शिव जी और ब्रह्मा भी उससे डरते हैं ।

वेदान्त में वर्णित माया एक ऐसी विलक्षण शक्ति है जिसके अस्तित्व पर ही "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" जैसे दो विरोधी वाक्यों में एकता की प्रतीति होती है, क्यों कि सत्य वस्तु होने से "ब्रह्म" का कभी बाध नहीं होना चाहिए, किन्तु इसके विपरीत स्थूल रूप से जगत प्रतिक्षण प्रतिपल दृष्टिगोचर होता है । माया के विषय में महादेव शास्त्री का कथन है – "माया व्यावहारिक सत्ता का ऐसा नाम धेय है जो वर्ण्य विषय के बाहर है । वस्तुतः किसी वस्तु विशेष की ओर इंगित करके ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि "अमुक वस्तु माया है" वह तो विरोधी तत्वों का मिश्रण है। वह स्वयं रूपहीन एवं अस्तित्वहीन होते हुए भी सर्वत्र व्याप्त एवं सर्वशक्तिशालिनी है । यह अनादि किन्तु शान्त है किसी व्यक्ति विशेष की निधि नहीं, वरन् सार्वजनिक तथा सार्वभौम है । "सदानन्द जी ने विरोधी – स्वभाव वाली माया का स्वरूप वर्णन इस प्रकार किया है – "सद्सद्भ्यास निवर्चनीयं त्रिगुणात्मक ज्ञान विरोधी – भाव रूपयत्किंचिदिति ।

माया के इस स्वरूप वर्णन द्वारा उसकी चार प्रमुख विशेषतायें दृष्टिगत होती हैं – सर्वप्रमुख विशेषता है माया का अनिर्वचनीयत्व । माया सद् तथा असद् दोनों ही सत्ताओं से परे है । सद् वस्तु से तात्पर्य है जो निरन्तर विद्यमान रहे । कालगत तथा देशगत सीमाओं द्वारा कभी जो बाधित न हो । असद् का अर्थ है जो वस्तु बन्ध्या – पुत्र अथवा खपुष्प के समान कभी विद्यमान न हो, किन्तु माया इन दोनों ही प्रकार की नहीं है, जैसा कि कयोगवासिष्ठ में वर्णित है –

"ईदृशीनाम मायेयं या स्वनाशेन हर्षदा ।

न लक्ष्यते स्वभावोऽस्याः प्रेक्षमाणै व नश्यति ।।"

इसके अतिरिक्त माया की सत्यता इसलिए भी सम्भव है कि माया से भ्रमित हुआ जीव कुछ कालोपरान्त अपने यथार्थ स्वरूप को जान कर मुक्त हो जाता है, माया के सत् होने से जीव की मुक्ति का सिद्धान्त नहीं हो सकेगा, क्यों कि जीव तथा ईश्वर की सत्ता का कारण भी तो माया ही है । अतः माया अनिवर्चनीय है ।

माया की द्वितीय विशेषता त्रिगुणात्मकता है । जगत की उत्पत्ति का मूल कारण माया है और जगत की सृष्टिकर्ता शक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह सत्व, रजस तथा तमस् त्रिगुणों से युक्त हो । वस्तुतः गुण त्रय ही तो सृष्टि का मूल कारण है । सांख्यदर्शन भी इन्हीं गुणों को सर्जक मानता है । आचार्य शंकर ने संसार की बीज भूत माया को त्रिगुणात्मक बताया है –

"अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिः अनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिकापरा

कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते ।।"

तृतीय विशेषता है ज्ञान विरोधित्व । अज्ञान ही तो माया के अस्तित्व का प्रधान कारण है । श्रीमद्भागवतद्गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है –

"अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।

अज्ञान से ही मोहित होकर मनुष्य रज्जु को सर्प समझ कर भयभीत हो उठता है –

"यथा रज्जुं परित्यज्य सर्पं गृहणाति वैभ्रमात् ।

तद्वत्सत्यम विज्ञाय जगत्पश्यति मूढधीः ।। "

इसका तात्पर्य यह है कि ज्ञान का उदय होते ही माया की शक्ति नष्ट हो जाती है, जैसा कि योगवाशिष्ठ में वर्णन किया गया है – "जिस प्रकार दीपक के लाने पर अन्धकार के रूप का निश्चय नहीं होता है वरन् अविमल मूर्तिमान तमस् का केवल नाश ही होता है, उसी प्रकार ज्ञान

होने पर असद् रूप अविद्या न जाने कहाँ भाग जाती है । अविद्या होने के कारण माया असद् रूप है । इसका दर्शन तभी तक होता है जब तक विज्ञान दृष्टि से विवेचन न किया जाये ।

भास व हर्ष ने नाटकों में कहीं–कहीं पर माया तथा मोह के उदाहरण देखने को मिलते हैं।

ईश्वर -

ईश्वर का यथार्थ रूप ब्रह्म ही है । वह स्वयं तो इस दृश्य जगत एवं अदृश्य ब्रह्म के मध्य एक श्रृंखला है । यह ही जगत का सृष्टि कर्ता है । सृष्टि का उपादान तथा निमित्त कारण दोनों ईश्वर ही हैं । अपने चैतन्य अंश की प्रधानता से निमित्तकारण और माया की सहायता से जगत का सर्जन करने से उपादान कारण भी है ।

ईश्वर सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापी है । वह सृष्टि के अणु–अणु में व्याप्त है । श्रुतियों में उसे "प्रधान क्षेत्रपति गुर्णेश कहा गया है । ईश्वर सृष्टिकर्ता, पालक एवं संहारक है । ऋग्वेद में कहा गया है – "जो कुछ भी भूत और भविष्य है वह भगवान है[1] ।" मनुष्य व्यवहारिक रूप से ईश्वर की उपासना करता है।[2]

स्त्रियाँ धर्म के प्रति भी आस्था रखती थीं । पद्मावती की धर्म के प्रति विशेष रूचि थी ।

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्
स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि ।
धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीड़ा
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ।।[3]

---

1. Radha Krishan - "The Rigvada has it - All this is person, that which is past and that which is future."
2. वेदान्तसार, ले० डा० कृष्णकान्त त्रिपाठी, प्रका० साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ, पृ० 17– "Those who had not yet dis. covered it (Parmatman) were allowed to worship lower, Gods, and to enfrloy more poetical names to satisfy their human wants."
3. स्वप्नवासवदत्तम्, 1/6, पृ० 14, व्या० गंगासागर राय, प्रकाशन, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, प्र० सं०, वि० सं० 2054.

वासवदत्ता उदयन को प्रेम के बदले में प्रेम प्रदान करती है । उन्हें प्राणों से भी अधिक मानती है। उसके बिना एक क्षण भी जीना नहीं चाहती है ।[1] उसके लिए महाराज जीवन धन हैं, प्राण हैं, आराध्यदेव हैं । देवता की ही तरह उनकी पूजा करती है ।[2]

भास व हर्ष दोनों के नाटकों में यह देखने को मिलता है कि इनकी नारियॉ धर्म के प्रति केवल आस्था ही नहीं रखती थीं बल्कि देवता से ही अपने पति की तुलना करती हैं ।

ब्रह्म -

वेदान्त के अनुसार ब्रह्म एक ऐसी सर्वव्यापी जगत के अणु–अणु में व्याप्त सत्ता है जो देशकाल और सीमा से बाधित नहीं हो सकती, जो निर्गुण, निराकार, अविनाशी, चैतन्य तथा आनन्द स्वरूप हैं । ब्रह्म एक निर्गुण निराकारी सत्ता होने से प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण द्वारा ग्राह्य नहीं है, क्यों कि रूपधारी वस्तु का ही प्रत्यक्ष हो सकता है और इसके अभाव में समान गुण, रूपवाली वस्तु के आधार पर उसकी सत्ता का अनुमान किया जा सकता है, अतः ब्रह्म की सिद्धि शब्द प्रमाण द्वारा की जाती है –

"तस्मात्सिद्धं ब्राहमणः शास्त्र प्रमाणकत्वम् ।"

निष्क्रिय, निर्विकार तथा निराकार होते हुए भी यह यह ब्रह्म ही इस सम्पूर्ण दृश्यमान जगत का मूल कारण तथा मूलाधार है । एम० हिरियन्ना के शब्दों में – "ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है और यह विभूषित जगत और विषयी जीव दोनों के रूप में प्रतिभाषित होता है । जगत ब्रह्म का प्रतिभाषित होने वाला विवर्त है और जीव उस भ्रान्तिमय जगत की अंगभूत उपाधियों से विशिष्ट होकर प्रतिभाषित होने वाला स्वयं ब्रह्म ही है ।"

आत्मा -

आत्मा के सम्बन्ध में डयूशन का कथन है – This is the most abstract and therefore the best name, which has found of its soul and external them.

---

1. रत्ना0, च0 अंक, पृ0 158, व्या0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी, 1976.

"तदहमप्यार्यपुत्रमेवानुगमिष्ये ।"

2. रत्ना0, प्र0 अंक, पृ0 36, व्या0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी, 1976

भर्त्रि अर्चितो भगवान प्रद्युम्नः ।

तत्कुरू भर्तुरूचितं पूजासत्कारम् ।"

आत्मा अद्वैत वेदान्त का अति महत्वपूर्ण वर्ण्य विषय है, क्यों कि इसके ज्ञान द्वारा ही परब्रह्म परमात्मा को जाना जा सकता है, तथापि आत्मा की सिद्धि के लिए वेदान्ती किसी प्रकार का प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं समझते । वस्तुतः आत्मा तो स्वयं सिद्ध है ।

आचार्य शंकर ने आत्मा को "स्वयं सिद्ध" कहा है । वह कोई बाह्य वस्तु नहीं है । उसका निराकरण असम्भव है । निराकरण तो बाहर से आयी हुई वस्तु का ही होता है न कि अपने रूप का, । अग्नि से उसकी उष्णता का निराकरण नहीं किया जा सकता । – "आत्मा तु प्रमाणादि व्यवहाराश्रयत्वात् प्रागेव व्यवहारात् सिद्धयति । न च तस्य निराकरणं संभवति । आगन्तुकं हि वस्तु निराक्रियते, न स्वरूपम् । न हि अग्नेरूष्मा निराक्रियते ।"

आत्मा तो वास्तव में अनुभूति का विषय है ।[1] यह स्वयं प्रकाश स्वरूप है चैतन्य उसका वास्तविक धर्म है । इस दृश्यमान जगत में जो कुछ भी प्रकाश चैतन्य और आनन्द दिखायी देता है, सब उनके ही फलस्वरूप हैं, किन्तु स्वयं आत्मा नहीं है । वह तो "एकरूपेण ही अवस्थितोयोऽर्थः स परमार्थः" है । यह अपने स्वाभाविक रूप में समस्त विषयों से निर्लिप्त आनन्दमय है[2] ।

आत्मा को सन्त भी कहा गया है इसलिये वह अविनाशी कही गयी है । गीता के अनुसार –

अविनाश तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततं ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ।।

---

1. वेदान्तसार, ले० कृष्णकानत त्रिपाठी, प्रका० साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, चतुर्थ संस्करण 1979–80, प्र0 20.

   "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेध्या न बहुना श्रुतेन
   यमैवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ।।"

2. कठोपनिषद –

   अशब्दमस्पर्शरूपमव्ययम् तथाडरसं नित्यमगन्धवच्च ।
   अनापतं महतः परं ध्रुवं निचाय्यन्मृत्युमुखा त्प्रमुच्यते ।। "

मोक्ष -

दर्शन जगत का अन्तिम लक्ष्य है– क्लेशों से निवृत्ति इस निवृत्ति का दार्शनिक सम्बोधन "मोक्ष" है। मोक्ष शब्द संस्कृत की मुच् धातु से त्यागना अर्थ में निर्मित हुआ है। अतः सामान्यतः मोक्ष का अर्थ मृत्यु से लिया जाता है। मृत्यु के माध्यम से ही इस भौतिक शरीर का त्याग हो जाता है और शरीर के विनाश के साथ ही सुख–दुःख आदि की अनुभूति भी नष्ट हो जाती है। साधारण प्राणी इस अवस्था को ही मोक्षावस्था मानने लगता है, किन्तु दर्शन जगत में मोक्ष मृत्यु से नितान्त पृथक परम शान्ति और आनन्द की दिव्य अवस्था का नाम है।

राधाकृष्णन के अनुसार यह आध्यात्मिक प्राप्ति है।[1] यह जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति है। दूसरे स्थान में गांधी जी कहते है। अहं के कारण यह शरीर रहता है। अहं का पूर्ण रूप से नाश ही मोक्ष है। जिसने ऐसा करने मे सफलता प्राप्त कर ली वही सत्य की वास्तविक मूर्ति है, या उसे हम ब्राम्हण कह सकते हैं।[2]

मोक्ष प्राप्त करने के लिए तीन मार्ग बताये गये हैं। ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग और कर्म मार्ग। यह तीनो अन्तः सम्बन्धित हैं। कर्म मार्ग की व्याख्या "कर्म के सिद्धान्त" में हो चुकी है। यहां हम शेष दो मार्गो की व्याख्या करेंगें।

ज्ञान प्राप्त अनुभव है।[3] यदि हमें सच्ची अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाये जो हमारा प्रत्येक कार्य स्वयं सही होगा। सत्यता केवल सही कार्य करेंगी गीता मे कहा गया है कि मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान एक आवश्यक साधन है। इससे कर्मो से मुक्ति नही होगी बल्कि कर्मो को हम सही अर्थ और मूल्य प्रदान करते हैं। यहां तक की बुद्धिमान व्यक्ति भी यह बताने में असमर्थ हैं –

1. Radhakrishnan "Moksha is spiritval realization"
2. Gandhi- " The body persists because of ego I am, the utter exination of ego I am is moksha. He who has achieved this will be the very image of truth, or one may call it a Brahma.
3. Radhakrishnan Knowledge is realized experience.

कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। इसलिए यह आवश्यक है कि हम इस बात का ज्ञान प्राप्त करें कि क्या कर्म है, क्या विकर्म । निषिद्ध कार्य । और क्या अकर्म है। जो कोई व्यक्ति बिना किसी मोह के और केवल विचार केन्द्रित करके और यज्ञ के रूप में कर्म करता है, उसके सब कर्म नष्ट हो जाते हैं और वह मोक्ष प्राप्त करता है। गीता में श्रीकृष्ण जी ने कहा है कि सांसारिक क्रियाओं मे मग्न होने की अपेक्षा ज्ञान अर्जन मे खो जाना अधिक अच्छा है क्योकि कर्म ज्ञान के अन्दर व्याप्त है। घोर से घोर पापी भीं ज्ञान रूपी नाव की सहायता से इस संसार रूपी समुद्र को पार कर सकेगा। ज्ञान की अग्नि सब कर्मो को जलाकर राख कर देती है। वास्तव मे इस संसार मे ज्ञान से अधिक पवित्र करने वाली और चरित्र सुधारने वाली कोई शक्ति नही है। " जिस व्यक्ति के सब कर्म भस्मीभूत हो चुके हैं और ज्ञान की अग्नि से पवित्र हो चुके हैं और जो बिना किसी लाभ की आशा से कर्म करता है, वही पण्डित या ज्ञानी है। "

गीता के अनुसार– "ज्ञान यज्ञ भौतिक पदार्थो के यज्ञ से श्रेष्ठ है क्योकि कर्म पूर्ण रूप से ज्ञान द्वारा ही समझा जा सकता है।" श्री कृष्ण जी कहते हैं कि जैसे भली प्रकार प्रज्जवलित की गयी अग्नि ईधन को भस्मसात कर देती है, वैसे ही हे अर्जुन! ज्ञान की अग्नि सभी कर्मो को जलाकर राख कर डालती है। वह मनुष्य अज्ञानी तथा श्रद्धाहीन होता है और जिसकी आत्मा भ्रम से भरी होती है, नष्ट हो जाता है। वह जो संशय करता है, वह न तो इस लोक को, न परलोक को और न सुख को प्राप्त होता है। कर्म उसे नही बांधते जो अपने आपको जानता है तथा जिसे अपने संशयों को ज्ञान द्वारा नष्ट कर दिया है और जिसने योग द्वारा कर्मो का त्याग कर दिया है।[1]

भगवान कृष्ण का विशेष बल इस बात पर है कि समाज की स्थिरता के लिए ज्ञानी लोगों को लिए भी कर्म करना आवश्यक है। " अज्ञानी लोग फल प्राप्ति के लिए सकाम कर्म करते हैं, वैसे ही ज्ञानियों को लोक हित के लिए निष्काम कर्म करना चाहिए।" ज्ञानी वह है जो सबको समान

दृष्टि से देखता है उसके लिए मनुष्य, पशु, पुरूष, स्त्री, ब्राम्हण अथव अछूत कोई भेद नहीं रहता। साम्यभाव के इस दृष्टिकोण को लेकर बिना किसी अन्य विचार को रखते हुए,

---

1. के0एम0 कपाड़िया, भारत वर्ष मे विवाह एवं परिवार ।

यथार्थ रूप से सभी जीवों के हित मे लेना चाहिए। केवल यही नहीं उसकी मानवता का आधार विशाल हो बल्कि उसमे उतनी ही गहराई भी होनी चाहिए। वह समस्त परिस्थितियों को यह देखते हुए समझता है कि वह स्वयं ऐसी ही परिस्थितियों मे क्या अनुभव करता है और किस प्रकार अपनी उपयोगिता को प्रकट करता है।[1]

राधाकृष्णन् ने भक्तिपूर्ण जीवन में स्तुति और प्रार्थना, व्रत और यज्ञ, आत्मपरीक्षा को भी सम्मिलित किया है। श्री कृष्ण जी ने कहा है– " जो भक्तिपूर्ण मेरी पूजा करते हैं वे मुझमें निवास करते हैं तथा मै उनमें निवास करता हूँ। यदि एक दुराचारी व्यक्ति भी केवल मेरी ही आराधना करता है और अन्य किसी का भी सहारा नहीं लेता तो वह निश्चय ही भला माना जाना चाहिए, उसके विचार भले हो जाते हैं, वे लोग भी जो पाप योनि, स्त्री, वैश्य तथा शूद्र हो मेरा सहारा लेकर परमोक्ष लक्ष्य को प्राप्त हो जाते हैं। मेरी भक्ति कभी नष्ट नहीं होती।[2] भगवान के प्रति पूर्ण भक्ति और आत्म समर्पण भक्ति की प्रमुख विशेषता है।"

भक्ति के साथ ही गीता में ज्ञान का दर्शन भी जुड़ा है। भगवान के प्रति भक्तिपूर्ण प्रेम रखकर भक्त भगवान के बारे मे ज्ञान प्राप्त करता है और उसमें प्रवेश कर जाता है। गीता मे चार तरह के भक्तों का वर्णन है– आर्त, दुःखी, जिज्ञासु, ज्ञान की खोज करने वाला, अर्थाथी, धन और सांसारिक सुख का इच्छुक और ज्ञानी। इनमें से ज्ञानी भक्त भगवान को सबसे अधिक प्रिय हैं।

पुरुषार्थ को विनोवा ने अन्तःकरण के सनातन संघर्ष का प्रतिमान मानकर उसकी व्याख्या की है। वे कहते है कि "प्रकृति और पुरूष या शरीर और आत्मा मे अनादि काल से संघर्ष चला आ रहा है। वेदों में जो व्रत और इन्द्र के युद्ध का वर्णन है वह इसी सनातन युद्ध का वर्णन है। "[3] ज्ञान दर्शन कराने वाली चेतन आत्मिक शक्ति तथा ज्ञान को ढकने वाली जड़ शरीरात्मक शक्ति का यही

1. के0 एम0 कापड़िया, भारत वर्ष मे विवाह और परिवार।

2. के0 एम0 कापड़िया, भारत वर्ष मे विवाह और परिवार।

3. विनोवा के विचार – दूसरा भाग, पृ0 29.

संघर्ष है। यह संघर्ष मनुष्य के हृदय क्षेत्र में "धर्म क्षेत्र" के समान है। इनमें से आत्म शक्ति का आधार मोक्ष पुरूषार्थ है तथा शरीर का आधार काम पुरूषार्थ है। दोनों एक दूसरे को विनाश करने की ताक में रहते हैं। यदि सभी लोग ब्रम्हचारी हो जायें तो सृष्टि के नष्ट होने का भय है और परमेश्वर की सृष्टि की रक्षा के लिए अवतार लेना पड़ेगा। फिर "मोक्ष के माने अगर अत्याधिक सुख है तो सरल भाषा मे उसका अर्थ चिरन्तन कामोपभोग हो सकता है।"

विनोवा के शब्दों में –" कामशास्त्र स्वसुखार्थी है और मोक्ष शास्त्र स्वहितार्थी है। इस प्रकार दोनों स्व–अर्थी ही हैं।" प्रायेण देव – मुनयः स्व मुक्ति कामा।" अतः धर्म और अर्थ ही सामाजिक मनुष्य की मर्यादा है। एक अन्य स्थान पर विनोवा जी लिखते हैं– " कामशास्त्र का तामस प्रवाह तथा मोक्षशास्त्र की सात्विक पुष्टि दोनों ही समाज को एक सी अपथ्यकर मालूम होती है।"

एक अन्य स्थान पर समन्वय करते हुए उन्होने लिखा है– "नीति के शीशे मे चारों पुरूषार्थो के रंग बिल्कुल बदले हुए नजर आयेगे। काम की सुन्दरता, अर्थ की उपयोगिता, धर्म की पवित्रता और मोक्ष की स्वतन्त्रता का एकत्र दर्शन होगा और सम्पूर्ण जीवन की यथार्थ कल्पना होगी। सौन्दर्य, उपयोगिता, पवित्र्य और स्वातंत्र्य इन चारों दिशाओं को नीति का आकाश स्पर्श करता है, इसलिए अगर चारो पुरूषार्थ ये नयी पोशाकें पहनना मंजूर करें तो उनका द्वैत कम होकर मनुष्य को संतोष होने की संभावना है।"

उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य तो मोक्ष ही हो सकता है, काम नहीं। परन्तु काम का त्याग पूर्णरूपेण होना कठिन है अतः धर्माचरण में अर्थ के माध्यम से काम को सीमित कर दो। इससे अर्थ के दुष्परिणाम जो आज पश्चिमी देशों मे देखने को मिल रहे हैं वे न उत्पन्न होगें। प्रत्येक सामाजिक क्रिया का आधार धर्म होना चाहिए। अतः अर्थ और काम पर भी धर्म का अंकुश लगा रहना चाहिए। हिन्दुओं मे काम को सीमित करने के लिए विवाह की अनिवार्यता और विवाह के उद्देश्यों में काम निकृष्ट उद्देश्य रखा गया है।

1. विनोवा के विचार, पृ0 45.

समीक्षा -

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हर्ष व भास की काव्य एवं नाट्य कृतियों मे चित्रित नारी पात्र परिष्कृत सांस्कृतिक प्रवृत्तियों से सम्पन्न संलक्षित होते हैं, जिसमें समुन्नत समाज है प्रचलित यज्ञादि विविध धार्मिक, प्रवृत्तियां, उच्चस्तरीय सांस्कृतिक समारोह के साथ मनो–विनोद पूर्ण क्रियायें उल्लेखनीय हैं। इनके द्वारा नारियां अपनीं अभिरुचि के अनुकूल गौण आवश्यकताओं की आपूर्ति कर समाज को सांस्कृतिक उत्कर्ष प्रदान करतीं थीं।

भास ने अपनें उदयन रूपकों मे तपस्वियों व गुरूओं को दान तथा गुरूदक्षिणा दिये जाने का बहुत उत्तम वर्णन किया है। यज्ञोपवीत संस्कार का भी उल्लेख भास ने किया है।

हर्ष ने धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न करते समय नारी के उपवास रखनें तथा पूजा मे कुमकुम, चन्दन, पुष्प, वस्त्र आदि का प्रयोग करते हुए इष्टदेव का ध्यान किये जाने का वर्णन किया है। यह धार्मिक कार्य ब्राम्हणों के सहयोग से ही किये जाते थे।

प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य के इतिहास में सांस्कृतिक समारोहों के वर्णन से भरे पड़े हैं। इन सांस्कृतिक समारोहों में भारतीय नारी की भूमिका उल्लेखनीय रही है। भास तथा हर्ष ने भी अनेकों सांस्कृतिक समारोहों पर अपने नाट्य साहित्य से प्रकाश डाला है। उनके द्वारा उद्धृत प्रमुख सांस्कृतिक समारोहों में पुत्र जन्मोत्सव, विवाहोत्सव, कौमुदी महोत्सव, राज्याभिषेकोत्सव, वसन्तोत्सव, मदनमहोत्सव, अशोकदोहद, दोला आदि प्रमुख हैं। इनमें से हर्ष काममहोत्सव, मदनमहोत्सव तथा भास विवाहोत्सव के वर्णन में सिद्धहस्त हैं।

नारी की मनो–विनोदपूर्ण क्रियाओं में वनविहार, जलक्रीड़ा, संगीत एवं लोकनृत्य, चित्रकला, कथा आख्यायिका, क्रीड़ा शैल उद्यान, कन्दुक क्रीड़ा, पुत्तलिका आदि का विशिष्ट स्थानों पर चित्रण भास तथा हर्ष ने किया है।

प्राचीन भारतीय नारी लोक–परलोक, ब्रम्हईश्वर, माया, मोक्ष, कर्मवाद तथा पुर्नजन्म को असीम श्रद्धा से स्वीकारती है। भास तथा हर्ष के सभी नारी पात्रों की इन पर सहज विश्वास सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

चतुर्थ अध्याय

ललित कलाओं के क्षेत्र में नारी पात्रों का नाटकों मे स्वरूप

चतुर्थ अध्याय

ललित कलाओं के क्षेत्र में नारी पात्रों का नाटकों मे स्वरूप -

मानव समाज मे प्रतिभा सम्पन्न पुरूषों के अतिरिक्ति नारियों ने भी अपनी सुकुमार तथा सात्विक उत्प्रेरक भावनओं को जहां कागज, धातु प्रस्तर आदि के माध्यम से मूर्त रूप मे चित्रकला, मूर्तिकला के रूप में साकार किया वहीं स्वर आदि के द्वारा अमूर्त रूप में राज्य एवं संगीत कला के माध्यम से भी अभिव्यक्त किया है। पार्थिव पदार्थों में कला ही सौन्दर्य एवं सजीवता की सृष्टि कर सुकुमार मनोभावों को साकार रूप प्रदान करती है। कला अखण्ड रूप से लालित्य प्रधान होने के कारण ललित कही जाती है।

भास की नाट्य कला -

भास के नाटकों मे मनुष्य जीवन के विविध रूपों का पर्यावेक्षण करने का भरपूर अवसर उपलब्ध होता है। अतएव उनके रूपकों में विविधता एवं सर्वतोमुखी प्रतिभा की झलक विशेषतः दिखाई पड़ती है। दूतवाक्य, मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्णभार और उरुभंग "एकांकी" नाटक इसी श्रेणी में आते हैं एवं प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिमा नाटकम् इत्यादि पूर्ण विकसित नाटक माने जाते है। इनके यह सभी नाटक बड़ी सरलता से रंगमंच पर खेले जाने योग्य बने है। अभिनेयता इन रूपकों की सबसे बड़ी विशेषता है, इन नाटको मे न तो वर्णन की प्रचुरता पायी जाती है, न आवश्यक कथावस्तु का विस्तार ही जो अभिनेताओं की अभिनय कला की गतिविधि के प्रतिरोधक हैं भिन्न–भिन्न अवस्था भिन्न–भिन्न भावों और विषयों के सूक्ष्म वर्णन में भास सिद्धहस्त हैं, वाग्बाहुल्य से मानो उसका स्पर्श ही नहीं है, इनके नाटक सुव्यवस्थित, सुसंगठित और चुस्त हैं। पात्रों के संवाद भी नपे–तुले शब्दों मे हैं। पात्र उपयुक्त बातों को चुने हुए शब्दों मे कहना अधिक पसन्द करते हैं। वे अनुपयुक्त

बकवास नही करते। भास संवाद कला के विशेषज्ञ हैं। वे भली भाँति जानते है कि कौन व्यक्ति किस परिस्थिति में क्या कहेगा या क्या करना चाहेगा। वे मनुष्य के अन्तर्द्वन्द को सीधी भाषा में सरलता से व्यक्त कर देते हैं। अतएवं भास के नाटक शास्त्र की दृष्टि से सुबोध, अभिनेय और सरल है।

हर्ष की नाट्यकला -

हर्ष ने अपने रूपकों के मूल कथानक प्राचीन स्रोतो से ही ग्रहण किये हैं। इस प्रकार जहां तक विषय वस्तु का सम्बन्ध है, उन्हे सवर्था मौलिक तो नही कहा जा सकाता किन्तु हर्ष ने अपनी प्रतिभा–चातुरी द्वारा कथानंकों मे नवीन उद्भावनओ को ग्रथित करके उन्हे रोचक तथा लोकप्रिय बना दिया है। उनकी नाटिकाओं का वस्तु विन्यास अत्यन्त प्रतिभाशाली और योजनाबद्ध है। अनवरूद्ध कर्म व्यापारो से युक्त नाटिकाओं में गतिशीलता है। अन्तंपुरो मे आये दिन घटित होनें वाली घटनाओं को कवि ने बड़ी दक्षता के साथ प्रस्तुत किया है।

"प्रियदर्शिका" नाटककार की प्रथम रचना है। यही कारण है कि उसमे हमें हर्ष की नाट्य प्रतिभा का पूर्ण विकास नही दिखाई पड़ता, फिर भी कथानंक में परिवर्तन और अनुरूप दृश्यविधान के द्वारा हर्ष ने उसमें पर्याप्त मौलिकता लाने का प्रयत्न किया है। प्रियदर्शिका में हर्ष ने गर्भाङ्क नाटक की योजना करके जहाँ एक ओर अधिक चारूता और आकर्षण उत्पन्न किया है वही दूसरी ओर अपनी शास्त्रीय वैशिष्ट्य की भी छाप छोड़ दी है। गर्भाङ्क नाटक की योजना का यह अभिनव प्रयोग सर्वथा सफल और हृदयावर्जक रहा है। इससे पूर्व कथा तो प्रतिष्ठित होती है नाटिका के कथनांक के विकास में स्वाभाविक संयोग प्राप्त होता है। हर्ष के नाट्य कौशल को प्रमाणित करने वाली, शास्त्रीय, वैशिष्ट्य से मण्डित " गर्भाङ्क" योजना इतनी

सफल और प्रभावशालिनी रही कि उसका अनुसरण महाकवि भवभूति ने उत्तर रामचरित मे तथा राजशेखर ने बालरामायण में बड़ी ही कुशलता के साथ किया है।

"रत्नावली" हर्ष की श्रेष्ठ रचना है। प्रणय कथा पर आधारित संस्कृत नाटिकाओं मे यह एक अनुपम अद्वितीय कृति है। हर्ष को मात्र रत्नावली ही अमर कर सकती थी। इस नाटिका मे हमे हर्ष के प्रौढ़ कवित्व और अनुपम नाट्य कौशल के दर्शन होते हैं। रंगमंच पर अभिनय के अनुरूप दृश्य योजना तथा परिस्थितियों का निर्माण करने मे नाटककार को पर्याप्त सफलता मिली है। यद्यपि प्रियदर्शिका और रत्नावली के कथानक का ढांचा एक ही है, तथापि हर्ष ने अपनी प्रतिभा और नाट्य कौशल से रत्नावली को चिरनूतन और सवर्था मौलिक बना दिया है। एक ही आधार से युक्त दोनों नाटिकाओं की स्थिति ठीक वैसी है, जैसी की एक ही डाल से लगे हुये दो वृत्तों पर खिले हुये अलग–अलग फूल रंग और रूप मे तो समान हो किन्तु एक की सुगन्ध दूसरे को दबा दे।

नाटकीय दृष्टि से रत्नावली का अपना अलग महत्व है। रत्नावली वस्तुतः नाट्यशास्त्र की रत्नावली ही है। दृश्य काव्य की इस मधुर रचना में नाट्य शास्त्रीय तत्वो का समावेश तथा नियमो का निर्वाह सोने मे सुगन्ध पैदा कर देता है। दस रूपककार को तो रत्नावली के रूप मे वरदान ही मिल गया। नाट्य शास्त्र के नियमों का पूर्णतः निर्वाह करते हुये सभी नाटकीय तत्वों का समावेश करना अपने आप में अत्यन्त गौरवपूर्ण तथा दुष्कर है। यह होते हुये भी नाटिका के साहित्यिक सौन्दर्य में कमी नही आई है। रसाभिव्यक्ति में कोई बाधा उत्पन्न नही हुई है जैसे मृणालदण्डों के छिद्रों में स्थित वस्तुतन्तु कमलिनी के सौन्दर्य के परोक्ष–पोषक होते हैं और उनका पता मृणालदण्ड को तोड़ने पर ही लगता है, ठीक वही इस नाटिका में समाविष्ट, शास्त्रीय तत्वों का है। अर्थ प्रकृतियो, अवस्थाओं, संधियो और संधिअंगों का सांगोपांग निरूपण इतनी सफलता के साथ हुआ है कि कुछ विद्वान यह कहते हैं कि

नाटकीय तत्वों की व्याख्या के लिए इस नाटिका का निर्माण किया गया है । रत्नावली का नाटकीय – गौरव हर्ष की नाट्य कला कुशलता का प्रमाण है।

नाटक मे नारी पात्रों के गीत -

आजकल के नाटककार जहाँ एक ओर स्वाभाविकता की दुहाई देते है वही दूसरी ओर लोकरंजन का बहाना लेकर गीतो की भरमार किये रहते है। इनमे भी कई प्रकार के गीत होते है। कुछ को एक व्यक्ति द्वारा गाये जाते है कुछ तो दो व्यक्ति संवाद के रूप में गाते है, कुछ गीतो को समवेत रूप में मिलकर गातें है, कुछ ऐसे है जिन्हे एक व्यक्ति बोलता चलता है। दूसरे उसके पीछे आवृत्ति करतें चलते है। इनमे संवाद के रूप मे गाये जाने वाले गीत अत्यन्त अस्वाभाविक होते है। यद्यपि अधिकांश जनता उन्हीं को श्रेष्ठकर समझती है।

इन सब गीतो के सम्बन्ध में दो सिद्धान्त निश्चित रूप से समझ लेना चाहिये एक तो " अतिसर्वत्रवर्जयेत्"। किसी भी वस्तु की बहुलता उसका सौन्दर्य नष्ट कर देती है। प्रत्येक वस्तु अपने–अपने स्थान और अवसर पर सुन्दर लगती है। दूसरा यह देखना चाहिये कि जिस स्थान पर गीत अधिक आकर्षक, स्वाभाविक और उपयुक्त हों वहीं उसका विधान करना चाहिये। नाटक के वियोग में नायिका और नायिका के वियोग में नायक का बैठे राग अलापना, परस्पर मिलने पर दोनो का संगीतमय वार्तालाप करना, किसी इष्ट के निधन पर गीत गाकर रोना आदि ऐसे अनुपयुक्त भले ही होता हो किन्तु संगीत और नाट्य कला की हत्या हो जाती है और ठीक उसी प्रकार से रसानुभूति होने में भी बड़ी बाधा पड़ती है। अतः नाटककार को केवल उन्ही गीतो का विधान करना चाहिये जहां वह नाट्य वस्तु की आवश्यकता के अनुकूल हो। अतः उपयुक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते है कि भास तथा हर्ष के नारी पात्र काव्य एवं नाट्य जैसी ललित कला में पूर्ण पारंगत है।

भास तथा हर्ष में समय में विशिष्ट उत्सव समारोहों पर नारी पात्रों द्वारा गाये जाने वाले लय, ताल, मूर्च्छना, आदि से समन्वित रागबद्ध शास्त्रीय गीत तथा प्राकृत मे गाये जाने वाले लोकगीत प्रचिलित थे। कालिदास ने अपनी कृतियों में अनेक स्थलों में गीत शब्द को सामान्यतः सभी प्रकार के गीत के अर्थ मे प्रयोग किया है। कहीं–कहीं हर्ष ने नारी पात्रों का गीत के समान रूप में संगीत का भी प्रयोग करते हुये चित्रित किया है जबकि अन्तर[1] है गीत में केवल कण्ठ संगीत है, जबकि संगीत में गीत के साथ वाद्यादि का प्रयोग होता है। हर्ष के नारी पात्रो द्वारा गाये गये गीतो से भी पुष्ट हो जाता है। यथा मदनिका जो कि चेटी है, कामविह्वल होने के कारण लड़खड़ाती हुयी पादन्यास के साथ बसन्त का अभिनय करती है, तथा नाचती हुई चूतलतिका के साथ बसन्त का अभिनय करती हुयी इधर ही आ रही है। इसी के द्विपदी नामक गीत के अंश[2] को गाती है। नायिका । आरण्यका । बड़े मन से गीत गाती है और साथ में वीणा

---

1. रत्नावली प्रथम अंक पृ0 25, व्या0 डाँ0 राजेश्वर (राजू) शास्त्री मुसलगाँवकर प्रका0 चौ0 संस्कृत संस्थान वाराणसी, प्र0 सं0 वि0 सं0 02054.

   "भवेद् द्विपदिका गीतिर्भरतेन प्रकीर्तिता। युक्ता चतुर्भिश्वरणैस्त्रयोदशकलात्मकैः शुद्धा खडा च मात्रा च सम्पूर्णेति चतुर्विधा द्विपदीकारणाख्येन तालेन परिगीयते।"

2. रत्ना0 1/13, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, प्र0 सं0 1980.

   कुसुमायुध प्रियदूतको मुकुलायित बहुचूतकः।

शिथिलितमानग्रहणको वाति दक्षिण पवनकः ।।"

को भी बजाती है। यथा –[1]

घनबन्धनसंरूद्धं गगनं दृष्ट्वा मानसमेतुम् ।

अभिलषति राजहंसो[2] दयिता गृहीत्वात्मनो वसतिम् ।।

अपि च[3]

अभिनव रागक्षिप्ता मधुकरिका वामकेन कामेन ।

उत्ताम्यति प्रार्थयमाना दृष्टुं प्रियदर्शनं दयितम् ।।

प्राचीन काल में जब कोई नाटक आदि खेला जाता था तो उसमे संगीत का सामंजस्य होना जरूरी होता था, नहीं तो नाटक देखनें या सुनने में रोचक नहीं लगता था। संगीत एक ऐसी कला है, जिसमें व्यक्ति अपने हाव–भाव दुःखों–सुखों के गीतों का झनकार ध्वनि को प्रतिध्वनित कर देता है। महराजा लोग मनोरंजन के लिए वाद्य यंत्रों को सुनते थे या फिर नृत्य आदि का अभिनय करवाते थे।

संगीत कला -

प्राचीन भारतीय विचारकों की दृष्टि में भाषा साहित्य (काव्य) एवं संगीत एक ही विधा के दो अंग हैं, क्योकि संगीत एवं व्याकरण के सुरों के मूल तत्व सूत्र माहेश्वर सूत्र है। नाट्यकला के समान भास तथा हर्ष ने संगीत कला को भी पर्याप्त महत्व प्रदान किया है। ललित कलाओं मे जो स्थान काव्य एवं संगीत को मिला, वह मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला को नहीं। संगीत कला का भी नाट्य कला से घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योकि संगीत के तीनों अंग गीत, वाद्य एवं नृत्य के बिना नाट्य अधूरा ही है तथा भावों की अभिव्यक्ति सशक्त रूप में करने में असमर्थ है यही कारण है कि इन दोनो महाकवियों ने अपनी नाट्यकृतियों मे नाट्य कला के साथ संगीत कला के सभी अंगो का अपने नारी पात्रों में सन्निवेश किया है।

1. प्रियदर्शिका, 3/8, पृ0 64, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, द्वि0 सं0 1976.

2. अ– कु0 सं0 3/25 –" दिग्दक्षिणां गन्धवहं मुखेन व्यलीकनिःश्वासमिवोत्ससर्ज ।"

   ब– प्रियदर्शिका, पृ0 119, टीका0 पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, द्वि0 सं0 1976.

   " आर्यापूर्वार्द्ध द्वितीयमपि भवति यत्र हंसगते।
   छन्दोविदस्तदानीं गीतिं साममृत वाणि भाषन्ते।।"

3. प्रिय0, 3/9, पृ0 65, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, दि0 सं0 1976.

वाद्य -

संगीत शास्त्र के अन्तर्गत वाद्यविदों ने तंत्रीगत वीणादि आनद्ध–अवनद्ध मुरजवरह आदि सुषिर – रन्ध्रयुक्त वंशी आदि तथा धातु निर्मित ध्वनि मंजीर आदि रूपों मे वाद्यों को विभाजित किया है। भास तथा हर्ष ने अपने नारी पात्रों को इनमे से अधिकांश के वादन में सिद्धहस्त चित्रण किया है। ये लोकप्रिय वाद्य अधोलिखित है:–

तंत्री (तत) वाद्य -

सामान्यतः इसमे वीणा नाम प्रयुक्त है। यद्यपि संगीत दामोदर ग्रन्थ में 29 प्रकार की वीणाओं का आकार प्रकार के अनुसार उल्लेख हुआ है। प्रायः सभी वाद्यों मे जो ध्वनि निकलती है उसमे एक विशेष प्रकार की गूंज होती है। यह धीरें–धीरे कम हो जाती है। घोषवती का स्वर इसकी दिव्यता के कारण अत्यन्त कर्णप्रिय था। अतएव उसके स्वर से हाथी वश मे हो जाते थे। घोषवती के इस गुण का उल्लेख इस प्रकार है–

[1]श्रुतिसुखमधुरा स्वभावरक्ता करजमुखोल्लिखिताग्रघृष्ट तन्त्री।

ऋषिवचनगतेव मन्त्रविद्या गजहृदयानि बलाद्वशी करोति ।।"

वासवदत्ता बीणा बजाते–बजाते थक जाती है यथा–[2]

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्व निपीडितानि खेदस्यनान्तर सुखान्युपगूहितानि।

उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि।।

उदयन वासवदत्ता विषयक प्रसंगो को याद करते हुए कहता है।[3]

अनेक बार वीणा शिक्षण के समय अनुरागवश वासवदत्ता एकटक मुझे देखती थी। उसका ध्यान वीणा से हटकर मुझ पर केन्द्रित हो जाता था।

हर्ष की नाटिका में आरण्यका कांचनमाला को उपदेश देती है कि मेरी वीणा उठा लाओ जब तक मै तारों का परीक्षण करूँ – ''कांचनमाला वीणामर्पयति। आरण्यकोत्सङें. वीणां कृत्वासारयति। काञ्चनमाले, तिष्ठतु वीणा प्रक्ष्यामि तावत्किमपि।[4]

---

1. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, 2/12, प्रका0 चौ0 विद्या भवन, वाराणसी, ले0 कपिल देवगिरि।
2. स्वप्नवासवदत्तम्, 6/2, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0सं0 1972.
3. स्वप्नवासवदत्तम्, 5/6, ''बहुशोऽप्युपदेशेषु यया मामीक्षमाणया।

   हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ।।''
4. प्रिय0 पृ0 78, व्याख्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, प्र0 सं0 वि0 सं0 2035.

आरण्यका–सत्यमेव, मन्त्रयते तातः ? यथा – यदि वीणां वाद्यन्नहरति मां वत्सराजस्तातोऽवश्यं बन्धनान्मुञ्चामि।[1]

वाद्य विधि -

बजाने के ढंग को वाद्य विधि कहते हैं। इसके तीन भेद होते हैं– तत्व, ओघ और अनुगत –

त्रिविधं वैणवं वाद्यं कर्तव्यं गीतसंश्रयं तज्ज्ञैः।

तत्वं तथानुगतमोघश्चानेक – करणं संयुक्तम्।।

इस वाद्य में शास्त्रीय गान और वाद्य विधान का वर्णन कर कवि ने अपनी संगीतशास्त्र विषयक प्रवीणता प्रदर्शित की है। संगीत का इतना सूक्ष्म ज्ञान न रखने वाले सर्वसाधारण के लिए यह स्थल कुछ दूरूह अवश्य हो गया है। यह पद्य इसी कवि की कृति "नागानन्द" नाटक मे भी मिलता है।[2]

---

1. प्रियदर्शिका, तृतीय अंङ्क, पृ0 81, व्याख्याकार रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, प्रथम संस्करण, वि0 सं0 2035.
2. नागानन्द, 1/15.

निम्न पद्य में संगीत शास्त्र के कतिपय परिभाषित शब्द आये है[1] –

व्यक्तिर्व्यञ्ज[2]नधातुना दशविधेनाप्यत्र लब्धाधुना

विस्पष्टो द्रुतमध्यलम्बितपरिच्छिन्नस्त्रिधायं लयः[3]।

गोपुच्छप्रमुखाः क्रमेण यत[4]यस्तिस्रोऽपि संपादिता

स्तत्त्वौघानुगताश्च वाद्यविधयः[5] सम्यक्त्रयोदर्शिताः।।

उपर्युक्त पद्य का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है –

1. प्रियदर्शिका, 3/10, पृ0 66, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी, द्वि0सं0 1976.

2. प्रियदर्शिका, प्रका0 चौ0 वाराणसी, प्र0 सं0 वि0 सं0 2035, पृ0 157– व्यंजन धातुः – व्यज्जयति विशेषानिति व्यंञ्जनः। धातुः वाद्य वादन रीतिः। बाजा बजाने की रीति को 'धातु' कहते हैं। वह चार प्रकार का होता है– विस्तार, करण, आविद्व और व्यंञ्जन। उनमें व्यंञ्जन के दस प्रकार होते हैं– कल, तल, निष्कोटित, उन्मृष्ट, रेफ, अवमृष्ट, पुष्प, अनुस्वनित, बिन्दु और अनुबन्ध।

" विस्तारः करणश्चैव ह्वाविद्धौ व्यजंनस्तथा।

चत्वारो धातवो वादित्रकरणा।।"

" व्यञ्जन धातुर्ज्ञेयः कलबलनिष्कोटितान्यथोन्मृष्टम्।

रेफावमृष्टपुष्पानुस्वनितं बिन्दुरनुबन्धः।।" (नाट्यशास्त्र)

3. लय :– "तालान्तरालवर्ती कालो जयः।" तालों के बीच के समय को लय कहते हैं। इसके तीन प्रकार होते हैं– द्रुत, मध्यं और विलम्बित।

" तालान्तरालवर्ती यः कालो लय उच्यते।

विविधः स च विज्ञेयो द्रुतो मध्यो विलम्बितः।।"

4. यति :– तालानां विरामोयतिः। तालों के विराम को यति कहते हैं। इसके भी तीन भेद होते हैं– समा, स्रोतोवहा और गोपुच्छा–

" तालच्छन्दोविरतिविषये वावते यो विरामः

वाद्यैर्हीनः श्रवणसुभगो नामतः सा यतिः स्याव।

समा स्रोतोवहा चैव गोपुच्छा चेति सा त्रिधा।"

5. वाद्य विधि :– बजाने के ढंग को वाद्य विधि कहते हैं। इसके भी तीन भेद होते हैं–

" त्रिविधं वैणवं वाद्यं कर्तव्यं गीत संश्रयं तज्ज्ञैः।

तत्वं तथानुगतमोधश्चानेक करणं संयुक्तम्।।"

सुषिर वाद्य -

सुषिर अर्थात् रन्ध्रयुक्त वाद्यों में शंख, श्रृंग, कीचक एवं वंशी आदि वाद्य आते हैं। भास व हर्ष ने अपने नाटकों में सुषिर वाद्य यंत्रों का प्रयोग नहीं किया है।

अवनद्ध वाद्य -

सभी प्रकार के वाद्य जो चर्म से मढ़े हुए बजते हैं जैसे– ढोलक, तबला, नगाड़ा आदि आनद्ध अथवा अवनद्ध वाद्य कहलाते हैं। इन वाद्यों का प्रयोग अर्वाचीन काल से हमारी संस्कृति में किये जाने से भास तथा हर्ष के समय भी इन वाद्यों के प्रयोग की सम्भावना से इनकार नही किया जा सकता है।

नृत्य कला -

नृत्य । ताललयाश्रित । नृत्य । मायाश्रित । एवं नाट्य भावरस अभिनय से समन्वित नाट्य कला से संगीत कला को समग्रता या पूर्णता प्राप्त होती है। हर्ष ने नृत्य कला को परिपूर्ण रूप में प्रस्तुत करने के लिये प्रायः इन तीनों अंगो नाट्य, नृवत एवं नृत्य का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है। राजा के आमोद–प्रमोद अथवा पुत्र के जन्मोत्सव पर नृत्य कला में निपुण नर्तकियाँ नृत्य किया करती थीं। हर्ष के रत्नावली नाटिका में स्त्रियाँ नाचती भी हैं। यथा[1] –

कुसुमायुध प्रियदूतको मुकुलायित बहुचूतकः।

शिथिलितमानग्रहणको वाति दक्षिण पवनकः।।

दोनों चेटियाँ । रमणीं । नृत्य में इतनी मस्त हैं कि इन्हे अपने तन–बदन का होश नहीं है। उसी नृत्य का वर्णन करते हुए नृपति कहते हैं। यथा[2] –

स्रस्तः स्रग्दामशोभां त्यजति विरचिता माकुलः केशपाशः

क्षीबायां नूपुरौ च द्विगुणतरमिमौक्रन्दतः पाद लग्नौ।

व्यस्तः कम्पानुबन्धादनवरतमुरो हन्ति हारोऽयमस्याः

क्रीडन्त्याः पीडयेव स्तनभरविनमन्मध्यभङ्गानपेक्षम्।।

---

1. रत्नावली, 1/13, पृ0 22, व्या0 पं0 परमेश्वरदीन पाण्डेयः, चौ0 सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, चतुर्थ सं0 1989.
2. रत्नावली, 3/16, व्या0 पं0 रामशंकर त्रिपाठी, दि0 सं0 1976.

उपर्युक्त श्लोक को पढ़कर यह आभास हो रहा है कि रमणी काम भावना की चाह को पूरा न कर सकी इसी कारण उसने थोड़ी सी मदिरा का सेवन किया है और बसन्त का समय होने के कारण उसके हृदय में काम केलि कर रहा है। इस लिए वह मतवाली हो गयी है तथा विशाल पयोधरों के भार से नम्र हो जा रही है। फिर भी कटि प्रदेश के टूटने की चिन्ता को छोड़कर खूब नाच रही है। इस कारण उसका केशपाश ढीला हो गया है और कुछ–कुछ उसमें बिखराव आ गया है और अलंकृत करने वाली पुष्पमाला टूटकर गिर गयी। इसलिये केशकला की शोभा क्षीण हो रही है। मतवारी, अवस्था में नर्तन के कारण इस रमणी के नूपुर दुगनी आवाज कर रहे हैं तथा हृदय की शोभा को वर्द्धित कर रहा है।

चित्रकला -

प्रायः चित्रकला का आधार समतल पट । कपड़ा, कागज, काष्ठ आदि । रहता है। जिसपर नारी या पुरूष चित्रकार अपनी तूलिका से विविध प्रकार की वस्तुयें एवं जीवों का स्वरूप अंकित करता है। समतल धरातल पर अपनी शलाका या तूलिका से सूलिता, न्यूनता, निकटता, दूरी आदि स्वाभाविक एवं सजीव रूप में प्रकट करना ही उस नारी या पुरूष चित्रकार की प्रतिभा एवं कला निपुणता का परिचायक है। उसके मानसिक भावो को रसो, धटनाओं या विशिष्ट व्यक्ति स्वरूपों का सजीव रूप में चित्रित करने में ही उसकी सर्वाधिक सफलता प्रकट होती है।

काव्य, नाट्य एवं संगीत कला के समान चित्रकला भी नारी अथवा पुरूष के आन्तरिक मनोभावों को अभिव्यक्त करने का सुन्दर एवं सशक्त साधन है। भास तथा हर्ष के नारी पात्रों की काव्य नाट्य, नृत्य, संगीत में जितनी अभिरूचि है उतनी ही चित्रकला में भी अभिरूचि और विशिष्टिता प्रकट होती है। इन दोनो महाकवियों के समय समाज में चित्रकला के प्रति जितनी

अभिरूचि और आदर भावना व्यक्त थी; इसका पता इस वत्सदमों में नारियाँ भी जाकर चित्र रचना करने या उसे देखने में प्रवृत्त होती थीं।

भास के स्वप्नवासवदत्तम् नाटक में विवाह के समय का चित्रांकन ।राजा व वासवदत्ता का । धाय राजा को दिखलाते हैं जिसको देखकर पदमावती यह समझ जाती है कि यह चित्र वासवदत्ता का ही है जिस पर वह उदयन से कहती है, जैसा इस चित्र में अंकित है इसी प्रकार की स्त्री यहाँ रहती है। राजा कहता है कि क्या वासवदत्ता जैसी अगर है तो शीघ्र दिखलाओ –[1]

यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तमन्या भविष्यति।

परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता ।।

हर्ष के रत्नावली नाटिका में नायिका । सागरकि। चित्रकला में बड़ी निपुण है यहाँ तक कि वह अपनी सखी सुसंगता को अकेला छोड़कर स्वयं ही रंगो की पेटी तूलिका आदि सामान को लेकर कदली गृह में चली जाती है। कामावस्था का अभिनय करने के कारण उसका हृदय बड़े जोरों से धड़कने लगता है– [2]

सागरिका –। निःश्वस्य । हृदय, प्रसीद, प्रसीद[3] । किमनेनायास मात्रफलेन दुर्लभजन प्रार्थनानुबन्धेन[4] । अन्यच्च यैनेव दृष्टेन त ईदृशः सन्तापो ननु[5] वर्धते तमेव पुनरपि प्रेक्षितुमभिलष सीत्यहो मे मूढ़ता। कथं चातिनृशंस जन्मतः प्रभृति सह संवर्धितमिमं जनं परित्यज्य क्षणमात्रदर्शनपरिचितँ जनमनुगच्छन्न लज्जसे। अथवा कस्तव दोषः अनग्ड़शरपत नभीतेन त्वैमद्य व्यवसितम्। (सास्रम्) अनंङ्ग. तावदुपालप्स्ये। (अंजलिं बद्ध्वा) भगवन्कुसुमायुध निर्जितसकल सुरासुरो भूत्वा स्त्रीजनं प्रहरन्कथं न लज्जसे। (विचिन्त्य) अथवा अनंग्ड़ऽसि। (दीर्घ निःश्वस्य) सर्वथा मम मन्दभागिन्या मरणमेवानेन दुर्निमित्तेनोपस्थितम्। (फलकमवलोक्य) तद्यावन्न कोऽपिह्वागच्छति तावदलेख्य समर्पितं तमभिमतं जनं प्रेक्ष्य यथासमीहितं करिष्यामि।

(सावष्टम्भमेकमना भूत्वा नाट्येन फलकं गृहीत्वा निःश्वस्य) यद्यपि मेऽतिसाध्वसेन वेपतेऽयमतिमात्रमग्रहस्तस्तथापि नास्ति तस्य जनस्यान्यो दर्शनोपाय इति यथा तथा लिख्यैनं प्रेक्षिष्ये। (इति नाट्येन लिखति)

---

1. स्वप्न0, षष्ठ अंड्ड, पृ0 158, व्या0 श्री शेषराज शर्मा रेग्मी, चौ0 सुर भारती प्र0 वाराणसी ।
2. दशरू0 1/32, प्रतिमुख सन्धि का भेद "विलासरत्यर्थेहा विलासः स्याद"।
3. अ0को0 – "दोषोत्पादेऽनुबन्धस्यात् प्रकृत्यादिविनश्वरे"।
4. अ0को0 – "ननु प्रश्ने प्रश्नावधारणानुज्ञानुनया मंत्रणे ननु।"
5. उ0रा0 5/34, शूर स्त्री पर प्रहार नही करते हैं। राम ने स्त्री पर प्रहार किया था। लव ने उसका उपहास किया था–

   "सुन्दरस्त्रीमथनेऽप्य कुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते।"

तदन्तर सुसंगता प्रवेश करती है और कहती है–[1]

सुसंगता – एततत्कदलीगृहम्। तत्प्रविशामि (प्रविश्याग्रतो विलोक्य सविस्मयम्) एषा मे प्रिय सखी सागरिका किं[2] पुनरेषा[3] गुरूकानुरागोत्क्षिप्तहृदयेव किमप्यालिखन्ती न मां प्रेक्षते। भवतु। तद्यावदस्या दृष्टिपथं परिहृत्य निरूपयिष्यामि किमेषाऽऽलिखतीति। (स्वैरं पृष्ठतोऽस्यां: स्थित्वा दृष्टतवा सहर्षम्) कथं भर्ता लिखितः। साधु सागरिके, साधु। अथवा न कमलाकरं वर्जयित्वा राजहंस्यन्यत्राभिरमते।

सागरिका – आंखो मे आंसू भरकर[4] चित्र को छिपाती हुई कहती है क्या सखि सुसंङ्ता है?

सुसंगता– चित्र को देख लेती है और पूंछती है इस चित्र पर किसको अंकित किया है?

साग0– (सलज्जम्)[5] सखि, प्रवृत्तमदनमहोत्सवे भगवाननङ्ग।

सुसं0– (सस्मितम्)[6] अहो ते निपुणत्वम्। किं पुनः शून्यमिवैतच्चित्रं प्रतिभाति। तदहमप्यालिख्य रतिसनाथं करिष्ये।

साग0– (विलोक्य सासूयम्) सुसंगते कस्मात्वयाहमत्रालिखिता।

सुसं0–(विहस्य) सखि, किमकारणं कुप्यसि?

यादृश्यस्तवया कामदेव अलिखितस्तादृशी मया रतिरालिखिता।

तदन्यथासम्भाविनि किं तवैतेनालपितेन। कथम तावत्सर्ववृतान्तम्।

---

1. रत्नावली, द्वितीय अंक, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्र0 सं0 1980, वाराणसी, पृ0 59.
2. मेदिनी– "किं शब्दों त्र वितर्कः किंकुत्सायां वितर्के च."
3. पुनर्पि– "वाक्यालंकारणम्"
4. सा0द0 3/139, सात्विक विकार है– "अश्रुनेत्रोद्भवंवारिक्रोधदुःखप्रहर्षणम्।"
5. फलक छिपाने पर भी जान ली गई है, इसलिए लज्जा हुई।
6. मुझे भी ठग रही हो इसलिए मन्दहास किया।

राजा के हाथ मे सागरिका के द्वारा बनाया गया चित्रपट हाथ लग जाता है, उसको बड़े ध्यान से देखकर कहते हैं–[1]

लीलावधूतपद्मा[2] कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः।

मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव[3] ।।

चित्रकला के उपकरण -

शुष्क एवं आर्द्र चित्रों के उल्लेख के आधार पर चित्र को तैयार करने में तूलिका ।ब्रुश। तथा वर्तिका ।रंगीन पेन्सिल। उपकरण रूप में प्रयुक्त होती थीं। शलाका भी वर्तिका जैसी चित्र की रूपरेखा बनाने मे प्रयुक्त होती थीं। कूर्च तूलिका की तरह ही ब्रुश या जो आकार मे लम्बे और छोटे दो प्रकार के होते थे। चित्र में रंग भरने के लिए बालों वाले कूचों या तूलिकाओं का ही प्रयोग किया जाता था।

जिस पेटिका में चित्रकला के विविध उपकरण, रंग, वृत्तिकायें, कूर्च आदि रखे जाते थे उसे "वर्तिका बण्ड" कहा जाता था। यह वर्तिका रंग पेटिका से भिन्न नही कही जा सकती है। सामान्यतः स्त्री या पुरूष चित्रकार चित्रों के समतल भित्ति पटल, बस्त्र अथवा कागजों पर बनाते थे। चित्र की बाहरी रूपरेखा को बनाने के लिए काली पेन्सिल जैसी सलाका अथवा धातु रंगीन[4] वृत्तिका या प्रस्तर खण्ड प्रयुक्त होता था। चित्र की बाहरी रूपरेखा बनाने के बाद साधारणतः शुष्क वर्तिका या पीले रंगों । वर्णराग । से उसे रंगा जाता था।

---

1. रत्नावली, 2/9, ले0डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, प्र0सं0 1980,पृ0 89.
2. दशरू0 – 2/37, "प्रियानुकरणं लीला मधुराग्ड़विचेष्टितैः।"
   भा0प्र0पृ0 9 – " प्रियानुकरणं लीला।"

3. अ० को० 2—5—24 — "राजहंसास्तु ते चचुचरणैर्लोहितैसिता।"

भा०वि० 1/13, "नीरक्षीर विवेक हसालस्यं त्वमेव तनूषे चेत्।

विश्वे स्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः।।"

4. उ०मे० 47 टीका० — "त्वमालिख्य प्रणय कुपितां धातुरागैः"

शिलायाम् टीकाकार मल्लनाथ के अनुसार — "धातुराग" मे गौरिक एवं अन्य धातुयें आतीं हैं— "धातुर्वातादि शब्दादि गौरकादि त्वमादिषु इति यादवः।"

प्रत्यग्रवर्णयुक्त गीले चित्रों को सूखने के लिए लटका दिया जाता था जिससे वह बिगड़े नही। चित्र में सजीवता तथा आकर्षण लाने के लिए रंगों की बहुत उपयोगिता थी जिनमें लाल, पीला, बभ्रु । भूरा । आदि रंगों का समिश्रण उसमें अनुपम सौन्दर्य सम्बन्धित करता था। अनुकूल और आकर्षक सहज रंग को समुचित रूप से भरा जाना ही चित्र के सौन्दर्य की वृद्वि में सहायक था। जिस समतल वस्त्र अथवा कागज पर चित्रांकित किया जाता था उसे सम्यक रूप से बनाने के पूर्व चित्रफलक पर समारोपित कर लिया जाता था जिससे सलवटें न पड़कर चित्र का आकार स्वाभाविक अंकित हो सके। यह चित्र फलक प्रायः चौकोर हल्का समतल काठ का तख्ता होता था।

चित्रों के प्रकार -

भास तथा हर्ष ने अपनी कृतियों मे अनेक प्रकार के चित्रों का स्पष्ट संकेत नही किया है जिनमें सामूहिक चित्र, व्यक्तिगत चित्र, वस्तु चित्र स्मरण शक्ति से निर्मित चित्रादि विशेष रूप से उल्लेखनीय होते हैं।

मूर्तिकला, वास्तु एवं स्थापत्य कला -

मूर्तिकला, वास्तुकलागत अनेक सन्दर्भ हर्ष तथा भास की कृतियों में प्राप्त होते हैं। वास्तुकला के पारंगत पात्रों का विद्यमान होना तथा कुशल शिल्पी संघ द्वारा कौशल की राजधानी का कायापलट हो जाना तद्‌युगीन विकसित वास्तुकला का परिचायक है।

समीक्षा -

समाज में प्रायः पुरूषों की अपेक्षा नारियां स्वभाव से ही ललित कलाओं में असाधारण अभिरूचि और दक्षता रखती हैं। यही कारण है कि भास व हर्ष की नाट्य काव्य कृतियों में अनेक नारी पात्र नृत्य, नाट्य, काव्यगीत, वाद्य । संगीत । चित्रादि विविध ललित

कलाओं मे शून्य दृष्टिगत नही होते हैं। उनकी वासवदत्ता, पद्मावती जैसी नायिकाओं के अतिरिक्त मधुकरिका, पद्मिनिका जैसे नारी पात्र, नृत्य, गीतिमय, संगीत, चित्रकला आदि में पूर्ण पारंगत पाये जाते हैं। जहाँ रत्नावली मे सागरिका नृत्य, नाट्य, गीति के साथ संगीत एवं शिल्पादि में अद्वितीय चित्रित है। वहाँ मौलिक काव्य रचना चित्र एवं ललित कला – विधान हर्ष की सागरिका और आरण्यका कम निपुणता नहीं रखतीं।

दोनों महाकवियों की कृतियों मे चित्रित नारी पात्रों की उपर्युक्त ललित कला में जहाँ उपयोगिता के साथ वैयक्तिक अभिरूचि को परिपोषित करती हैं, जहाँ विरहावस्था में अपने प्रियतम की मिलन कामना के लिए मनोभावों की मार्मिक अभिव्यक्ति के माध्यम के साथ ही ये अनेक मनोविनोद का भी सुन्दर साधन बनती हैं। यही इन ललित कलाओं की मानवीय संवेदनाओं, सुकुमार भावों की सुन्दरतम अभिव्यक्ति की दिशा में परम सार्थकता है।

पंचम अध्याय

नारी वेशभूषा (प्रसाधन एवं अलंकारों) का

तुलनात्मक अध्ययन

पंचम अध्याय

नारी वेशभूषा ।प्रसाधन एवं अलंकारों । का तुलनात्मक अध्ययन -

भारतीय संस्कृति मानव जीवन के सर्वांग विकास हेतु पुरूषार्थ चतुष्टय । धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। को संतुलित रूप में ग्रहण करती है। अपने आसपास के परिसर आवासीय स्थान के अतिरिक्त अपने आपको वेशभूषा, साजसज्जा से अलंकृत रूप में प्रस्तुत करने की मानवीय मूल प्रवृत्ति ''सौन्दर्य प्रतिष्ठा'' इसी कामवृत्ति की ही परितृप्ति है जो पुरूषों की अपेक्षा नारियों मे अधिक विद्यमान होती है। भास तथा हर्ष के नारी पात्रों मे यह सौन्दर्य प्रतिष्ठा की प्रवृत्ति सर्वांग समन्वित है जिसे सुन्दर एवं विराट प्रकृति के माध्यम से प्राप्त कर देशकाल पात्रानुरूप विविध वस्त्रालंकारों एवं सौन्दर्य प्रसाधनों से अपने आपको अलंकृत रूप में प्रस्तुत किया है। नारी की विशिष्टतायें उनकी वेशभूषा, प्रसाधन एवं अलंकरणों से प्रतिबिम्बित होती हैं।[1] व[2]

1- The women characters are to be presented in bright, richly decorated dresses with bridle on their loins, anklets with tinkling bells (Kinkim) and with facinathing ornaments their feet, toes, arms, fingers, and marks of presents on their feet, hands, preasts and forehead.

2- The Naga women should be distinguished with the insisrua of head, the vidyadhara girls with their variesated dresses and presentation of partial lunar diso in the plait of their hair. The yaksis become remarkable by their long crest (sikha). Censerts of the divine sages have a single breid of hair and their garments and arnaments are of syiven choice.
(Laws and Practice of sanskrit Drama Dr. B.N. Shastri, P. 329)

भास ने अपने नाटकों में नारी सौन्दर्य का अतीव सुन्दर वर्णन किया है। यहाँ तक कि जब लड़की का स्वयंवर होने को होता है तो उनमें स्वाभाविक रूप से सौन्दर्य झलकने लगता है जैसा कि पद्मावती के मुख की सुन्दरता उसकी सखी इस प्रकार करती है –[1]

"नहि नहि, हला! अधिकमद्य शोभते। अभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि[2] ।"

रूप, शील और माधुर्य की पद्मावती में कमी नही है। उदयन इन गुणों के कारण उसे बहुत मानता भी है, पर उसका मन आज भी वासवदत्ता में अटका हुआ है। पद्मावती वहां उसके मन को हटा नही पा रही है। भास ने इस नाटक के किसी भी पात्र के बुरे पहलू को कभी सामने नही आने दिया है। सभी पात्र सर्वांगीण रूप में उच्चस्तर के है। विशेषता यह है कि ये मनुष्य हैं। परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि उनमें परस्पर द्वेष एवं ईष्या होती तो कुछ अस्वाभाविक नही होता पर भास सभी कुछ सुन्दर बना कर प्रस्तुत करते हैं। यथा[3] –

"पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः।

वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ।।"

। अर्थात् मरणोपरान्त वासवदत्ता के प्रति अगाथ प्रेम का प्रदर्शन महराज उदयन की उदारता का परिचायक है। ।

हर्ष ने नारी के सौन्दर्य की प्रतिष्ठा तथा सार्थकता असाधारण रूप मे अभिव्यक्त की है। हर्ष की दृष्टि मे उस नारी का सौन्दर्य श्रेष्ठ एवं सार्थक है, जो अपने पति को आनन्द कर उससे प्रशंसा और प्रेम प्राप्त कर सके। वस्तुतः सच्चे सौन्दर्य के लिये अथवा सागरिका, आरण्यका, वासवदत्ता आदि निसर्गतः सुन्दरियों में रूप की पावनता, सुकुमारता, शालीनता ही कवि को अभीष्ट प्रतीत होती है।

---

1. स्वप्न0 द्वि0 अंक, व्यां0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास द्वि0 सं0 1972.

2. स्वप्न0 द्वि0 अंक, व्यां0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास द्वि0 सं0 1972 पृ0 138.

प्रेमी पति के समीप से पत्नी को जो प्रसन्नता होती है; उसी की अभिव्यक्त में उसका सौन्दर्य खिल उठता है। विवाह से पहले कल्पना में पद्मावती उदयन को सदा अपने समीप अनुभव कर रही है। इसी कारण उसके सौन्दर्य में निखार आया है।

3. स्वप्नवासवदत्तम्, 4/4, टीका0 गणेश दत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, प्र0 सं0 1968.

नैसर्गिक सौन्दर्य का मूल्यांकन करते हुये भी हर्ष ने नारी सौन्दर्य निरूपण में निसर्ग के उपमानों के आलोक में नख से शिख तक सर्वांग वेशभूषा, नेत्र लोभ । वरोनियों। अधर, दशन, मुखगन्ध, मुखबिम्ब, वाणी, बाहु, पयोधर, नाभि, कटि, त्रिवलय, नितम्ब, जघन, नख, चाल, मुद्रा, वर्ण आदि का सुन्दर चित्रण किया है। किन्तु भास ने नारी सौन्दर्य निरूपण में हर्ष के समान नख–शिख सर्वांग बाह्य सौन्दर्य का चित्रण न कर उसके गुणगत अन्तः सौन्दर्य का प्रभावी रूप से रेखांकन किया है। हर्ष का नारी सौन्दर्य चित्रण इस प्रकार है। यथा –[1]

देवि[2] त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा

पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसागच्छन्ति विच्छायताम्।

श्रुत्वा त्वत्परिवारवारवनितागीतानि भृङ्गाङ्गना

लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः सञ्जातलज्जा इव ।।"

स्त्री चाहे जितनी ही कुरूप क्यों न हो पद उसमें कुछ ऐसी खास चीजें भगवान ने विद्यमान कर दी है कि वह अपने आप में सुन्दर लगने लगती है; पर यहां पर तो वासवदत्ता अधिक दुर्बल होने पर भी वैसी ही शोभनीय लगती है[3]। नारी पात्रों की सौन्दर्य प्रतिष्ठात्मक प्रवृत्ति को कोशिश करने का परिचय हमें इसी तथ्य से प्राप्त होता है कि ये विविध प्रकार के वस्त्रालंकार प्रसाधन पूर्ण वेशभूषा[4] से अपने आप को समाज अथवा दर्शकों के सम अलंकृत रूप में प्रस्तुत करते हैं।

---

1. रत्नावली, 1/25, पृ0 40, टीका0 पं0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 वाराणसी।
2. अ0को0 1/6/13 – " देवि कृताभिषेकायाम्।"
3. प्रियदर्शिका, चतुर्थ अंक, पृ0 151, ले0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी, शास्त्री, चौ0 अमर भारती प्रका0 वाराणसी, प्र0 सं0 वि0 सं0 2035.

वासवदत्ता उपवास नियम परायण है अतएव उसने सभी अलंकारों को हटा दिया है। उसने केवल मण्डन के रूप में मंगलसूत्र को ही धारण कर रखा है, क्योकि उसे सौभाग्य सूचक होने के कारण हिन्दू स्त्री ब्रतादि में भी त्यागना उचित नही समझती है। मंगलसूत्र उस शुभ डोर को कहते हैं जिसे सौभाग्यवती स्त्रियां तब तक अपने गले मे पहने जब तक उनका पति जीवित है।

4. प्राचीन वेशभूषा, डा0 मोतीचन्द्र, भूमिका, पृ0 9, अध्याय 4, पृ0 56.

भास तथा हर्ष के नारी पात्रों के वेशभूषा । वस्त्र, अलंकार, सौन्दर्य, प्रसाधन आदि। का अनुसंधान पूर्ण तुलनात्मक अध्ययन किया जा रहा है–

वस्त्र -

भोजन ।खान–पान। के पश्चात् वस्त्र; द्वितीय मानवीय आवश्यकता के अन्तर्गत हैं। वस्त्र के पहनावे से तत्कालीन क्षेत्र व समय की नारी के अनेकानेक लक्षण स्पष्ट होते हैं।[1] विभिन्न महाकवियों की कृतियों में वर्णित प्रमुख वस्त्रों की अतिसूक्ष्म जानकारी निम्नवत् प्रस्तुत की जा रही है–

क्षौम -

यह अत्यन्त महीन एवं सुन्दर वस्त्र था, जिसे डा० मोतीचन्द्र क्षमा अर्थात् अलसी से निर्मित मानते हैं। चीनी भाषा में "छन्म" एक प्रकार की घास के रेशों से तैयार वस्त्रों के लिए पुरातन नाम था जो वाण के समकालीन एवं उनसे पूर्व आसाम, बंगाल आदि पूर्वी प्रान्तों में प्रयुक्त होता था क्योंकि आसाम के कुल भाष्कर वर्मा ने सम्राट हर्ष के लिए क्षौम वस्त्र का उपहार भेजा था।[2] भास तथा हर्ष की उदयन नाट्य कृतियों में क्षौम वस्त्र का उल्लेख नही है।

कौशेय -

यह सामान्यतः रेशमी वस्त्र के रूप में प्रयुक्त हुआ है। डा० मोतीचन्द्र के मतानुसार कौशेय वस्त्र का निर्माण कोशकार देश में होता था। हर्ष के नाटकों में रेशमी वस्त्र ।कौशेय। का प्रयोग कहीं–कहीं पर किया गया है।

---

1. The made of wearing garments should be adopted in accordance with the usual practice of the ladies of that province; Then again the description of characters should also take notice of the constitutional feactures of the iedies of different provinces, for instance, The women of Magadha should be described with Prominent brests of Kalinga with beautiful eyes of Anga with long Arms, and of Benga, with delicate feet.

   (Laws and Practice of sanskrit Drama, Dr. S.N. Shastri, Page 331)

2. डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ0 76, हर्ष चरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन।

वासवदत्ता विदूषक को दान में कर्ण के आभूषण के साथ–साथ कौशेय भी प्रदान करती है।[1]

कौशेय - पत्रोर्ण -

यह भी कौशेय अर्थात रेशम मिश्रित ऊनी वस्त्र प्रतीत होता है जिसका वैवाहिक मंगलमय शुभ अवसरों पर वर–वधू के द्वारा धारण किये जाने का प्रायः प्रचलन पुरातन काल में रहा होगा। कौशेय रेशम से मिलकर आजकल की तरह बनने से यह सुन्दर, चिकना एवं शरीर पर न चुभने वाला होने से विशेष आर्कषक समझा जाता था।

पत्रोर्ण -

ऋग्वैदिक काल से ऊनी वस्त्रों का प्रयोग होता रहा है, सिन्धु तट एवं उसकी सहायक नदियों के ऊन वाली भेंड़ें अधिक होती थीं। अतः डा0 कैलाश नाथ द्विवेदी के मतानुसार[2]– "भेंड़ों के साथ नदी का यह वैशिष्ट्य युक्त अभिधान "ऊर्णवती " ऋग्वेद में 1/67/3 मे वर्णित प्रयुक्त हुआ है। "डा0 मोतीचन्द्र[3] की अवधारण है कि नामवृक्ष, वकुल एवं तटवृक्षों की छाल से निकले रेशे से पत्रोर्ण को निर्मित किया जाता था, जिसका रंग क्रमशः पीला, गेहुंआ, श्वेत । मक्खन के समान धवल उज्जवल। होता था। नागवृक्ष से निकाले रेशे से बना पत्रोर्ण पीला, लिकुच का बना गेहुंआ तथा वकुल का बना यह श्वेत रंग का होता है। गुप्त काल में पत्रोर्ण धुला हुआ अत्यन्त मूल्यवान रेशमी वस्त्र था जिसे डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल[4] उनके स्थान पर इसे रेशमी स्वीकार करते हैं। जिसे टीकाकार क्षीर स्वामी ने कीड़ों के तार से वट लकुच के पत्तों पर समुत्पन्न –

---

1. रत्नावली, चतुर्थ अंक, पृ0 130, टीका0 पं0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 1976 वाराणसी – " अन्यच्च, एत्पट्टांशुकयुगलं कर्णाभरणं च दत्तम्" ।

2. ऋग्वैदिक भूगोल – डा0 कैलाशनाथ द्विवेदी , कानपुर 1984, डी0 लिट0 शोधग्रन्थ कादम्बिनी, भास दिगम्बरे, 1985– "ऋग्वैदिक भूगोल"

   डा0 कैलाशनाथ द्विवेदी शोध लेख, पृ0 187–188.

3. प्राचीन वेशभूषा, डा0 मोतीचन्द्र, पृ0 9,55.

4. हर्ष चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन – डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल, 76–77 क्षीर स्वामी – "लकुचवटादि पत्रेषु क्रमितालोर्णाकृतं पत्रोर्णम।"

बताया है। अतः डा0 मोतीचन्द्र भी इनकी पत्तियां खाने वाले रेशम के कीड़ो से उत्पन्न जंगली रेशमी इसे मानते हैं। आज भी विवाहोत्सव के समय वर–वधू का कौतुक हस्तसूत्र । कंकन । ऊन से निर्मित किया गया धारण करते हैं। पवित्रता तथा शुद्धता की दृष्टि से भास व हर्ष के समय भी विवाह के अवसर पर वर–वधू द्वारा पत्रोर्ण के पहनने का प्रचलन रहा होगा, किन्तु उसका उल्लेख उनके नाट्य ग्रन्थों में नही है।

अंकुश -

यह अत्यन्त हल्का महीन रेशमी वस्त्र है जिसका उपयोग ग्रीष्म, वर्षा, शरद, बसन्त ऋतु में अधिक किया जाता था। यह वस्त्र स्त्रियां अपनी आंचल को ढकने के लिये प्रयोग करती हैं जिसको ओढ़नी या दुपट्टा कहते हैं। आरण्यका अंकुश से अपने मुख को छिपा लेती है।[1] विभिन्न वर्षों के अनुसार अंकुश भी अनेक प्रकार के होते थे। यथा– सितांशुक, रक्तांशुक, नीलांशुक आदि जिनका भास व हर्ष ने अपनी कृतियों मे यथा स्थान अधिवस्त्र । उर्ध्व अंगों हेतु । एवं अधोवस्त्र वैवाहिक वस्त्र युगल रूप में उल्लेख किया है।

चीनांशुक -

भारतीय रेशमी वस्त्रों के अतिरिक्त चीन देश से आयातित रेशम के वस्त्रों का भी समृद्ध समाज में प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता था। यह अत्यन्त पतला, हल्का, कोमल होने से नारियों मे विशेष रूप से लोकप्रिय था। पताकाओं में भी चीनांशुक वस्त्र प्रायः प्रयुक्त होता था, भास तथा हर्ष के अनुसार उत्खचित चित्रों वाला रंग–बिरंगा यह रेशमी वस्त्र अत्यन्त पसन्द किया जाता था।

भास तथा हर्ष ने अपनी कृतियों में चीनांशुक रेशमी वस्त्र का उल्लेख किया है[2] जिससे प्रतीत होता है तद्युगीन नारियों में इसका प्रचलन उत्तम कोटि का होने के कारण अधिक रहा होगा।

---

1. प्रियदर्शिका, द्वितीय अंक, पृ0 34, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, द्वि0 सं0 1976 । उत्तरीयेण मुखंपिधाय सभयम् । हला इन्दीवरिके, परित्रायस्व मां परित्रायस्व माम् एते दुष्टमधुकराः परिभविष्यन्ति।"
2. सांस्कृतिक अध्ययन, डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ0 76, हर्षचरित0 "चीनांशुक सुकुमारे शोणे सेकते दुकूल कोमलशयने इव समुपविष्टा।"

दुकूल -

वृक्ष की छाल के रेशे से बनने वाले वस्त्रों को दुकूल अभिधान प्राप्त होने का अनुमान डा0 मोतीचन्द्र करते हैं तथा उनके मतानुसार बंगाल जैसे पूर्वी राज्य में दुकूल का रंग सफेद, पौण्ड देश का नीला सुवर्ण, कुऽपा का दुकूल लाल रंग का होता था।

सामान्यतः वैवाहिक शुभ अवसरों पर क्षौम, कौशेय, अंशुक आदि रेशमी वस्त्रों का उपयोग नारियां करती थीं किन्तु कुछ स्थलों पर दुकूल के भी प्रयोग किये जाने का उल्लेख हुआ है। ऋतुसंहार[1] के आधार पर ज्ञात होता है कि दुकूल [2] ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त आदि ऋतुओं मे स्त्रियां अधोवस्त्र के रूप में धारण करती थी। यद्यपि अंशुक या कौशेय की अपेक्षा दुकुल मोटा[3] और भारी होता होगा जिसे स्त्रियों की अपेक्षा पुरूष अधिक प्रयोग करते थे; तथापि उत्तम कोटि के हल्के महीन[4] एवं चिकने दुकूल वस्त्रों का निर्माण प्रचुर रूप में होता होगा, जिससे प्रतीत होता है कि प्रियदर्शिका, पद्मावती जैसे सम्पन्न वर्ग के नारी पात्र विवाह आदि में विशेष समारोहों के अवसर पर या प्रतिदिन धारण करते थे।

हर्ष ने दुकूल किसी भी नारी पात्र द्वारा साधारण करने का यद्यपि उल्लेख अपनी कृतियों में नही किया है तथापि उनके समय नारियों में उनके प्रयोग के प्रचलन का अभाव नही था।

हंसचिन्हित दुकूल -

उपर्युक्त श्वेत दुकूल वस्त्र के अतिरिक्त अनेक प्रकार के वर्णो के हसं चक्रवात आदि पंक्षियों के चित्र से अंकित दुकूल भी प्रयुक्त होते थे। जिन्हे हँसचिन्ह दुकूल अत्यन्त मांगलिक माना जाता था। वैवाहिक शुभ अवसरों पर यह प्रयुक्त होता था जिससे प्रतीत होता है कि उस समय वस्त्रों पर रंगीन कलात्मक[5] छपाई अथवा सुई धागे से चित्रों की कढ़ाई अत्यन्त उच्चस्तरीय रही होगी।

---

1. ऋतुसंहार 1/14– "नितम्बबिम्बैः सुदूकूलमेखलैः स्तनैः सहारामरणैः सचन्दनौ।"
2. ऋतुसंहार 2/26– "प्रतुनिषित दुकूलान्यायतैः श्रोणिबिम्बैः .... नार्थः ।"
3. ऋतुसंहार 3/7– "ज्योत्सना दुकूल मंगल रजनीदधाना .... बाला ।"
4. ऋतुसंहार 4/3– "नितम्बबिम्बेषु नवं दुकूलं तन्वशकं पीनपयोधरेषु ।"
5. ऋग्वैदिक भूगोल 2/32/4– डा० कैलाश नाथ द्विवेदी, तथा ऋग्वेद – पर एक ऐतिहासिक पं० विश्वश्वरनाथ रेऊ ने उल्लेख किया है– "वैदिक काल मे सुई से कलात्मक बेल बूटे चित्रांकन आदि वस्त्रों पर होने का प्रतिपादन।"

इसमें तत्कालीन नारियों की कलात्मक अभिरुचि का भी पूर्ण परिचय प्राप्त होता है।[1] इसका उल्लेख भी भास व हर्ष की नाट्य कृतियों मे नही है तथापि इन वस्त्रों का उपयोग नाटक की नायिका, सहनायिका द्वारा वैवाहिक अवसरों पर किये जाने की संभावना है।

चीर, वल्कल, मृगचर्म आदि -

तपोवनों के ऋषि पत्नीयाँ; मुनि कन्यायें आदि चीर अथवा मृग चर्म से निर्मित वस्त्रों का प्रयोग करती थीं। वृक्षों की छाल से बने वल्कल भारी, रूछ तथा मोटे होते थे जिन्हे तपस्वीजनों के अतिरिक्त साधारण पुरूष भी धार्मिक कार्य, पूजा इत्यादि क्रियाओं में प्रयोग करते हैं। चीर या वल्कल के अतिरिक्त मृगाजिन । मृगचर्म । यज्ञ, विवाहारम्भ आदि विशेष अवसरों ।पवित्र होने के कारण। प्रायः प्रयुक्त होता था। इन वस्त्रों का भास व हर्ष के नाटकों मे कहीं भी वर्णन नही है तथा इसके प्रयोग की संभावना भी नही दिखती है।

वस्त्रों का स्वरूप -

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर प्रमाणित होता है कि भास व हर्ष के समय नारी पात्र विविध प्रकार के ऊनी, रेशमी, सूती वस्त्रों का उपयोग करते थे। इन वस्त्रों का वर्णन तथा स्वरूप भी विभिन्न प्रकार का होता था। मनोज्ञवेश के अर्न्तगत वस्त्रों का उज्जवल, श्वेत तथा रंगीन होना आवश्यक समझा जाता है। देशकाल को देखकर अपनी अभिरूचि के अनुसार नारियाँ नीला, लाल, कसाय, हरा, कुसुम्भी या कुमकुम के विविध प्रकार के वस्त्र धारण करतीं थीं। भास व हर्ष के नारी पात्र अधोलिखित अधिवस्त्रों । शरीर के ऊपरी भाग पर धारण किये जाने वाले । तथा अधोवस्त्र । कटि के नीचे धारण किये जाने वाले । को धारण करते थे।

उत्तरीय -

नारियों एवं पुरूषों द्वारा शरीर पर कटि के ऊपरी भाग, स्तनादि दुपट्टे की भांति ओढ़ा जाने वाला अधिवस्त्र उत्तरीय कहलाता था। भास व हर्ष ने अपने नारी पात्रों को उत्तरीय युक्त अनेंक स्थलों पर चित्रित किया है।

---

1. दृष्टव्य – ऋग्वैदिक भूगोल, ले0 डा0 कैलाश नाथ द्विवेदी, 1984, कानपुर – ऋगवेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि, ले0 पं0 विश्वश्वर नाथ रेऊ 1967, पृ0 96.

1. रत्नावली, द्वितीय अंक, पृ0 50, टी0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, द्वि0 सं0 1976 वाराणसी ।

   " सागरिका– मुखमुत्तानीकृत्याश्रूणि निवारयन्ती सुसंगतां

   दृष्टवोत्तरीयेण फलकं प्रच्छादयन्ती सविलक्षस्मितम् ।"

2. रत्नावली, तृतीय अंक, पृ0 116, टी0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, द्वि0 सं0 1976 वाराणसी –

   " वासवदत्ता –। सरोषम्वगुण्ठनमपनीय । आर्यपुत्र, सत्यमेवाहं सागरिका। त्वं पुनः सागरिकोत्क्षिप्तहृदयः सर्वमेव सागरिकामयं प्रेक्षसे। "

असमीचीन प्रतीत होती है, क्योंकि जब ऋग्वैदिक[1] काल से स्त्रियाँ सुई से वस्त्रों पर कलात्मक[2] सिलाई–कढ़ाई आदि करने में पारंगत थी। भास व हर्ष के काल में भी अवश्य वे अपने वस्त्रों को सिलना जानती होंगीं क्योकि उस समय वस्त्र निर्माण कला का पर्याप्त विकास हो चुका था। वासवदत्ता अपने स्तनांशुक वस्त्र को राजा के हाथ से छुड़ाती है।[3] जिस समय सागरिका आग के चारों घिरी होती है तो राजा उसके स्तनांशुक पर ध्यान देता है।[4]

कूर्पासक –

प्रतीत होता है कि यह सिला हुआ, शीत ऋतु में स्त्रियों का पहनने का मोटा एवं भारी वस्त्र था। भास व हर्ष ने कूर्पासक क्रमशः हेमन्त तथा शिशिर जैसी । शीत प्रधान।[5] ऋतु में धारण करने का वर्णन किया है, जिससे प्रतीत होता है कि यह भारी एवं मोटा पहनने से शीत पर पर्याप्त बचाव करता होगा।

कूर्पासक के स्वरूप के सम्बन्ध में डा0 मोतीचन्द्र का अनुमान है कि यह आधी बांह मिर्जई जैसा वस्त्र था, जबकि डा0 गायत्री वर्मा इसे ढीला ढाला उल्टा सीधा जम्फरनुमा सिला वस्त्र मानतीं हैं, किन्तु ऋतु0 5/8 के उल्लेख "कूर्पासक्पीडितस्तना[6] के आधार पर इसे न ढीला ढाला और न उल्टा –

---

1. ऋग्वेदे वस्त्रनिर्माणम्, डा0 कैलाशनाथ द्विवेदी । पंचम विश्वसंस्कृत सम्मेलन वाराणसी के पंचम वर्ग में । दृष्टव्य सागरिका 31/1, पृ0 98–100 । अजस्रा ।

2. ऋग्वैदिक भूगोल, डा0 कैलाशनाथ द्विवेदी, 1984, पृ0 221, कादम्बनी, दिसम्बर, 1985, पृ0 187–198.

   ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि, पं0 विश्वश्वर नाथ रेऊ, 1967, पृ0 196.

3. रत्ना0, द्वितीय अंक, पृ0 116, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, प्र0सं0 1980.

   "। सविनयमपटान्तमाकर्षन्ती। आर्यपुत्र, मान्यथा संभावय ।

   सत्यमेव मां शीर्षवेदना बाधते। तद्गमिष्यामि।"

4. रत्ना0, चतुर्थ अंक, पृ0 160, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाटी, द्वि0 सं0 1970 वाराणसी–

   "हहा धिगिदमंशुकं ज्वलति ते स्तनात्प्रच्युतम्।

5. ऋतु0 4/17, हेमन्त ऋतु में कूर्पासक नारियों द्वारा धारण करने का वर्णन –

   "अन्य प्रियेण परिमुक्तमवेक्ष्य गात्रं, हर्षान्विता विरचिताधरचार शोभा।

   कूर्पासकं परिदधाति नरवक्षतांगी, व्यालम्बिनील ललितालक कुचिताक्षी।।"

6. ऋतु0 6/8– मनोज्ञ कूर्पासक पीडितस्तनाः सरागकैषेयक भूषि तोखः।

   निर्वोशतान्तः कुसुमैः शिरोरहैः विभूषयन्तीव हिमागर्भस्त्रियः।।"

सीधा सिला वस्त्र कहा जा सकता है। इसका आशय यह है कि आकार मे ऊँची आस्तीन के जम्फर या[1] फतुई या ब्लाउज से पर्याप्त समानता रखता होगा, जैसा कि डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने कूर्पासक अभिधान का आधार उसकी आस्तीन को कोहनियों से ऊपर रहना स्वीकार किया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि भास तथा हर्ष के नारी पात्र अपनी निश्चित विविध प्रकार की वस्त्रों वाली वेशभूषा से सौम्य एवं भीषण स्वरूप सफलता पूर्वक प्रदर्शित करते हैं। इन महाकवियों के काल में इतने उत्कृष्ट कोटि के कोमल, महीन, चिकने, हल्के एवं मनोज्ञ वस्त्र बनते थे; कि उन्हे धारण करते हुये, नारियों के अंग झलकते रहते थे। भास व हर्ष ने ऐसी नारियों का प्रायः वर्णन किया है जिनके जल से भीगे वस्त्रों से चिपके अंग प्रत्यंग झलकने लगते हैं।

2. अलंकार ।आभूषण । -

अपने को अलंकृत अथवा सज्जित करने की सहज प्रवृत्ति मानव जीवन में पाई जाती है। अतः प्राचीन काल से ही पुरूषों के साथ ही स्त्रियाँ भी अनेक प्रकार के आभूषणों और श्रृंगारिक प्रसाधनों के द्वारा अपने आप को अलंकृत किया करती थीं। भास व हर्ष ने नारियों की इन्ही सामान्य प्रतिष्ठा सौन्दर्य की प्रवृत्ति को दृष्टि में रखकर अपनी कृतियों में नारी पात्र को विविध प्रकार के अलंकारों अथवा आभूषणों से अभिमण्डित किया है। उनके इन अलंकारो को अधोलिखित रूप में तुलनात्क रूप में विवेचित किया जा सकता है।

विविध मणियाँ -

रत्नजटित अनेक प्रकार के नारियों के आभूषणों में विविध मणियों का उपयोग सामान्यतः होता ही है। इन मणियों के समुचित प्रयोग की रीति प्रायः प्रत्येक पुरूष एवं नारी

को ज्ञात थी। आजकल जितने प्रकार के बहुमूल्य मणियाँ पाई जाती हैं, भास तथा हर्ष के समय भी समुपलब्ध थी। जिनकी नारियाँ आभूषणों में यथेष्ट प्रयोग करती थीं वस्तुतः स्वर्ण के साथ अनूकूल मणि का संयोग किसी आभूषण में परम विशिष्टता उत्पन्न कर देता है।

---

1. प्राचीन वेशभूषा ले० डा० मोतीचन्द्र, पृ० 161.

   हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, ले० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० 152.

शिरोभूषण -

भास तथा हर्ष ने किसी भी नारी पात्र के शिरोभूषण का यद्यपि विस्तृत उल्लेख संयोगवश इनकी कृतियों में नहीं प्राप्त होता है, तथापि तत्कालीन नारियों में सिर पर तिलक अथवा चूड़ामणि को सौभाग्य चिन्ह स्वरूप धारण करने का प्रचलन अवश्य रहा होगा। हर्ष ने अपने प्रियदर्शिका नाटक में शिरोभूषण का सुन्दर चित्रण इस प्रकार किया है। वासवदत्ता अपने माथे का आभूषण उतार कर देती है।[1]

मदन महोत्सव मनाने के लिये लोगों ने इतना गुलाल उड़ाया है कि सम्पूर्ण दिशाओं ने अरुण्ति साड़ी पहन ली है। दिशाओं की लालिमा देखकर यही प्रतीत हो रहा है मानों प्रातःकालीन लालिमा दिशाओं को अरुणित कर रही है। पुरवासी धनधान्य से परिपूर्ण हैं, अतः प्रत्येक जन स्वर्णाभूषणों से अलंकृत होकर अद्वितीय पीतिमा बिखेर रहा है। किंकिरात[2] अशोक में पीले-पीले पुष्प निकल आये हैं। इन पुष्पों को उसने शिरोभूषण बना लिया है। वस्तुतः अशोक वृक्ष स्त्रियों के पाद प्रहार से पुष्पित होता है किन्तु कामदेव के आगमन[3] के कारण उसमें स्वतः पुष्प निकल आये हैं। इसलिये प्रसन्नतापूर्वक अपने पुष्पों को शिरोभूषणा बनाकर सम्पूर्ण वातावरण को पीले रंग से रंग रहा है; जिसे देखकर यह प्रतीत होता है कि कौशाम्बी नगरी के प्रत्येक जन पर सोने का पानी फिरा हुआ है। यथा –[4]

"कीर्णैः पिष्टातकौघैः कृतदिवसमुखैः कुङ्कुमक्षोदगौरे
हेमालङ्कारभाभिर्भरनमितशिखैः शेखरैः कैङ्किरातैः।
एषा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिता शेषवित्तशकोशा
कौशाम्बी शातकुम्भद्रवरवचितजने वैकपीता विभाति।।"

---

1. प्रिय0 तृतीय अंक, पृ0 63, टीका0 पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्या भवन वाराणसी, द्वि0 सं0 1976 ''शिरसोऽपनीय नीलोत्पलदामार्पयति।''
2. भा0 प्र0 नि0 पुष्पा 40 ''किंकिरातो हेमगौरः पीतकः पीतभद्रकः।''
3. कु0 स0 3/26 ''असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्प्रभृत्येव सपल्लवानि।

   पादेन नापैक्षत सुन्दरीणां सम्पर्कमासिञ्जितनूपुरेण ।।''
4. रत्नावली 1/10, पृ0 24, टीका0 पं0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 1976 वाराणसी.

कर्णाभूषण -

प्राचीन काल से स्त्री पुरूषों का बाल्यावस्था में कर्णवेध संस्कार होने के कारण कानों मे छेद होता था तथा उसमे विविध आकार के आभूषण स्त्री पुरूष धारण करते थे। भास ने अपने नाटक में कर्णाभूषण का सुन्दर चित्रण किया है। यथा–[1] इयं भर्तृदारिका उत्कृतकर्णचूलिकेन व्यायामसञ्ज़ातस्वेद बिन्दु विचित्रितेन परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीत एवागच्छति। यावदुपसर्प्स्यामि।

हर्ष के नाटक मे नायक अपनीं प्रेमिका को सखी का पुरस्कार रुप कर्णाभूषण प्रदान करता है।[2]

कण्ठाभूषण -

स्त्री तथा पुरूष दोनों अनेक प्रकार के कण्ठाभरणों को धारण करते थे। भास तथा हर्ष ने विविध प्रकार के कण्ठाभूषणों से सुसज्जित नारी पात्रों को अपनी कृतियों में चित्रित किया है। हर्ष ने अपने रत्नावली नाटिका में कण्ठाभूषण । रत्नमाला । का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। यहाँ तक कि जिस रत्नमाला को सागरिका धारण कर लेती है उसी रत्नमाला को लेकर उदयन व्याकुल होता है।[3] यहाँ तक कि नाटक के अन्त में वासवदत्ता ने रत्नावली को

अपनी बहन के रूप में स्वीकार करके उसे आभूषणों से अलंकृत करके राजा को समर्पण कर देती है।[4]

भास ने भी अपनें नाटकों मे कण्ठाभूषणों का प्रयोग किया है। मंगलसूत्र यह एक प्रकार का धागा होता है। लेकिन यह लड़की के गले में तभी डाला जा सकता है जब वह वैवाहिक बन्धन मे बंधती है।

---

1. स्वप्नवासवदत्तम्, द्वितीय अंक, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, द्वि0 सं0 1972, पृं0 26.
2. रत्नावली, द्वितीय अंक, पृ0 80, टी0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, द्वि0 सं0 1976, वाराणसी –

   " इदं ते पारितोषिकम् ।। कर्णाभरणं प्रयच्छति ।"
3. रत्नावली 4/4, पृ0 138, टी0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, द्वि0 सं0 1976 वाराणसी–

   " कण्ठाश्लेषं समासाद्य तस्याः प्रभष्टयाऽनया।
   तुल्यावस्था सखीवेयं तनुराश्चास्यते मम।।"
4. रत्नावली, चतुर्थ अंक, पृ0 168, टी0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, द्वि0 सं0 1976 वाराणसी– "एहि, रत्नावलि एहि। एतावदीप तावन्मे भगिनिकानुरूपं भवतु। आर्यपुत्र प्रतीच्छैनाम्।" ।[1]

स्वप्नवासदत्तम नाटक में चेटी वासवदत्ता से कहती है कि नक्षत्र उत्तम है अतः आज मंगलसूत्र का कार्य सम्पन्न होगा।[1] वासवदत्ता स्वयं अपने ही हाथों से पद्मावती के लिये सुहाग की माला गूँथती है।[2]

कराभूषण -

हाथों मे पहनने वाले आभूषण जैसे कंगन, हथफूल, अंगूठी आदि विशेष प्रकार के आभूषण हैं। इन आभूषणों को पहनने से नारी की शोभा में चार चांद लग जाते हैं। हमारे हिन्दू समाज मे यह उत्तम सुहाग का चिन्ह माना जाता है।

कटि के आभूषण -

सोनें – चांदी, रत्न, मुक्ता आदि से निर्मित कमर के अलंकार में मेखला, रशना, कांची जैसे आभूषण उल्लेखनीय हैं। जिन्हे दुकूल अथवा क्षौम के अधोवस्त्रों के ऊपर कटि में धारण करती थीं। मेखला के रशना के समान बजने का युग नही था क्योकि रशना की लड़ियां घुंघरू या किकड़ियों से युक्त रहतीं थीं। मेखला पतली पेटी जैसी स्वर्ण या हेम की निर्मित होती थी। जबकि कांची मेखला की अपेक्षा अधिक चौड़ी होती थी।

पादाभूषण -

नारियाँ नूपुरों को पैरों मे धारण करतीं थीं जो स्वर्ण एवं मणि जटित निर्मित होते थे। नूपुर का मात्र बिछुये के अर्थ में प्रयोग न होकर पायल के अर्थ में भी प्रयोग होता था। यथा–[3]

''पादैर्नूपुरिभिर्नितम्बफलकैः शिञ्जानकाञ्चीगुणैः–''

पुष्पाभरण -

ऋतु के अनुसार नारी पात्र रत्न, स्वर्ण मणियाँ आभूषणों के स्थान पर सिर, केश, कंठ, कर्ण, कटि, कर आदि अंगो मे रंग–बिरंगों मे कुरबक, नवकदम्ब, रक्तकदम्ब, केशर, केतकी, मथूक वकुल, मालती, जूही, अशोक, नवमल्लिता आदि वेशाभरण रूप में ऋतु अनुसार नारियों द्वारा प्रयुक्त हुये हैं। इसी प्रकार शिरीष, कमल, कर्णकार अथवांकुर आदि अवंततया कर्णफूल रूप में मृणालनाल वृक्ष में था।

---

1. स्वप्न0, द्वितीय अंक, पृ0 38, ले0 गणेशदत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, सुभाष बाजार मेरठ, प्र0 सं0 1968– "त्वरतां त्वरतां तावदार्या। अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रम्। अद्यैव कौतुकमङ्लम् कर्तव्यमित्यस्माकं भट्टिनी भणति। "
2. स्वप्न0, तृतीय अंक, ले0 गणेशदत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, सुभाषं बाजार मेरठ, प्र0 सं0 1968– " यह फूलों की माला होती है, जिसे सर्वप्रथम वैवाहिक बंधन मे बंधने से पहले वर–वधू एक दूसरे को गले में पहनाते हैं।
3. प्रिय0 3/4, पृ0 56, टीका0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1976.

कर वलय के रूप में केवार के पुष्प कांची रूप में कटि पर प्रयुक्त होते थे। भास व हर्ष ने अपनें–अपनें नाटकों मे पुष्पों के आभूषणों का वर्णन किया है। चेटी अपनीं रानी पद्मावती से कहती है यथा–[1] "पश्यतु पश्यतु भतृदारिका अर्धमनः शिला पट्टकैरिव शेफालिका कुसुमैः पूरितं मेऽञ्जलिम्।" पुष्पों से अलंकरण भी किया जाता था, पुष्पों से मालायें भी बनायी जातीं थीं।[2] नीलकमल पुष्पों की माला जूड़े मे बांधी जाती थी।[3] इन नारी पात्रों के विविध मूल्यावन कलात्मक आभूषणों के प्रयोग से इनकी सौन्दर्यात्मक परिष्कृत अनुभूति के साथ ही तत्कालीन समृद्ध एवं समुन्नत समाज का परिचय प्राप्त होता है जैसा कि वासवदत्ता अपनें आभूषणों से सजाकर रत्नावली को सहर्ष राजा को समर्पित कर देती है।[4]

यद्यपि इन विविध आभूषणों के प्रयोग का स्पष्ट वर्णन भास व हर्ष के उदयन रूपक नाट्य कृतियों में नही है परन्तु इन आभूषणों का प्रयोग नारी द्वारा विभिन्न समय पर अवश्य किया जाता रहा होगा।

3. अन्य प्रसाधन -

विविध वस्त्रालंकारों के अतिरिक्त विशिष्ट साज सज्जा विधि तथा श्रृंगार प्रसाधन के प्रिय उपकरण भी उल्लेखनीय है। जिन्हे भास व हर्ष के नारी पात्र प्रयुक्त करते हुए चित्रित हैं।

---

1. स्वप्नवासवदत्तम्, चतुर्थ अंक, पृ0 42. ले0 जयपल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, द्वि0 सं0 1972.
2. रत्नावली, 1/16, पृ0 24, व्याख्याकार पं0 परमेश्वरीदीन पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, चतुर्थ संस्करण 1989.

3. प्रियदर्शिका, तृतीय अंक, पृ0 63 टी0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी– "शिरसोऽपनीय नीलोत्पलदामार्पयति।"

4. रत्नावली, चतुर्थ अंक, पृ0 168, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी शास्त्री, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, द्वि0 सं0 1976.

"। हस्तं प्रसार्य। एहि, रत्नावलि एहि । एतावदपि तावन्मे भगिनिकानिरूपं भवतु। (इति रत्नावली स्वैरामभरणैरलंकृत्य हस्ते गृहीत्वा राजानमुपसृत्य) आर्यपुत्र प्रतीच्छैनाम् ।"

केशरचना -

नारियों के लम्बे–लम्बे बाल होते थे जिनकी सज्जा विविध प्रकार की वर्णित है।[1]

नारी पात्रों का वैविध्यपूर्ण केश -

श्रृंगार इन दोनो महाकवि की कृतियों में उल्लखित है। सामान्यतः स्त्रियां केशों को तेल से चिकना कर विविध प्रकार की वेणियों तथा ऋतु अनुसार सुन्दर दूर्वा या युवांकुर अथवा पुष्पों से अलंकृत करतीं थीं, किन्तु पति से परित्यक्ता होकर या उसके विरहावस्था में यद्यपि तेल केशों मे नही डालतीं थीं, तथापि एक वेणी अवश्य धारण करतीं थीं। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सामान्य स्थिति में सधवा स्त्रियाँ एक से अधिक केशों की सुन्दर वेणियाँ अथवा केश–पाश । जूड़ा । बनातीं रहीं होगीं। हर्ष ने अपने नाटकों मे नारी पात्रों के वेश विन्यास का अति सुन्दर चित्रण किया है। किसी स्त्री को आता हुआ देखकर विदूषक राजा से कहता है।[2]

Awantika Ladies , head is adorned with curly locks of hair and of the Abhir girls, hair are divided into two plaits and their dressing of hair is to he imitated according to the practice of women belonging to different part, then again, of the Ladies whose husbands are away from thair homes, the heads should be braided in a single lace.

---

1. प्रियदर्शिका, द्वितीय अंक, पृ0 29, 'प्रकाश' संस्कृत–हिन्दी टीका पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, द्वि0 सं0 1976 " कैषा कुसुमपरिमलसुगन्धवेणि मधुकरावलिविद्रुमलतारुणहस्तपल्लवा उज्जवलत्तनुकोमल बाहुलता सत्यं प्रत्यक्षचरीवोद्यानदेवता स्त्री दृश्यते।"

2. Laws and practice of Sanskrit Drama, Dr. S.N. Shastri, Page 331.

केशों को सुगन्धित करने के लिये काले अगर, धूप, कस्तूरी चूर्ण आदि का प्रयोग किया जाता था तथा तेल आदि इन विविध उपकरणों को केश रचना नारियां सम्पन्न करतीं थीं।

श्रृंगार प्रसाधन -

नारी पात्रों के नाना श्रृंगार प्रसाधनों । उपकरणों । का भास तथा हर्ष ने अपनीं कृतियों में उल्लेख किया है जिनसे वे नख–शिख अपने शरीर के अंगों को सुसज्जित करतीं थीं। मुख के सौन्दर्य को निखारनें के लिये नारियाँ गौरोचन, अंगराग, बन्दन तथा तिलक से मुख पर पत्र रचना विवाह के शुभ अवसर पर गौरोचन से की गयी थी। नाटक के अन्त में वासवदत्ता रत्नावली को श्रृंगार प्रसाधन आभूषण से अलृंकत कर देती है।[1]

मुख सौन्दर्य के लिये नारियाँ माथे पर तिलक, हरताल एवं मनःशिला को बनाया करती थीं। नारी पात्रों के मुख सौन्दर्य के अर्न्तगत आंखों मे काला अँजन शलाका से प्रयोग होता था किन्तु विरह या तपस्या में नारी के लिये नेत्रों में अंजन लगाना वर्जित समझा जाता था मुख, ओष्ठो के श्रृंगार प्रसाधन में नारी पात्रों का ओष्ठराग भी उल्लेखनीय प्रतीत होता नारियां ओष्ठों की नैसर्गिक लालिमा के होते हुए भी उन्हे लाल रंग से रंगती रहती थीं। पान चबाकर भी नारियाँ अपने अधरोष्ठ को अनुरंजित करतीं रहतीं थीं।

अलक्तक अथवा आलता जिसे माहवार या लाक्षरस कहा गया है, नारियाँ अपने चरणों को अत्यन्त कलात्मक रूप में अलंकृत करतीं थीं, नारी पात्रों का चरण राग या रागलेखा विन्यास श्रृंगार प्रसाधन का महत्वपूर्ण अंग था जिसका भास व हर्ष ने अपनीं कृतियों मे सुन्दर निरूपण किया है। नारी पात्रों के श्रृंगार प्रसाधन सम्बन्धी अन्य उपकरणों में अगर, अंगराग, गौरोचन, उषीर, कुंकुम, केशर, कस्तूरी, चन्दन, तेल आदि उल्लेखनीय है जिनकी ऋतु अनुसार लेपन से शरीर के सभी अंग शीतल या संतप्त सुगंधित आभामय एवं अनुरंजित हो जाते हैं। चन्दन सामान्यतः स्त्रियां शीतलता तथा सौन्दर्य लाभ हेतु हेमन्त

1. रत्नावली, चतुर्थ अंक, पृ0 168, टीका0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी शास्त्री, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, द्वि0 सं0 1976.
   "एहि, रत्नावलि, एहि। एतावदपि तावन्मे भगिनिकानुरूपं भवतु । (इति रत्नावली स्वैराभरणैरलंकृत्य हस्ते गृहीत्वा राजानमुपसृत्य) आर्यपुत्र प्रतीच्छैनाम्। "

और शिशिर ऋतु को छोड़कर सभी ऋतुओं मे प्रयोग करती थीं। अंगराग का भी चन्दन के समान स्त्रियाँ शारीरिक सौन्दर्य एवं कान्तिलाभ हेतु प्रयोग करती थीं। नारी पात्रों द्वारा उषीर, कस्तूरी, कुंकुम, धूप, अगर आदि उपकरणों का भी श्रंगार प्रसाधन में शरीर को सुगन्धित शीतल या उष्ण बनाने के लिये प्रचुर प्रयोग किया जाता था। आज–कल के पाउडर के समान सुगन्धित द्रवों मे अनेक प्रकार के चूर्णों का भी शरीर के अंगों पर नारियां प्रयोग करती थीं, जिनमें लोध्र, प्रसवरण, अम्बुणरेणु, केसर चूर्ण, केतक, रज आदि उल्लेखनीय है। श्रृंगार प्रसाधन के उपकरणों में शलाका । वर्तिः । दन्तपत्रिका । कंघी । के अतिरिक्त दर्पण का भी अत्यन्त महत्व है। अपने मुख श्रृंगार के सौन्दर्य को अवलोकन करने के लिए नारियां अपरिहार्य रूप से दर्पण का प्रयोग करती थीं जिनमें उनका प्रसादित मुख प्रतिबिम्बित हो उठता था।

समीक्षा -

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में सौन्दर्य प्रतिष्ठा की सहज प्रवृत्ति पुरुषों के साथ ही नारियों मे विशेष रूप से व्याप्त थी। भास तथा हर्ष के नारी पात्र अपने को विभूषित करने के लिए प्रसाधन कला में परम प्रवीण परिलक्षित होते हैं। रंग–बिरंगे, सूती, रेशमी तथा ऊनी उत्कृष्ट कोटि के कोमल, हल्के तथा चिकने वस्त्रों के अतिरिक्त अनेक रत्नमणि, मोती, स्वर्ण पुष्प आदि के बने आभूषणों और विविध प्रकार के प्रसाधनों । कुंकुम, केशर, कस्तूरी, कुसुम, चन्दन, गौरोचन, अगर, धूप, अंजन, अलक्तक आदि। नारी पात्रों की साज–सज्जा दर्शनीय एवं मनमोहक होती थी।

इस प्रकार नारियों में सौन्दर्य बोध की मूलभूत प्रवृत्ति दोनो नाटककारों की नाट्य क़ृतियों में अनेक स्थलों मे परिलक्षित होती है, जिससे तत्कालीन संस्कृति का कलात्मक पक्ष स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है।

षष्ठ अध्याय
नाटकों में अभिव्यक्त नारी मनोविज्ञान (मनः प्रवृत्तियों) का अध्ययन

षष्ठ अध्याय

मनोवैज्ञानिक अध्ययन -

नाटकों में अभिव्यक्त नारी मनोवैज्ञानि । मनः प्रवृत्तियों । का अध्ययन

हमारे धार्मिक, साहित्यिक एवं दार्शनिक ग्रन्थों में मनस्तत्व का विश्लेषण पाया जाता है । इस मन को अबाध और अद्‌भुत गति युक्त संकल्प विकल्प से सम्पन्न, सांसारिक बन्धन मोक्ष[1] का कारण कर्मो से प्रवृति निवृति मूलक कहा गया है । वस्तुतः मन के स्वरूप एवं इसकी प्रवृत्तियों को समझना अत्यन्त दुष्कर कार्य है तथापि संस्कृत साहित्य में इसके स्वरूप एवं प्रवृत्तियों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है । इसके आलोक में यहाँ हर्ष तथा भास के नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

सामाजिक बाह्य क्षेत्र के संघर्षपूर्ण विविध कठोर कर्मो में निरत रहने से नारी की अपेक्षा पुरूष का मन अधिक कठोर तथा आघात सहिष्णु होता है । जबकि पुरूष की मूल अन्तः प्रवृत्तियॉ काम, कोध,[2] सम्मोह, ईर्ष्या, असूया, द्वेष, मात्सर्य, अहंकार, उन्माद, स्वप्न, स्मृति, मूर्च्छा, परिकल्पना आदि पुरूषों के समान नारियों में भी विद्यमान रहती है जिनका सुन्दर उद्‌घाटन कवि एवं नाटककार अपनी कृतियों में स्वाभाविक रूप से करते हुए यथार्थ की इसी पृष्ठभूमि पर उ[illegible] आदर्श को प्रतिष्ठापित करते हैं । भास तथा हर्ष ने अपनी कृतियों में अनेक नारी पात्रों की मानसिक स्थिति का मन ोविज्ञान सम्मत सुन्दर चित्रण किया है जिनकी तुलनात्मक विवेचना निम्नवत प्रस्तुत की जा रही है–

1- <u>काम</u> -

स्त्री – पुरूष में काम प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से मूलतः रजोगुण से समुद्भूत होकर विद्यमान रहती है जो शब्द, वाक, रूप, रस, गंध, स्पर्श, विजय, इन्द्रियों के मन में पनपती है तथा यथा समय अभीष्ट पात्र के प्रति प्रणय या पूर्वराग में परिवर्तित हो जाती है । भास तथा हर्ष के नारी पात्रों में मन की

---

1. मैत्रायण्युपनिषद 4/11/4 "मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।"
2. श्रीमद्भागवद्गीता 3/3 "काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुदभवः ।"

यह पनपी हुयी काम प्रवृत्ति उपर्युक्त विषयेन्द्रियों के माध्यम से इनकी कृतियों में अनेक स्थलों पर अभिव्यक्त हुई है ।

भास ने "स्वप्नवासवदत्तम्" नाटक में मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रेम की अनुभूति का चित्रण किया है – "न जानामि, आर्यपुत्रेण विरहितोत्कण्ठिता भवामि ।" अर्थात् प्रेम वस्तुतः कहने की बात नहीं वह तो अनुभूति की वस्तु है. । इसलिये वासवदत्ता के पूछने पर कि "सखि ! क्या तुम्हे पति प्रिय है।[1]" पद्मावती कहती है कि 'यह तो मैं नहीं जानती परन्तु उनके बिना मैं बेचैन सी हो जाती हूँ।" पदमावती की इस उक्ति में उदयन के प्रति उसकी प्रगाढ़ प्रेमानुभूति के साथ–साथ उसकी शालीनता एवं सरलता भी साकार हो उठी है ।

हर्ष की नायिकाओं में एवं नारी पात्रों का पूर्वराग अथवा मन का काम भाव में सम्पर्क में आये हुये नायक या प्रभावी व्यक्तित्व के धनी पुरूष के मनोहारी रूप, वचनों, पौरूषपूर्ण अद्भुत कर्मो, अनुकूल चेष्टाओं आदि से मन के आकृष्ट होने पर सहज ही सामान्तः उनकी सव्याज चेष्टाओं में अभिव्यक्त हो जाता है । यथा – सागरिका अपने मन को वश में नहीं रख सकी, उसने राजा के प्रति अथाह प्यार का सागर सुसंगता के समक्ष व्यक्त करती हुई कहती है कि –

दुर्लभ[2]जनानुरागो[3] लज्जा गुर्वी परवश आत्मा ।

प्रिय सखि विषमं प्रेम मरणं शरणं नवरमेकम् ।।[4]

इसका पूर्ण आशय यह है कि मैं । सागरिका । राजा उदयन के अतिरिक्त वह स्वप्न में भी किसी से प्रेम नहीं कर सकती । मेरे काम की शान्ति के लिये मृत्यु ही एक अच्छा उपाय है । इसलिये तुम्हारा शीतोपचार व्यर्थ है । यदि तुम मेरी प्रिय सखि हो, तो मुझे कामानल में जलाकर राख हो जाने दो । इतना कहकर वह बेहोश हो जाती है।

---

1. स्वप्नवासवदत्तम,चतुर्थ अकं, पृ 0 40, ले0 जयपाल विघालंकार प्रका 0 मोतीलाल बनारसीदास , दि0 स0 1972 – "हला ! प्रियस्ते भर्ता ?"
2. रत्नावली, 2/1, पृ0 54, व्या0 पं0 परमेश्वरदीन पाण्डेय, प्रका0 चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी 1989".
3. माल वि0 2/4– ''दुर्लभः प्रियो में तस्मिन्मव ह्रदय निराश।''
4. दशरूपक 1/55 प्रतिमुख संधि का भेद ''विधूतं स्यादरतिः।''
5. अभि0 3/8 ''प्रष्टाजनेन समुदःखसुखेन बाला नेयं न वक्ष्यति मनोगताधिहेतुम ।''

प्रियदर्शिका नाटक में नयक मन ही मन इतना व्याकुल हो उठता है कि वासदत्ता को देखने के लिए उत्कण्ति होता है। यथा[1] –

क्षामां मग्ड्गलमात्र[2] मण्डपभृतं मन्दोद्यमालापिनी
मापाण्डुच्छबिना मुखेन विजितप्राप्तस्तनेन्दुद्युतिम्।
सोत्कण्ठां नियमोपवास विधिना चेतो ममोत्कण्ठते
तां द्रष्टुं प्रथमानुरागजनितावस्था मिवाद्य प्रियाम।।

प्रियदर्शिका के द्वितीय अंक में राजा आरण्यका[1] ।प्रियदर्शिका। को देखकर विदूषक से कहता है कि अभागों को अभिलाषित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि पश्य–पश्य[3] – – –

आबद्ध मुखपीदं कण्टकितं कमलकाननं तस्या ।
सुकुमार पाणिपल्लवसंस्पर्श सुखं कथयतीव ।।

दुःसह कामव्यथा कोसहती हुई कामिनी के द्वारा सखियों के समक्ष जो कुछ सम्भाषण किया गया हे, वह शिशु , तोता और मैना के द्वारा पुनः उच्चारितत होककर भाग्यवानों के कानों का विषय बनता है[4]।

काममदेव के असह्य[5] पुष्प वाणा का प्रहार शिव समान योगी को धैर्यच्युत[6] कर देता है, ऐसे कामदेव की विषम शर–व्यथा नवयौवना के लिए तो ओर भी असह्य होती है । इस असह्य

कामानल में जलती हुई कामिनी अपनी सखियों के समक्ष अपने मन की व्यथा बता देती है अर्थातृ कामपीड़ा का वास्तविक चित्र प्रस्तुतत करती है।[7] उनके द्वारा दोहराया गया प्रेमालाप पुण्यवान व्यक्ति ही सुन पाते हैं।

1–प्रियदर्शिका, 2/1, पृ021 टी0 पं0 ?श्रीरामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रका0 वाराणसी, द्वि सं0 1976.

2–प्रियदर्शिका, 2/1, पृ0,21टी0 पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौ0 सुरभारती प्रका0 वाराणसी,1976.

वासदत्ता उपवास नियम परायण है अतएव सभी अलंकारों को हटा दिया है । उसने मण्डन के रूप में मंगलसूत्र को ही धारण कर रखा हैं क्योंकि उसे सौभाग्य सूचक होने के कारण हिन्दू स्त्री वृतादि में भी त्यागना उचित नहीं समझती। मंगलसूत्र उस शुभ डोरा को कहते है जिसे सौभाग्यवती स्त्रियॉ तब तक अपने गलें में पहने रहती हैं जब तक उनका पति जीवित होता है।''

3–प्रिय0,2/9, पृ 38, टी0 प्र0 श्रीरामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रका0 वाराणसी, 1976

4–रत्ना0, 2/8, पृ0 81, व्या0 डा0 बैजनाद्य पाण्डेय, प्र सं0 2980, प्र मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी.

''दुर्वारां कुसुमशरव्यथां वहन्त्या।''

5–अभिशा0 3/13 ''तव न जाने ह्रदय मम पुनः कामो दिवाऽपि रात्रावपि।

निर्घृण तपति बलीयस्तवपि वृत्तमनोरथाया अङ्गानि।।''

6–कु0 सं0 3–10 ''कुर्या हस्यापि पिनाकपाणे धेर्यच्युति के मम धन्विनोऽन्ये।''

7– अभि0 शा0 3–9–14.

शिशु अच्छी प्रकार समझ न सकने के कारण उसे अस्पष्ट तोतली भाषा में दोहरातें है। अस्पष्ट होने से कर्णप्रिय रहते हैं । शुक औरसारिका पक्षी उसे ज्यों का त्यों सुना करतें है, किन्तु कामव्यथा पीड़िति की वार्ता कभी–कभी मन्द होती है, कभी कभी संकेतों से होती है। इसे ठीक रूप से सखी ही समझ पाती है । शुक और सारिका पक्षी अस्पष्ट रूप में सुनते है, अस्पष्ट रूप से व्यक्त भी करते हैं। इसलिये आधी वार्ता सुनने के कारण श्रोता के मन में उत्कंठा बनी रहती है । अतः सोभाग्यशाली व्यक्ति ही उनकी वार्ता सुन पाते हैं[1] वस्तुतः ऐसी वार्ता कानों के लिए अतिथि है जैसे अतिथि पुण्योदय होने पर ही आता है और उसके आने पर व्यक्ति अपना सभी कार्य छोड़कर तन,मन, धन से उसकी सेवा करता है, उसी प्रकार ऐसी वार्ता पुण्यशाली सहृदय ही सुन पाते है। और जब सुनते हैं तो अपना सब कुछ उस पर न्यौछावर कर देते है। चित्रपट ममें प्रदर्शित सागरिका के काम बाणों से पीड़ित राजा का मन व्यथित व काम भाव प्रबल हो जाता है। यथा –

लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः।

मान[2]समुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव[3]।।

अर्थात् राजहंसी के चच्चु और चरण अरूणिम होते है ।इसका वर्ण गौर होता है । हंसों की महारानी राजहंसिनी होती है । सागरिका राजहंसिनी की भॉति गौर वर्णा है । इसके चरण की अरूणिमा मनोहारिणी है। इसके अरूणिम अधरों से अनुराग[4] की वर्षा हो रही है। राजहंसिनी की भाँति यह कन्या रत्नों में सर्वश्रेष्ठ है। नीरपक्षी विवेकी हंसरमणी ने उदयन जैसे राजा से प्रेम किया है । जिस प्रकार राजहंसिनी अपनले मधुर गमन से कमल को चंचल अर्थात उसकी शोभा को

---

1. रत्नावली, 2/9, पृ0 83, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्र0 सं0 1980, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी.

2. रत्नावली, 2/9, पृ0 83 व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्र0 सं0 – 1980. प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी – इस पद से राजा के हृदय की निर्मलता और सहृदयता द्योतित होती है। सागरिका का मानस प्रवेश उसके उत्कट अनुराग को अभिव्यक्त करते हैं ।

3. अ0 को0 2–4–24 "राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैसिता ।"

4. सुभा0 – "रमते न मरालस्य मानसं मानसं बिना ।"

5. भा0वि0 1/13 "नीरक्षीरविवेके हंसालस्य त्वमेव तनुषे चेत् ।

विश्वेडस्मिननधुनान्यः कुलवृतं पालयिष्यति कः ।।"

विनष्ट कर देती है, उसी प्रकार इस रमणी ने अपनी मधुर अंग चेष्टाओं द्वारा प्रियतम के अनुकरण रूप लीला[1] से पद्मा लक्ष्मी को तिरस्कृत कर दिया है, लक्ष्मी तो चंचल है, लेकिन इसके वरण करने से अखण्ड चक्रवर्तित्व की प्राप्ति होगी । इसलिये चंचल लक्ष्मी से भी यह श्रेष्ठ है ।

राजहंसिनी का गमन विचित्र होता है, इस रमणी के गमन से कामविलास की वर्षा होती है यह नवयौवना चित्र में चित्रित अद्भुत सौन्दर्य को प्राप्त है । राजहंसी अपने पंखों को जब कंपाती है, तब वह असीम मनोहारिणी लगती है । इस सुन्दरी के सम्पूर्ण हाव–भाव को देखने से यही प्रतीत हो रहा हे कि इसका हमारे प्रति अतुलनीय पक्षपात है यह मुझे हृदय से चाहती है । इस प्रकार के अद्वितीय रूप और गुण वाली यह कौन बाला है जो मेरे निर्मल हृदय में प्रवेश कर रही है ?

चित्रफलक में राजा की मानसिक स्थिति का रमणीय व सुन्दर चित्रण है । सागरिका के चित्र को देखने से यही प्रतीत होता है कि मानों उसके जीवन के परम सौभाग्य राजा उदयन हैं, जिसके पाने के लिये वह लालायित हैं ।

नायक ने नायिका के मुख की शोभा का सुन्दर वर्णन इस प्रकार व्यक्त किया है । यथा –

"विधायापूर्वपूर्णेन्दुमस्या मुखमभूद ध्रुवम् ।
धाता निजासनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः ।।[2]

इसका आशय यह है कि ब्रह्मा ने इस रमणी का अपूर्व चन्द्रमुख बनाया है । पूर्वकालीन चन्द्रमा तो मास में एक दिन पूर्ण होता है उसमें सर्वदा कलंक रहता है, लेकिन इसका मुखषोडश कलात्मक होने से सदा पूर्ण रहता है और इसमें किसी प्रकार का कलंक नहीं है । इस आह्लादक और शैत्य की वर्षा करने वाले चन्द्र को देखकर किस सहृदय के हृदय सागर में आनन्द की तरंगे नहीं उठती होगीं।

इस चन्द्रमा के सर्वदा पूर्ण रहने से ब्रहमा का कमलासन सर्वदा संकुचित रहता होगा, इसलिये अपने आसन में भ्रमर की भॉति बन्द ब्रहमा अपनी मनोरम

---

1. दशरू0 2/37 – "प्रियानुकरणं लीला मधुराङ्गविचेष्टितैः।"

भा0प्र0पृ09– "प्रियानुकरणं लीला।"

2. रत्नावली, 2/10, पृ0 73 व्या0 पं0 परमेश्वर दीन पाण्डेय, प्रका0 चौ0 सुरभारती प्रकाशन वाराणसी 1989.

सृष्टि के मधुमय विलास को नहीं देख पाते होंगे, इसलिये वे संकटापन्न अवस्था में पड़े हुए अपनी मूर्खता पर पाश्चाताप करते होगें अर्थात इस युवती का चन्द्रवदन अद्वितीय है, इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं है ।

भास तथा हर्ष दोनों ने ही अपनी–अपनी नाट्य कृतियों में काम अवस्था का सजीव, मनोरम एवं उत्तेजक रूप प्रस्तुत किया है परन्तु जहाँ भास का काम वर्णन शिष्ट एवं शालीन है वहीं पर हर्ष के वर्णन में अश्लीलता के कुछ अंश परिलक्षित होते हैं ।

2. क्रोध -

मन के आन्तरिक काम जैसे अन्य भागों या विकारों के समान रजोगुण से उत्पन्न क्रोध भी स्त्री–पुरूषों में पाया जाता है जिसकी समुत्पत्ति काम से विचारकों ने बताई है । भास तथा हर्ष के नारी पात्रों में समुदभूत क्रोध का भी अत्यन्त स्वाभाविक तथा प्रभावी चित्रण प्राप्त होता है ।

जिस समय राजा सागरिका का पीछा करते हैं तो सागरिका पकड़ में आ जाती है, लेकिन वह बोलती नहीं, उसका मुख कोप के कारण लाल हो जाता है, जरा सी आहट सुनकर भूपति उसका हाथ छोड़ देते हैं [1]–

प्राप्ता कथमपि दैवात्कण्ठमनीतैव सा प्रकटरागा ।

रत्नावलीय कान्ता मम हस्ताद् भ्रंशिता भवता ।।

आशय यह है कि बड़ी बेचैनी के बाद तो सागरिका प्राप्त हुई थी किन्तु समुद्र में नाव के डूब [illegible] पर उसका बचना असम्भव था बच जाने पर भी कौशाम्बी नगरी के वणिक समुदाय के हाथ [illegible] भाग्य की बात थी । सागरिका राजा के अन्तःपुर में रह रही है, उदयन उसे जानते तक नहीं हैं। वासवदत्ता के परिरक्षण में रहने वाले कन्या रत्ना का आज संयोग से ही साक्षात्कार हुआ है और यह भी भाग्य की बात है कि ऐसी अद्वितीय सुन्दरी राजा से प्रेम भी कर रही है ।
चित्रफलक नलिनी शैयनादि के द्वारा सागरिका का राग[2] स्पष्ट रूप से राजा के द्वारा जान लिया गया है । वस्तुतः यह मञ्जिजष्ठ राग है ।[3] इसलिये

---

1. रत्ना0 2/19, पृ0 113, व्या0 डॉ0 राजेश्वर (राजू) शास्त्री मुसलगॉवकर प्रका0 चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, प्र0 सं0 वि0सं0 2054

2. भा0प्र0 पृ0 81–

"सुखदुःखात्मकं भोग्यं सुखत्वेनाभिमन्यते ।

येन रागः स इत्युक्तो रञ्जादविषयात्मनः ।। "

3. भा0प्र0पृ0 82– "अतीव शोभतेवस्तुनायैति क्षलितोऽपि सन् ।

स एव कविभिः सर्वैर्भञ्जिष्ठराग उच्यते ।"

राजा उदयन कष्ट की अनुभूति कर रहें हैं सागरिका अत्यन्त शोभना[1] है । इसकी सुन्दरता की प्रभा से राजा सागरिका पर न्योछावर हो रहे हैं अथवा कान्ता प्रियतमा की भॉति सरलता प्रदान करने वाली है ।[2] इस प्रकार अद्वितीय गुण वाली सागरिका का राजा आलिग्ङ.न करना चाहतें हैं । उसे अपने कण्ठ का हार बनाने जा रहे हैं। तब तक विदूषक ने यह दस्तक दे दी कि यह वासवदत्ता है राजा ने भय के कारण उसका कर छोड. दिया । इसका पुनः मिलन अत्यन्त कठिन है ,क्योकि वासवदत्ता के भय में मिलन बाधक है ।

जिस समय वासवदत्ता व काञ्चनमाला का प्रवेश होता है तो उनसे चित्रफलक छिपाने के लिये राजा उदयन विदूषक को आदेश देते हैं कि तुरन्त उस चित्र पर दुपट्टा ढकादो । तभी रानी को कुछ शंका सी हुई , उन्होने काञ्चनमाला से कहा कि जरा इस चित्रफलक को उठा कर तो देखों । अचानक उसे अपने मन को झटका लगता है और कहती है –

3. "काञ्चनमाले अयमार्यपुत्रः ।इयं पुनः सागरिका । "

उस चित्रफलक को देखकर उनका कोप अत्यन्त प्रकट होता है । उनको कुपित हुआ देखकर काञ्चनमाला समझती है कि हो सकता है," यहाँ किसी लड.की का चित्र बनाया गया हो और बन गयी हो सागरिका।" उस पर वासवदत्ता कहती है तुम नहीं जानतीं यह सागरिका कुटिल है मेरा तो सिर अत्यन्त पीड़ा से फटा जा रहा है इस चित्र को देखने से मैं यहाँ से जाना चाहती हूँ।

राजा उसको समझाने की कोशिश करते हैं कि जैसा कुछ तुम सोच रही हो वास्वविक नहीं है, फिर भी उसके चेहरे से ज्ञात हो रहा था कि उसकी ऑखों में कोधाग्नि के गर्म ऑसू हैं तभी अचानक राजा का अनायास मन बोलता है । यथा–

"भ्रूभंङ्गे सहसोद्गतेऽपि वदनं नीतं परां नम्रता –

मीषन्मां प्रति भेदकारि हसितं नोक्तं वचो निष्ठुरम्।[4]

अन्तर्वाष्पजडीकृतं प्रभुतया चक्षुर्न विस्फारितं

कोपश्च प्रकटीकृतो दयितया मुक्तश्च न प्रश्रयः।।"

1– मेदिनी– "कान्ता नार्या प्रियङ्गो स्त्रीशोभने त्रिधु।"

2– पू0 मे0 पृ01– कावय प्र0 1/2 "कान्तेव सरसतापादेन —— कञ्चितकान्त विरह गुरूणाः।"

3– रत्ना, द्वि अंक पृ0 112, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय प्र0स0 1980, प्र0 मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी.

4– रत्ना0, 2/21 पृ0 116, व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय प्र0 सं0 1980.

इसका आशय यह है कि राजा उदयन विदूषक से कह रहे हैं कि तुमने महारानी को ठीक से नहीं समझा। चित्रफलक को देखने से सहसा महारानी की भृकुटियाँ। कुटिल हो गयीं। मेरे परकीय प्रेम को देखकर मुख नीचा कर लिया अर्थात उन्होनें यह व्यक्त किया कि एक दासी से प्रेम करते हो। काञ्चनमाला के सामने यदि वह बुरा भला कहती है तो मेरी प्रणय लीला का भेद खुल जाता और काञ्चमाला इसे तिल का ताड़ बना देती। ऐसी स्थिति में रानी का अपमान होता। लोग यही कहते है। कि महारानी को कोई दोष नहीं तभी तो राजा उदयन एक दासी पर मर रहे हैं।

नायिका लज्जा का अनुभव कर कहती है कि राजा शायद वासवदत्ता से कुपित हैं। यथा–

आर्यपुत्र, कोऽत्र कुपितः?

राजा – कथं न कुपितांसि –

स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्ताम्रा तथापि द्युति –

मर्धिुर्येऽपि सति स्खलत्यनुपदं ते गद्‌गदा वागिंयम् ।

निःश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कमपेन संलक्षिताः

कोपस्ते प्रकट प्रयत्नविधृतोऽप्येष स्फुटं लक्ष्यते ।।

राजा – देवि, अलमन्यथा विकल्पितेन । पश्य ....[3]

भ्रूभंङ्ग क्रियते ललाटशशिनः कसमात्कलंङ्को मुधा

वाताकम्पितबन्धु जीवसमतां नीतोऽधरः किं स्फुरन् ।

मध्यश्चाधिकम्पितस्तनभरेणायं पुनः खिद्यते

कोपं मुञ्च तवैव चित्तहरणायैतन्मया क्रीडितम् ।तु0[4]

---

1. रत्ना0, द्वि0अंक, पृ0116, व्या0डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्र0सं0 1980, प्र0 मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी –

"मेरा अनादर कर परकीया से प्रेम कर रहे है। इसलिये कोप है । भ्रमरों की भाँति परकीया के अधर सुधा रस पान की प्रवृत्ति होने से उपहास ।"

2. प्रियदर्शिका, 3/13, ले0 रामनाथ त्रिपाठी, चौ0 प्रेस वाराणसी, वि0सं0 2035.

3. प्रिय0, 3/4, ले0 रामनाथ त्रिपाठी, चौ0 प्रेस वाराणसी, वि0सं0 2035.

4. प्रिय0, पृ0 120, ले0 रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौ0 विद्याभवन वाराणसी 1976 –

इसमें छिपाये गये कोप का नयनताम्रत्व आदि हेतुओं से अनुमान किया गया है । तुलना के लिये यथा –

"भ्रूभंङ्गे सहसोद्गतेऽपि वदनं नीतं परां नम्रता –
मीषन्मां प्रतिभेदकारि हसितं नोक्तं वचो निष्ठुरम् ।
अन्तर्वाष्पजडीकृतं प्रभुतया चक्षुर्न विस्फारितं
कोपश्च प्रकटीकृतोदयितया मुक्तश्च न प्रश्रयः ।।"

नायक । राजा । की मनोदशा अत्यन्त खराब हो जाती है । जब वासवदत्ता उनसे बगैर कुछ कहे चली जाती है । जैसा कि निम्न श्लोक से स्पष्ट है । यथा –

राजा – । विलोक्य । कथमकृत्वैव प्रसादं गता देवी ।

स्वेदाम्भः कण भिन्न भीषणतरभ्रूभंडमेकं रूषा

त्रासेनापरमुत्प्लुतोत्प्लुत मृगव्यालोलनेत्रोत्पलम् ।

उत्पश्यन्नहमग्रतो मुखमिदं देव्याः प्रियायास्तथा

भीतश्चोत्सुकमानसश्च महति क्षिप्तोऽस्म्यहं संकटे ।।[1]

काम प्रवृत्ति एक ऐसा भाव है कि अगर मन के मुताबिक अभिलषित वस्तु प्राप्त नहीं हो पाती है तो मन में एक ही विचार आता है कि इस संसार से छुटकारा पा लें तो ठीक है । यथा –

। सास्रम् । सा तपस्विन्यात्मनो बन्धनस्य क्लेशेन तथा न संतप्यते, यथा भर्तुर्दर्शनन निराशतया[2] । इंदृशं चास्य दुःखम्, येनाद्यैवात्मानं व्यापादयन्ती मया कथमपि निवारिता । एतं वृत्तान्तं भर्त्रे निवेदय 'इति वसन्तकं भणित्वागतास्मि।[3]

नायिका । वासवदत्ता । का गुस्सा किस प्रकार शान्त करूँ नायक बड़े दुःखी मन से कहता है कि नाटक के अभिनय के समय का दृश्य देखकर बड़े कोप से युक्त उठकर चली जाती है, राजा की मनः स्थिति बड़ी खराब हो जाती है, वह विदूषक से कहता है – "राजा । विहस्य । अलं परिहासेन । कथय कथं देवीं प्रसादयामि ।

धृष्टः किं पुरतोऽवरुध्य विहसन्गृह्णामि कण्ठे प्रियां

किं वा चाटुशतप्रञ्चरचनाप्रीतां करिश्यामि ताम् ।

किं तिश्ठामि कृताञ्जलिर्निपतितो देव्याःपुरः पादयोः

सत्यं सत्यमहो न वेदम्यनुनयो देव्याः कथं स्यादिति ।।[4]

---

1. प्रियदर्शिका 3/15, ले0 रामनाथ त्रिपाठी, प्र0 चौ0 अमरभारती प्रका0 वाराणसी प्र0 सं0 2035.

2. प्रिय0, चतुर्थ अंक, पृ0 79, ले0 रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौ0 विद्याभवन वाराणसी द्वि0 सं0 1976.

"निराशतया आशया निर्गता निराशा, तथा निराशतया ।"

उसका दुःख ऐसा है कि वह आज ही आत्महत्या करने जा रही थी।

3. प्रिय0, चतुर्थ अंक, पृ0 79, ले0 रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौ0 विद्याभवन वाराणसी द्वि0 सं0 1976.

आरण्यका को इस बात का बड़ा खेद है कि अब वह महाराज के दर्शन नहीं पा सकेगी ।

4. प्रियदर्शिका, 4/1, पृ0 86, ले0 रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौ0 विद्याभवन वाराणसी द्वि0 सं0 1976.

भास ने अपनी नारी पात्रों को क्रोध न करने की सीमा से बांधने की कोशिश की है परन्तु यत्र तत्र नारी पात्रों में क्रोध की उत्तेजना अवश्य दृष्टिगोचर होती है । हर्ष ने अपने नाट्य रत्नावली में नायिका वासवदत्ता को क्रोधित होते हुए दिखाया है । उपरोक्त दर्शन से स्पष्ट है कि भास के किसी भी नारी पात्र का हर्ष की कृतियों में उपर्युक्त नायिकाओं जैसा भीष्म क्रोध दृष्टिगोचर नहीं होता है जिससे नायक के प्रति उनके द्वारा अपशब्दों का प्रयोग हुआ हो, वहॉ वे शिष्टाचार एवं मर्यादा का उल्लंघन नहीं करतीं हैं।

3. सम्मोह -

सामान्यतः मन में क्रोध से संमोह की समुत्पत्ति होती है । कभी–कभी यह सम्मोह अपने प्रियजन के प्रति आन्तरिक आकर्षण राग के कारण संताप विषाद आदि से भी समन्वित होता है ।

भास के नाटक में नायक काम की पीड़ा के कारण बहुत दुखी है तथा विदूषक से कहता है कि तुम मेरी अवस्था को नहीं जानते हो, क्योंकि[1] –

दुःखं त्यक्तुं बद्वमूलोऽनुरागः

स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ।

यात्रा[2] त्वेषा यद् विमुच्येहवाष्पं

प्राप्ताऽऽनृण्या याति बुद्विः प्रसादम् ।।

कहने का आशय यह है कि अनुराग की जड़ ह्रदय में पक्की होती है, उसे कैसे ह्रदय से निकाला जा सकता है, अनुरागबद्व मूल होता है अथवा बद्वमूल अनुराग को त्यागना कठिन होता है, अतः प्रियजन को अथवा तद्विषयक अनुराग को याद करके दुःख नया हो जाता है । प्रेम विषयक दुःख को स्मृति सींचती रहती है । ज्यों–ज्यों याद किया जाता है वह नया–नया होता है ।

लोक चलन ऐसा है कि यहॉ व्यक्ति ऑसू बहाकर अपने प्रिय के प्रेम से कुछ उर्षणा से मुक्त होकर अपने को हल्का समझता है ठीक इसी प्रकार प्रिय के वियोग में भी यदि ऑसू बहा लिये जाये

तो दुःख कुछ हल्का हो जाता है, मानों ऑसुओं के बहाने दुःख की बहार निकल आई हो, दुःख यदि अन्दर रूक जाये तो उसकी घुटन का भयंकर दुष्परिणाम हो सकता है । भास ने इसी भाव को यहाँ प्रकट किया है ।

---

1. स्वप्नवासव0, 4/6, पृ056, ले0 गणेशदत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, सुभाष बाजार मेरठ, प्र0 सं0 1968.
2. स्वप्नवासवदत्तम्, प्र0 164, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, 1972– "यात्रां यात्र तु व्यापनेऽपि स्यात् गमनोत्सवयोः स्त्रियाम् ।"

दुःख कम करने का शोक व्यावहारानुरूप एक ही उपाय है । "ऑसू बहाना" । इस प्रकार उदयन का वासवदत्ता को याद करना और ऑसू बहाना अत्यन्त स्वाभाविक एवं तर्कसंगत है ।[1]

"सत्वां श्रुत्वा व्यथां ब्रजेत ।" अपनी नयी पत्नी पद्मावती को पीड़ा पहुँचाना उदयन को अभीष्ट नहीं था इसी कारण वह वास्तविकता हो छिपा रहा है । अतः इसे दण्डी के आनन्दासु उदाहरण से नहीं मिलाना चाहिए ।

हर्ष के नाटक में उदयन विदूषक से कहता है[2] कि मेरे आचरण से महारानी को अत्यन्त कष्ट हुआ ।[3] कष्ट के ऑसू निकलने वाले थे, लेकिन उन्होनें ऑसू को ऑखों में रोक लिया । यदि ऑसू गिर जाते तो भेद खुल जाता ; इसलिए उन्होनें ऑखों को विस्फारित किया । अर्थात् वाह्यरूप से प्रकट नहीं होने दिया । यदि गम्भीरता पूर्वक देखा जाये, भ्रूभंग, मनहास और मुख को नीचा करके अपना क्रोध तो प्रकट कर दिया लेकिन विनयशीलता को परित्याग नहीं किया । मुझे भय है कि वह सागरिका को दण्ड दे सकती है,ऐसी स्थिति में भी मुझे कष्ट होगा और प्रिया सागरिका से मिलन भी नहीं हो सकेगा । अपराधी राजा की मनोवैज्ञानिक स्थिति का चित्रण निम्न श्लोक में है[4] –

ह्रिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदनं
द्वयोर्दृष्टया कलयति कथामात्म विषयाम् ।
सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकं
प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातंड़विधुरा ।।

अर्थात् मुझे अपनी उतनी चिन्ता नहीं है जितनी तपस्विनी सागरिका की चिन्ता है सागरिका के मन में यही बात उठती होगी कि मैं महारानी के परिजनों ने मेरे उदयन विषयक प्रेम को जान लिया है । इसलिये वह लज्जा से अपना मुख छिपाती होगी । प्रेम से उत्पन्न लज्जा से भी अधिक कष्टदायक लज्जा

---

1. उत्तररामचरितम्, 3/29, पृ0 68 – "शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते ।"

2. रत्नावली, ले0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी प्र0 सं0 1980.

3. शिशुपालवध 7/58 – "स्फुटमिदंमभिचार मन्त्र एव प्रति

युवतेरभिधानमडानानाम् ।

4. रत्नावली, 3/4, पृ0 103, व्या0 पं0 परमेश्वरदीन पाण्डेय, चौ0 सुरभारती प्रका0 वाराणसी, चतुर्थ संस्करण 1989.

की बात है कि सेविका होकर ह्रदय के सम्पूर्ण भावों को व्यक्त करने वाले बदन को छिपाती होगी ।
इससे उसकी कुलीनता व्यक्त होती है, क्यों कि अच्छे कुल में उत्पन्न होने वाला व्यक्ति कलंक से
भयभीत होता है ।[1] अर्थात पूर्ण आशय यह है कि, हे पिये ! । सागरिके । तुम्हारे हृदय में महारानी
का आतंक है अथवा मेरे द्वारा तुम्हारा अंगीकार न किये जाने से भय है, इस भय से तुम अत्यन्त
विधुर – विकल हो । तुम कर्तव्याकर्तव्य का विचार न कर सकने के कारण मूढ हो गई हो, तुम
विकलता की सांस ले रही हो । इस अवस्था को सोचकर राजा उदयन अत्यन्त दुःखित है ।

जिस प्रकार सूर्य के अस्त होने पर कमलिनी का दुःखी होना स्वाभाविक है[2] उसी प्रकार
जब कोई नायक अपनी प्रेयसी । नायिका । के साथ दिन भर रमण कर उसके जीवन में बहार ला
देता है लेकिन जब बिछुड़ता है तो प्रेयसी की क्या दशा होगी, इसका मूल्यांकन तो सह्रय ही कर
सकता है। प्रेयसी के जो नेत्र हैं वह कमल क़े रूप को धारण किये हुए हैं । नायक को देख रही है
क्यों कि उसके यह नेत्र बता रहे हैं, उसका नायक जा रहा है, क्यों कि बस मिलन का समय
निश्चित है, क्योंकि यहॉ नायिका परकीया है । यहॉ दोनों के मनोवांछित संगम में बाधा है । वह यह
प्रतिज्ञा करता है कि जब तुम सोई रहोगी तब प्रातः काल आकर के मैं तुम्हें जगाऊँगा । दिन भर के
रमण के बाद तुम थकी हुई हो , जब सोई ही रहोगी तभी मैं तुम्हारी निद्रा को दूर करूँगा ।
नायक व नायिका का संमोह ही कुछ संतापमय नहीं है यथा[3] –

ह्रत्वा पद्मवनद्युतिं प्रियतमेवेयं दिनश्रीर्गता
रागोऽस्मिन्मम चेतसीव सवितुर्बिम्बऽधिकं लक्ष्यते ।
चक्रह्रोऽहमिव स्थितः सहचरीं ध्यायन्नालिन्यास्तटे
सञजाताः सहसा ममेव भुवनस्याप्यन्धकारा दिशः ।।

उपरोक्त श्लोक से यह भासित हो रहा है कि जब प्रेमी या प्रेमिका का बिछोह अर्थात् पल भर मिलन के बाद जब अकेला है तो उसका मन इस निराशा से व्याप्त हो जाता है जैसा कि चकवा अपनी प्यारी का ध्यान करते हुए कमलिनी –

---

1. रघुवंश 14/37– "मनः सदाचार शुचेक़लंक पयोदवातादिव दर्पणस्य ।"
2. उ0रा0च0 6/12– व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु –

   र्न खलु बहिरूपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ।

   विकसति हि पतंगस्योदये पुण्डरीकं

   द्रवति च हिमरश्मावुद्‌गते चन्द्रकान्तः ।।
3. प्रियदर्शिका 2/10, पृ0 40, ले0 रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौ0 विद्याभवन वाराणसी द्वि0 सं0 1976

के पास रहता है उसी प्रकार यहाँ पर वापी के किनारे बैठे हुए राजा को अपने चारों ओर अंधेरा सा छाता हुआ नजर आता है ।

आरण्यका अपने ही ह्रदय को स्वयं उलाहना देती हुई कहती है कि यथा[1] –

आरण्यका – । निःश्वस्य । ह्रदय, दुर्लभजनं प्रार्थयमानं त्वं कस्मान्मांदुःखितां करोषि।

इतना ही नहीं वह ऑसू गिराती हुई कहती है कि प्रियदर्शन होकर । भी । महाराज मुझे इस प्रकार कैसे संतप्त कर रहे हैं ? आश्चर्य – आश्चर्य ! । आह भर । यह मेरा ही दुर्भाग्य है इसमें राजा का दोष नहीं है ।

उपरोक्त आरण्यका के कामावस्था का विलाप करती हुई मनोरमा सुनती है तो उसका भी ह्रदय द्रवित हो उठता है –

मनोरमा – कथं महाराज एवास्याः प्रार्थनीयः साधु प्रियसखि साधु । आभिजात्यसदृशस्तेऽभिलाषः ।

आरण्यका मन ही मन में अत्यन्त दुःखित होती है कि –

कस्मै तावदेतं वृत्तान्तं निवेद्य सह्रदयवेदनमिव दुःखं करिष्यामि । । विचिन्त्य । अथवा अस्ति मे ह्रदय निर्विशेषा प्रियसखी मनोरमा । तस्या अपयेतल्लज्जया न पारयामि कथयितुम् । सर्वथा मरणं वर्जयित्वा कुतो मे ह्रदयस्यान्या निर्वृतिः ।

अर्थात् अपने ह्रदय की बात अगर खास सखी या किसी से कह देने पर दिल की पीड़ा हल्की हो जाती है, यह स्त्री का एक स्वाभाविक गुण है उसकी मनोव्यथा को चुपचाप से मनोरमा सुनती है । तो वह सोचती है –

मनोरमा – । सास्रम् । हा धिक् हा धिक् । अतिभूमिं गतोऽस्यास्तपस्विन्या अनुरागः । तत्किमिदानीमत्र करिष्यामि ।

आरण्यका उस स्थान को देखकर दुःखित होती है जिस स्थान पर भौरों के द्वारा सतायी जाती है। महाराज के द्वारा प्रथम समागम हुआ था ।

आरण्यका – । साभिलाषम् । अयं स उद्देशः, यस्मिन्मधुकरै रायास्यमानावलम्व्य महाराजेन समाश्वासितास्मि "भीरू मा बिभीहि" इति ।

---

1. प्रियदर्शिका, तृतीय अंक, पृ0 55–56, व्या0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी, चौ0 अमर भारती प्रका0, वाराणसी, प्र0 सं0 2035.

इस प्रकार के वृतान्त को सुनकर मनोरमा हर्ष के साथ, क्यों महाराज ने उसे भी देखा है । तब तो सर्वथा इसके जीने का उपाय है तो इसी समय समीप जाकर इसे आश्वासन देती हूँ ।

। सहसा समीप जाकर । क्या हृदय से भी लज्जा करना उचित है ?

आरण्यका – । सलज्जमात्मगतम् । हा धिक् हा धिक् ।

सर्व श्रुतमेतया । तदत्र युक्तमेव प्रकाशयितुम। । प्रकाशं हसते गृहीत्वा । प्रियसखि, मा कुप्य मा कुप्य । लज्जात्रापराध्यति ।

मनोरमा – । सहर्षम् । सखि, अलंशंकया । एतन्मे आचक्ष्व सत्यमेव त्वं महाराजेन दृष्टा न वेति ।

आरण्यका – (सलज्जमधोमुखी) श्रुतमेव प्रियसख्या सर्वम् ।

मनोरमा – यदि दृष्टा महाराजेन त्वं तदलं सन्तापितेन । स एवेदानीं दर्शनोपायपर्याकुलो भविष्यति ।

आरण्यका – । स्वगतम् । अयं सखीजनः पक्षपातेन मन्त्रयते । प्रकाशम् । अयि सखी पक्षपातिनि, देवीगुण[1]निगलनिबद्वे[2] खलु तस्मिन् जने कुत एतत् ।

मनोरमा – । विहस्य । हला अपण्डिते, कमलिनीबद्वा[3]नुरागोऽपि मधुकरो मालतीं प्रेक्ष्याभिनवरसास्वादलम्पटः कुतस्तामनासाद्य स्थितिं करोति ।

आरण्यका – किमेतेनासम्भावितेन । तदेहि । अधिकं खलु शरदातपेन सन्तप्तान्यद्यापि न मेऽङ्गानि सन्तापं मुञ्चति ।

---

1. प्रिय0, तृतीय अंक, ले0 रामनाथ त्रिपाठी, पृ0 114, प्र0 सं0 वि0 सं0 2035 – "आरण्यका के कहने का अभिप्राय है कि महाराजा देवी । वासवदत्ता । के गुणरूप बेड़ी से जकड़ा है वह वासवदत्ता में बुरी तरह आसक्त है तो फिर मेरी ओर क्यों ध्यान देगा ।

2. प्रिय0, तृतीय अंक, ले0 रामनाथ त्रिपाठी, पृ0 114, प्र0सं0वि0सं0 2035– "राजा देवी के गुणरूप श्रंखला बेड़ी में बंधा है यह कब सम्भव है कि वह हमारी चिन्ता करे ।" इसी के समान मालविकाग्निमित्रम् में मिलता है – "हला देवी चिन्तायिक्तवा में हृदयं विश्वसिनि ।''

3. प्रिय0, तृतीय अंक, पृ0 114, टी0पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्या भवन, वाराणसी, द्वि0 सं0 1976 – "कमलिंनी से स्नेह रखने वाला भ्रमर भी मालती को देखकर नवरस की लालसा से उसे पाये बिना क्या धीरज धरता है, इसी स्थिति में कालिदास ने मालविकाग्नि मित्रम में – "मुग्धे भ्रमर संवाद इति वासन्तारवर्वत्वभूतः किं न चूतप्रसवो वतसनीयः ।"

मनोरमा – अयि लज्जालुके[1], न युक्तमेतामवस्थां गतयापि त्वया आत्मा प्रच्छादयितुम।

। आण्यका मुखमवनमयति ।[2]

मनोरमअयि अविस्त्रम्मशीले, किमिदानीं प्रच्छायासि । नि:श्वास निभनिविर्गतो दिवसं रात्रिमपि तवानुरागोऽविरतपतत्कुसुमशरशर निवह प्रवृत्तहुडकार शब्द इव न भणति ? आत्मगतम् अथवा न खल्वय काल उपालम्भस्य । तत्तावन्नलिनीपत्राण्यस्या हृदये दास्यामि । समाश्वसितु सखी समाश्वसितु।

उपरोक्त आरण्यका और मनोरमा के वार्तालाप से यह ज्ञात होती है कि एक स्त्री दूसरी स्त्री के दु:ख को जान सकती है, क्यों कि यहॉ पर आरण्यका द्वारा कामावस्था के अभिनय से उसकी मनः प्रवृत्ति इतनी उदयन के लिये लालायित हो गयी है कि उसे अपने चित्त का होश ही नहीं रहा कि आखिर हमारी इस व्यथा को कोई सुन भी नहीं सकता है । मनोरमा उसकी शारीरिक व मानसिक व्यथा को जानकर व दोकर उसके समीप जाकर पूर्ण आश्वासन देती है कि मैं तुम्हारी पूरी सहायता करूँगी ।

भास तथा हर्ष के उदयन रूपक नाटकों में सम्मोह मनोवृत्ति का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्मता, गहराई व निपुणता से किया गया है । हर्ष ने नारी सम्मोह मनोवृत्ति को विद्ववता केक साथ मन के अन्दर तक जाकर स्पष्ट शब्दों में वर्णित किया है जब कि भास ने भी नारी की इस मनोवृत्ति को मात्र संकेतों के द्वारा ही व्यक्त किया है ।

4. ईष्या ।असूया । -

मन के विविध विकारों के समान ईर्ष्या और असूया भी समुद्भूत होते रहते हैं । जब किसी की गुणवत्ता, सम्पन्नता, सपतता आदि पर सहज द्वेषमूलक

---

1. प्रिय0, तृतीय अंक, ले0 रामनाथ त्रिपाठी, प्र0 सं0 वि0 सं0 2035, पृ0 154 –

लज्जां लापि आदेत इति लज्जालुः, सैवलज्जालुका

तत्सम्बोधने लज्जालुके "मितद्रिवदिभ्य उपसंख्यानाम्

इस वार्तिक को डु प्रत्यय कर 'अनुकस्यायाम्' इस सूत्र से क प्रत्यय स्त्रीत्वविक्षा में

'टाप' प्रत्यय होने पर लज्जालुका पद निष्पन्न होता है ।

2. प्रियदर्शिका, तृतीयांक, पृ0 60, ले0 रामनाथ त्रिपाठी, प्र0 सं0 वि0 सं0 2035.

जो सन्ताप मन अनुभव करता है, उसे ईर्ष्या या दाह । डाह । कहा जाता है जब कि असूया किसी के गुण को भी दोषारोपित कर खीझ रूप में प्रकट होती है । ये मनोवृत विकार स्त्री–पुरूषों में विशेषतया खण्डित नायिकाओं में प्रायः पाये जाते हैं । भास तथा हर्ष के नारी पात्र भी इसके अपवाद नहीं हैं, क्यों कि यथा स्थान इन्हें इन विकारों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति मनोवैज्ञानिक रूप में पायी जाती है ।

स्त्री में यह स्वाभाविक गुण है कि उसके अन्दर ईर्ष्या की भावना बहुत जल्दी पनपती है। जब उदयन का विवाह[1] पद्मावती से होना निश्चित हो गया तो यह जानकर वासवदत्ता के विरही हृदय को और आघात पहुँचा, दर्शक के महल में विवाह की चहल पहल है । इससे बचने के लिए वासवदत्ता अकेली व्यथित हृदय प्रमद वन में बैठी है । अवन्तिका महाकुलोत्पन्न और निपुण है अतः महारानी की इच्छा है कि विवाह माला । जयमाला । को अवन्तिका ही अपने हाथ से गूँथे । दासी जब वासवदत्ता की दशा विचित्र हो जाती है । पति से अलग गुप्त रूप से रहना और फिर अपनी ऑखों के सामने उसका अन्य स्त्री से विवाह, भाग्य की विडम्बना देखिये, जयमाला भी स्वयं वासवदत्ता को गूँथनी पड़ रही है ओर इन सबसे बढ़ कर यह है कि वासवदत्ता कुछ बोल तक नहीं सकती । उसे चुपचाप रहकर सब कुछ करते हुए भाग्य की विडम्बना को सहना है । वासवदत्ता के हृदय का यही संवेदन इस अंक का विषय हे वह सब सहती है, पर आखिर एक प्राणी है, जब सपत्नी मर्दन औषधि को गूँथने का प्रश्न आता है तो वह साफ मना कर देती है । भास ने यहॉ उसकी महानता को अक्षुण्ण रखते हुए भी उसे मनुष्य स्तर में संवेदनशील बनाये रखा है ।

च्तुर्थ अंक में भामिनि[2] सम्बोधन से सम्बोधित करना है । पद्मावती के चरित्र को भास ने इतना ऊँचा बनाकर रखा है कि वह मनुष्य लोक के स्थान पर दैवलोक की प्रतीत होती है । ईर्ष्या का लेशमात्र भी न तो पद्मावती में कहीं दिखाई पड़ता

---

1. स्वप्नवासवदत्तम्, तृतीय अंक, पृ0 62, व्या0 आचार्य श्री शेषराज शर्मा रेग्मी, चौ0 सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, संस्करण 2001.

2. स्वप्न0, चतुर्थ अंक, पृ0 32, व्या0 गणेशदत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, सुभाष बाजार, मेरठ, प्र0 सं0 1968 –

"भामिनी" को कोपना सैवभामिनी' जो कोपना है वही भामिनी है । अन्यासक्त प्रिय के प्रति स्त्री का ईर्ष्या जन्य कोप ही मान कहलाता है । अतएव मानिनी ही कहते हैं इसी को कोपना और भामिनी कहते हैं ।

है और न वासवदत्ता में ही उसकी गंध आती है । स्वप्नवासवदत्तम् को पढ़कर कई बार लगता है – "भला ऐसा भी सम्भव है प्रेम में ईर्ष्या न हो तो वह प्रेम ही कैसा ? क्योंकि प्रेम का मनोवैज्ञानिक आधार सम्भवता ईर्ष्या ही है ।"

भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक में नारी पात्रों में ईर्ष्या की अभिव्यक्ति का अभाव पाया जाता है । अगर कोई नायक किसी परकीया स्त्री या अन्य को झूठे ही प्यार करने लगे तो उसके हृदय में ईर्ष्या की भावना उठने लगती है । निम्न श्लोक में नायक विदूषक से कहता है । यथा[1] –

समारूढ़ा प्रीतिः प्रणयबहुमानादनुदिनं
व्यलीकं वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्वं खलु मया ।
प्रिया मुञ्चत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ
प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविसह्यं हि भवति ।।

प्रेम के उत्पन्न होने पर चित्त के अन्य भाव । विचार, संज्ञादि । तिरोहित हो जाते हैं, जिसमें निरन्तर आनन्द का कल कल स्रोत बहता रहता है तथ श्रृंगार की प्रवृत्ति, उत्कर्ष के साथ – साथ तरलता और सरलता आ जाती है ।[2] इस प्रकार का प्रेम अकारण[3] होता है । इसका मूल्यांकन तो किया नहीं जा सकता । दो हृदयों का यह प्रेम एक दूसरे के समर्पण के भाव से उत्कर्ष को प्राप्त होकर प्रणय[4] की संज्ञा को प्राप्त करता है । इस काल में एक क्षण के लिये वियोग असहाय हो जाता है[5] ।

---

1. रत्ना0, 3/15, पृ0 161, व्या0 बैजनाथ पाण्डेय, प्र0 सं0 1980.
2. कर्पूर मा0 3/12, – "यस्मिन् विकल्पघटनादि कलंङ्क मुक्तः आत्मनः सरलस्वमेति भावः ।
   एकैकस्य प्रसरद्रस प्रवाहः श्रृंगार वर्दित मनोभवदवतसारः ।।"
   "अन्तर्निविष्टमदनविभ्रमम्बरं यत् तत् मण्यते च मदनमण्डलमत्मप्रेम ।"

3. कर्पूर0 3/9– "कदापि संडघटते कस्यापि प्रेमग्रन्थिः एवमेव तत्र न खलु कारणमस्ति रूपम् ।"

4. भा0प्र0 पृ0 79– "प्रेमनीतं प्रकर्षे चेत्स एव प्रणयः स्मृतः ।"

5. कु0सं0 8/15–16– " भावसूचितमदृष्टविप्रियं दार्व्यभाव क्षण वियोग कातरम् ।

कैश्चिदेव दिवसैस्तथा प्रश्तयो प्रेमगूढ़ मितरोतराश्रयम्

तं यथात्मसदृशं वरं वधूरन्वरज्यत वरस्यैव ताम् ।

सागरदानपगा हि जान्हवी सोऽपि तन्मुखसैववृत्ति भाक् ।।"

वस्तुतः दाम्पत्य जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में संकोच होता है । धीरे–धीरे परस्पर समादर और समर्पण के कारण लज्जा के कच्चे धागे टूट जाते हैं और प्रेम का वास्तविक रस मिलने लगता है। राजा उदयन के कहने का आशय यह है कि मैंने आज तक किसी अन्य रमणी को स्वप्न में भी स्मरण नहीं किया था । इस समय परकीया प्रेम रूप जो असत् आचरण किया है उसे महारानी ने अपनी ऑखों से देखा है । इसलिये उन्हें किसी प्रकार समझाया नहीं जा सकता । लेकिन दारा सेवन[1] महापाप है ।[2] इस पाप को देखकर महारानी कभी भी सहन नहीं कर सकती हैं । क्यों कि स्त्रियॉ परकीया के नाम को सुनकर मूर्च्छित[3] हो जाती हैं तो पति के परकीया प्रेम को देखकर कैसे जीवित रह सकतीं ? अतः वासवदत्ता निश्चित ही अपने प्राण त्याग देगी । ऐसी स्थिति में प्रिया–विहीन मेरा जीवन संकटपूर्ण होगा ही साथ–साथ संसार में अपयश भी होगा ।

प्रियदर्शिका नाटक के तृतीय अंक में नायक – नायिका । आरण्यका । का हाथ पकड़ता है तो वासवदत्ता मन ही मन ईर्ष्या से जल उठती है, कहती कुछ नहीं पर वहॉ पल भर नहीं ठहरती है।

भास ने अत्यन्त कलात्मक ढंग से नारी हृदय की आन्तरिक ईर्ष्या का वर्णन किया है। उनकी नायिका वासवदत्ता जीवन पर्यन्त अपनी हृदय की ईर्ष्या छिपाये रहती है । हर्ष के ग्रन्थों की प्रधान नायिका वासवदत्ता अपने मन में उत्पन्न ईर्ष्या अपनी सखियों से कहती है ।

---

1. उ0रा0 1/39– द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।

   कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्सनेहसारे स्थितं

   भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थ्यते ।।"

2. मनु0 स्म0 4/134 – "न हीदृशमभिचारमन्त्र लोके किञ्चनविद्यते

   यादृशं पुरूषस्येह परदारोपसेवनम् ।।"

3. शिशु0 व0 6/56– स्फुटमिदमभिचारमन्त्र एव प्रतियुवते रभिधान भङ.नानाम्

   वरतनुभुनोपहूय पत्या मृदुकुमेन यदाहृताप्यमूर्च्छत् ।"

5. द्वेष । मात्सर्य । -

मात्सर्य मानवीय मन के सहज विकास हैं जो किसी भी अप्रिय जन के प्रति अशुभ, अनिष्ट एवं हानिकारी भावों से परिपूर्ण रहते हैं । भास तथा हर्ष के नारी पात्रों में द्वेष जैसे मनोगत विकार भी दृष्टिगोचर होते हैं ।

पद्मावती पर पुरूष दर्शन से बचती है । सारी स्थिति को समझ कर पति. परायण होने के कारण ही वह वहॉ से चली जाना चाहती है । किसी भी अवस्था में उदयन को दुःख न हो यही उसका लक्ष्य है ।[1] जब कि पद्मावती के प्रति उसके मन में सौतिया डाह भी हो सकता था किन्तु उसका दृष्टिकोण इसके विपरीत अत्यन्त उदार है । पद्मावती के साथ विवाह हो जाने पर भी वह इसलिये सन्तुष्ट है कि अब उसके प्रिये । उदयन । को सान्त्वना देने के लिये किसी ने रिक्त स्थान को भर दिया है । नायक सोचना है कि हमारे परकीया प्रेम को जानकर स्वकीया नायिका प्राण त्याग देगी । राजा विदूषक से कहता है कि इस तरह तुम मेरा उपहास[2] कर रहे हो । अरे तुम्हारे द्वारा ही तो किया हुआ यह महान अनर्थ[3] हमारे ऊपर आ पड़ा है । सागरिका जब गले में बाहुपाश डालना चाहती है तो राजा की मानसिक दशा बड़ी विचित्र होती है । यथा[4] -

अलमलमतिमात्रं साहसेनाऽमुना ते

त्वरितमयि विमुञ्च त्वं लतापाशमेतम् ।

चलितमपि निरोद्धुं जीवितं जीवितेशे

क्षणमिह मम कण्ठे बाहुपाशं निधेहि ।।

अर्थात् राजा उदयन के जीवन की स्वामिनी सागरिका असफल प्रेम के कारण अपनी जीवन लीला समाप्त करने वाली है । राजा उसे समझा रहे हैं कि

---

1. स्वप्नवासव0, चतुर्थ अंक,, पृ0 165, ले0 जयपाल विद्यालंकार, द्वि0 सं0 1972.

   "एवं भवतु । अथवा तिष्ठ त्वम् । उत्कण्ठितं भर्तारमु

   जित्वाऽयनिर्गमनम् । अहमेव गमिष्यामि ।"

2. रत्ना0, टी0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 1976.

   तुलना, विक्रमो0 2 .... "मूढनायं परिहासकालः।"

3. रत्नावली, 3/17, ले0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, प्र0 सं0 1980 –

   "तुमने ही सागरिका के अभिसरण की योजना बनायी लेकिन विपरीत परिणाम निकला । महारानी मेरे परकीया प्रेम को देखकर आत्महत्या कर लेगी इसलिए तुमने मेरे सिर पर अनर्थो का पहाड़ पटक दिया है ।"

4. रत्ना0, 3/17,ले0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसी, प्र0 सं0 1980.

तुम्हीं मेरे जीवन की कामिनी हो अर्थात् यदि तुम्हें मृत्यु की शय्या से प्रेम है तो तुम्हारे बिना मेरा जीवन शमशान बन जायेगा । इसलिए तुम दोनों के जीवन की रक्षा के लिए आत्महत्या रूप अमर्यादित साहस रूक जाओ अर्थात् आत्मघात भावी जीवन का अभिशाप है । इस आत्म–हत्या[1] के आलिङ्गन का साहस लोक एवं शास्त्र दोनों में वर्जित है । इसे स्वीकार करना चींटी से बचने के लिए सिंह के मुख में प्रवेश करना है । इसलिए शीघ्र ही नरक प्रदान करने वाले इस लता–पाश का परित्याग कर दो । मेरे प्राण तुम्हारे विरह में मुझे छोड़ना चाहते हैं, तुम्हीं उसे बांध सकती हो क्यों कि तुम्हारे पास कोमल बाहुरूपी लता पाश है । इसलिए पलायन करने वाले इन प्राणों को मेरे गले में अपना बाहुपाश डालकर बांध लो अर्थात् तुम्हारे बाहुपाश के लिये मेरा कण्ठ लालायित है । क्षण[2] भर के लिए अनुकम्पा तुम्हारी बाहुलता के क्षण भर के स्पर्श से मेरा जीवन लौट आयेगा और जीवितेशा पद सार्थक हो जायेगा । कवि ने इह शब्द का प्रयोग किया है अर्थात यह एकान्त स्थल है, रात्रि का समय है इसलिये तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिये । इसलिये तुम आलिङ्गन कर मेरे चलायमान जीवन को गति प्रदान कर दो[3] अथवा 'इहि आत्मनि अर्थात जब तक मेरे प्राण मुझे छोड़ रहे हैं, ऐसे समय में शीघ्रतापूर्वक मेरे गले में अपना बाहुपाश डालकर तुम्हें मेरे जीवन की रक्षा करनी चाहिए । मेरे विरहानल को गले लगाकर शीघ्र बुझाओ ।

भास व हर्ष दोनों ने लगभग एक ही परिस्थिति में नारीह्रदय की वेशभावना का वर्णन किया है । फलतः इस मनोवृत्ति का वर्णन समचातुर्य पूर्वक किया है । यद्यपि कहीं – कहीं भास की नारी का द्वेष भावना का प्रदर्शन अधिक उत्तम झलकता है ।

---

1. ईश0 303 – " असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
   तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति येके चात्महनो जनाः ।।"
2. अ0को0 1/4/11 – "अष्टादश निमेषास्तु कण्ठा त्रिंशतु ताः कलाः ।
   तास्तु त्रशत्क्षणः.................................... ।"
3. मालविका0 4/13 –तु0 – " विसृज सुन्दरि संगम साध्वसं तव चिरात्प्रभृति प्रणयोन्मुखे ।
   परिग्रहण गते सहकारतां त्वमति मुक्तलता चरितं मपि ।।"

6. अहंकार –

प्रायः पुरूषों एवं नारियों में कुलीनता रूप , सौन्दर्य , धन सम्पत्ति , प्रभुत्व आदि की मन में जो अस्मितापूर्ण मिथ्या – भावना पनपी होती हे उसे अभिमान अथवा अहंकार कहते हैं । भास तथा हर्ष के किसी भी नारी पात्र में यह मनोगत भाव स्पष्ट नहीं झलकता है । भास के नारी पात्र अहंकार विहीन वर्णित हैं जबकि हर्ष की नायिका वासवदत्ता में रानी तुल्य यत्र तत्र झलकता है ।

7. उन्माद –

यह भी मन का विकार है जिसके असमंजस्य के कारण बुद्धि भी सामान्य कार्य नहीं करती । अतः मन एवं बुद्धि की अस्त व्यस्त अवस्था से जब कोई नारी या पुरूष पागल जैसा असामन्य आचरण करने लगे तो इसे अन्माद कहा जाता है । रस के संचारी भावों में भी उन्माद की एक भाव स्थिति है । जब नायक या नायिका का मन । चित्त । ठिकाने नहीं रहता है जैसा कि नायक अपनीं मनोदशा की अव्यवस्था से सविदूषक से कहता है । यथा –[1]

शय्या नावनता तथास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातौषधैः ।
रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता
प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ।।

नायक का उन्माद इतना बढ़ जाता है कि वह कहता है –

परिम्लान पीनस्तनजघनसंङ्गादुभयत
स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम् ।
इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः
कृशाङ्ग्याः संतापं वदति नलिनीपत्रशयनम् ।।[2]

अपि च –

---

1. स्वप्न वासवदत्तम् ,5/4 , पृ0 142 , व्या0 गंगासागर राय ; प्र0चौ0 संस्कृत , संस्थान वाराणसी , प्र0सं0वि0सं0 2054.
2. रत्नावली , 2/13 , पृ0 78 , व्या0 पं0 परमेश्वरदीन पाण्डेय , प्रका0 चौ0 सुरभारती वाराणसी , चतुर्थ संस्करण 1989.

स्थितमुरसि विशालं पद्मिनीपत्रमेतत्
कथयति न तथान्तर्मन्मथोत्थामवस्थाम् ।
अतिगुरुपरितापम्लापिताभ्यां यथास्याः
स्तनयुगपरिणाहं मण्डलाभ्यां ब्रवीति ।।[1]

इतना ही नहीं उन्मादावस्था का और भी सुन्दर वर्णन किया गया है । यथा –

मनश्चलं प्रकृत्यैव दुर्लक्ष्यं च तथापि मे ।
कामेनैतत्कथं विद्धं समं सर्वैः शिलीमुखैः ।।[2]

अर्थात चचंल गुणों[3] का परिणाम होने से मन स्वाभाविक रूप से अत्यन्त चंचल[4] होता है । मन के द्वारा सुख – दुःखादि का साक्षात्कार होता है । यह अणु परिणाम वाला है ।[5] यह अतीन्द्रिय[6] होता है । इसलिए इन्द्रियों द्वारा मन को देखा नहीं जा सकता है , न उसे लक्ष्य बनाकर उसका भेदन ही किया जा सकता हे । चंचल अणु और अदृश्य स्वभाव वाली वस्तु पर सर संधान ही नहीं जा सकता है।

राजा उदयन का मन दुर्लक्ष्य इसलिए भी है कि उनका मन तो उनके पास है ही नहीं । सागरिका रूपी माधुरी ने उसका हरण कर लिया है । राजा उदयन का मन तो उनकी प्रेयसी सागरिका के पास है इसलिए राजा के पास मन के न होने से कामदेव के लिये दुर्लक्ष्य है ।

---

1. रत्ना0 , 2/14 , पृ0 100 , व्या0 डॉ0 राजेश्वर राजू शास्त्री मुसलगॉवकर , प्र0 चौ0 सं0 संस्थान वाराणसी , प्र0सं0 वि0सं0 2054.
2. रत्ना0 , 3/2 , व्या0डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्र0 सं0 1980
3. चौ0 भा0 3/13– "चलम् च गुणवृतं ।"
4. गीता 6/34– "चंचलम् हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।"
5. न्याय0 सि0मु0 – 85– "साक्षात्कारे सुखादीनाय करणं मन उच्यते ।
   अयोगष्दाज्जानानां तस्याणुत्व मिहोच्यते ।।"
6. तर्क0 भा0 पृ0 164– "ज्ञानकरणमतीन्द्रियं इन्द्रियम् ।"
   चौ0आ0वि – "न च इन्द्रियत्वसामान्यस्य स्वलक्षणमिन्द्रि विशेषः ।"
   तत्व कौ0 का0 5– "प्रत्यक्षणोचरोऽवार्क दृशाम् ।"

किन्तु काम साधारण धनुर्धारी नहीं है, उसने राजा के उपरोक्त गुण वाले मन पर एक ही नहीं पॉच–पॉच बाणों का एक ही साथ सन्धान किया है और वे बाण राजा के मन को भेदन कर उन्हें आश्चर्यचकित कर रहे हैं । उन्मादावस्था में अपने हृदय से चेतन की भॉति बात कर रहे हैं । कामानल में जलता हुआ शरीर जड़ सा हो गया है, सागरिका की चिन्ता में अस्वस्थ्य है । यथा –

बाणाः पञ्च मनोभवस्य नियतास्तेषामसंख्या जनः

प्रायोऽस्मद्विध एव लक्ष्यइति यल्लोके प्रसिद्विं गतम् ।

दृष्टं तत्त्वयि विप्रतीपमधुना यस्मादसंख्यैरयं

विद्धः कामिजनः शरैशरणो नीतस्त्वया पञ्चताम् ।।[2]

नायिका की दशा अव्यवस्थित हो जाने के कारण वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ती है। इस पर राजा ऑसू भर कर मन ही मन कहता है –

एषा मीलयतीदमीक्षणयुगं जाता ममान्धा दिशः

कण्ठोडस्याः प्रतिरूध्यते मम गिरो निर्यान्तिकृच्छ्रादिमाः ।

एतस्याः श्वसितं हृतं मम तनुर्निश्चेष्ट तामागता

मन्येऽस्या विषवेग एवहि परं सर्वतु दुःखं मम ।।[3]

इस प्रकार भास व हर्ष के नाटकों में कहीं – कहीं मनः प्रवृत्ति का उन्माद अनेक स्थलों पर अभिव्यक्त हुआ है । उन्माद के वर्णन में हर्ष भास से अग्रगण्य हैं ।

8. उद्वेग -

जब मन में विद्यमान भय, अकुलाहट, चिन्ता, आश्चर्य, घबराहट आदि भावों की एक साथ मिश्रित अभिव्यक्ति तीव्रता पूर्वक होती है तो उसे उद्वेग की संज्ञा दी जाती है । उद्वेग में आश्चर्य और व्याकुलता जैसे विकारों का सांकर्य सामान्यतः वेगपूर्वक प्रकट होता है ।

स्त्री स्वभाव अधीर, भीरू बताया गया है । स्त्री प्रायः स्वभाव से ही भीरू होती है । वह तनिक सी ही बात से घबरा उठती है[4] । उदयन ने यहाँ

---

1. अ0 को0 – "उन्मादनस्तापनश्च स्तम्भनः शोषणस्तथा ।

   सम्मोहनश्चपञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकः ।। "

2. रत्ना0 3/3, पृ0 102, व्या0 परमेश्वरदीन पाण्डेय, प्र0 चौ0 सुरभारती, वाराणसी, चतुर्थ सं0 1989.

3. प्रिय0, 4/9, पृ0 101, टी0 पं0 रामचन्द्र मिश्र, प्रका0 चौ0 विद्या भवन, वाराणसी, द्वि सं0 1976.

4. स्वप्न0, चतुर्थ अंक, पृ0 59, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, द्वि0 सं0 1972.

पद्मावती के इसी स्त्री प्रसिद्व स्वभाव का उल्लेख किया है । महाकवि भवभूति ने भी स्त्रियों के चित्त की कोमलता व अधीरता का चित्रण किया है ।[1] वासवदत्ता के मन का उद्वेग अनेक स्थलों पर "स्वप्नवासवदत्तम्" में अभिव्यक्त हुआ है । नायक नायिका के चित्र को देखकर उसके प्रति मन के उद्वेग को रोक नहीं सका तथा अत्यन्त व्याकुलतापूर्वक विदूषक से अपने मन के भावों को व्यक्त किया है[1]। निम्न श्लोक में राजा की उद्वेग[2] नामक कामावस्था व्यक्त हुई । यथा[3] –

संतापो ह्रदय स्मरानलकृतः संप्रत्ययं सह्यतां

नास्त्येवोपशमोऽस्य तां प्रति पुनः कि त्वं मुधा ताम्यसि ।

इसका आशय यह है कि राजा उदयन सागरिका के विरहानल में जल रहे हैं । वे अपने उद्यम विरह पावक की ज्वाला को छिपाने[4] के लिये एकान्त में महल की अटारी पर विराजमान हैं । सागरिका से मिलने के लिये अपने व्याकुल ह्रदय को समझा रहे हैं कि ह्रदय शान्त हो जाओ । मेरी त्रुटि के कारण तुम अनल में जल रहे हो । कदली गृह में सुसंगता के कहने पर मैंने कामानल की शान्ति के लिये ही सागरिका का पारिजात पल्लव के सदृश कर ग्रहण कर लिया था । उसका कर गाढ़े चन्दन रस के समान शीतल और सुरभित थी । वह मादक कर भाग्य से ही प्राप्त हुआ था, क्योंकि उत्कट पुण्य के उदय होने पर ही मनोहारिणी रमणी के हाथ का स्पर्श प्राप्त होता है । उसका वह कर देर तक मेरे हाथ में था, उस कर को ह्रदय पर रखकर । मुझे । कामानल को शान्त कर लेना चाहिये था लेकिन उस क्षण मैं मूढ़ हो गया था । उसके हाथ स्पर्शजन्य आनन्द ने ही मेरी इन्द्रियों की

---

1. उत्तररामचरितम् 4/12, पृ0 143, "पुरन्ध्रीणाम चित्तं कुसुम सुकुमारं हि भवति।"

2. भा0प्र0पृ089— "उद्वेगो मनसः कम्पःक्रोधशोके भयादिजः,

निःश्वासोन्निद्रिताचिन्ता सतम्भोबैवर्ण्यमश्रुच,

न शयपासनयोः प्रतिर्हल्लेखो दीनतापि च,

एवमुदवेगता भावाः कन्दर्प परिकल्पताः ।।"

3. रत्ना0 3/1, पृ0 101, व्या0 पं0 परमेश्वरदीन पाण्डेय, चौ0 सुरभारती प्रका0 वाराणसी, चतुर्थ सं0 1989.

4. न0ध0 1/51, तु0 — "मृषाविषादिभिनयादयं क्वचिज्जुगोप निःश्वासततिं

वियोगजम् ।

विलेपनस्याधिकचन्द्रभागता विभावनाच्चापललाप पाण्डुताम् ।।"

चेतना छीन ली थी ।[1] इसलिए अमृत रस की वर्षा करने वाले कर को अपने जगते ह्रदय पर अनुराग पूर्वक नहीं रख सका । अब तो सागरिका के वियोग काल में प्रिया का स्मरण कराने वाले स्मरण । कामदेव । के उद्दाम पावक में न चाहते हुए भी जलना पड़ रहा है । परकीया और परतंत्रता होने के कारण उसमें मैं मिल भी नहीं सकता । सागरिका पर महारानी का संदेह हो जाने के कारण राजा होकर भी उसे बुलाकर काम–शमन नहीं कर सकता । सागरिका अब तो वासवदत्ता के क्रूर एवं दृढ कारागार में बन्द होगी । अतः तुम उससे मिलने के लिये क्यों उत्कंठित और दुःखी हो । दुःख करने से भी उसका दर्शन नहीं हो सकता है । अपने द्वारा किये गये अपराध पर पश्चाताप करना व्यर्थ है ।[2] कहने का आशय यह है कि जब कदलीगृह में सुअवसर प्राप्त था तब तुम उसके स्पर्श–जन्म आनन्द समुद्र में डुबकी ले रहे थे, उसके आलिङ.न के लिए व्याकुल नहीं थे, और अब उसका दर्शन असम्भव है, तब व्यर्थ उसकी याद में जल रहे हो ।

इसी प्रकार तृतीय व चतुर्थ अंक में चिन्ता, भय, कायरता, आदि तीव्रता से व्यक्त हुए हैं । प्रियदर्शिका में अपनी प्रिय सखी आरण्यका को समझाती हुई मनोरमा के समक्ष अपने मन के उद्वेग को प्रकट करती है जिसमें विस्मय, व्याकुलता, निराशा की तीव्र अनुभूति हुई है ।

9. स्वप्न –

जब जाग्रत अवस्था में मन किसी साक्षात्कार का आत्मीय अथवा अभीष्ट प्रिय जन का निरन्तर ध्यान और चिन्तन करता है तो सुप्तावस्था में सामान्यतः स्वप्न में भी वही प्रिय जन का साक्षात्कार स्त्री या पुरूष करते रहते हैं ।

---

1. उत्तररामचरितम् 3/39, तु0 आलिम्पन्नमृतमयैरिव प्रलेपै –
   रन्तर्वाबहिरपि वा शरीर धातून ।
   संस्पर्शः पुनरपि जीवयन्नकस्मा –
   दानन्दादपर मिवादधाति मोहम् ।।"
2. रत्ना0, सं0 तथा व्या0 डा0 बैजनाथ पाण्डेय, प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, पृ0 125 –
   "विहां क्वचित् संदशति स्वददिभस्ततत्वेदनायां कतमाय कुप्येत । "

भास तथा हर्ष ने मनोविज्ञान के साहचर्य के सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए नारी पात्रों की स्वप्नावस्था को चित्रित किया है क्यों कि प्रायः नारियां या गणिकायें अपने उन्हीं प्रियतमों को स्वप्न में सामान्यतः देखा करती हैं जिनका साहचर्य उन्होने अधिक प्राप्त किया है अथवा जिनसे वे अधिक रागात्मक भावपूर्व सम्बन्ध रखे होते हैं । नाटक में नायक । उदयन । अर्ध जाग्रतावस्था में वासवदत्ता को रोकने के लिये हड़बड़ाहट में उठना और फिर द्वार से टकराना अत्यन्त नाटकीय है । उसके मन में द्विविधा हो गयी है , उदयन की यह द्विविधा इस स्वप्न प्रसंग की अत्यन्त सुन्दर नींव बन गयी है । उभय–पक्षाश्रित उदयन के मन का चित्रण बहुत ही अच्छा है ।[1]

निम्न श्लोक में नायक को स्वप्न तो आया पर जागने पर उसने जिस मुख की झलक देखी वह वासवदत्ता थी[2] –

"स्वप्नस्यान्ते विबुद्वेन नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् ।
चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम् ।।"

अपि च वयस्य ! पश्य पश्य[3] –

"योऽयं सन्त्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः ।
स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्ष न मुञ्चति ।।"

इस श्लोक में प्रेम के चिन्ह अभिव्यक्त होने पर भी वह स्वप्न और विभ्रम से अभिभूत है । इसलिये सम्पूर्ण प्रसंग का आधार स्वप्न है । इसी आधार पर नाटक का नाम 'स्वप्नवासवदत्तम' बहुत ही समीचीन है । हर्ष की अपेक्षा भास ने नारी व पुरूष पात्रों की स्वप्नावस्था को मनोवैज्ञानिक पृष्ठीभूमि पर 'साहचर्य के नियम के अनुसार' ही प्रस्तुत किया है ।

10. स्मृति –

प्रत्येक स्त्री या पुरूष चेतन या अचेतन मन से अपने घनिष्ठ सहचर अथवा प्रियजन का स्मरण अवश्य करता है । प्रिय आत्मीय जन के साथ साहचर्यपूर्ण पूर्वदृष्ट स्थलों या दृश्यों के भी मन में स्मृति समायी रहती है जो मनोवैज्ञानिक

---

1. सा0 दर्प0, 10/64– निष्क्रामन् संभ्रमेणाहं द्वारपक्षेण तडितः ।

ततो व्यक्तं न जानामि भूतार्थोऽयं मनोरथः ।।"

2. स्वप्न0, 5/10, व्या0 गणेश दत्त शर्मा, प्र0 रतिराम शास्त्री, प्र0 सं0 1968.

3. स्वप्न0 5/11, ले0 डा0 जयपाल विद्यालंकार, प्र0 मोतीलाल बनारसीदास द्वि0 सं0, 1972.

"साहचर्य नियम" के अनुसार वह स्मृति उन प्रिय के साथ निवास किये या पूर्व दृश्य स्थलों, दृश्यों आदि को देखकर उद्बुद्धि हो उठती है । भास व हर्ष ने मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर उसी साहचर्य नियम को ध्यान में रखकर अपने नारी पात्रों की स्मृति अपनी कृतियों में यथास्थान वर्ण्य विषय विप्रलंभन श्रृंगार के साथ चित्रित किया है ।

'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक के पांचवें अंक में अचानक उदयन को वासवदत्ता स्मरण हो जाती है, कारण भी यह है कि वासवदत्ता यह समझती है कि पदमावती सो रही है अतः वह उसी के समीप सो जाती है जब उसे यह आभास होता है कि यह उदयन है तो वह वहाँ से उठकर चली जाती है, उसी के स्पर्श से[1] –

शय्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे ! गता ।

दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वञ्चितोऽस्मि रुमण्वता ।।"

वह वासवदत्ता को याद करते हुए कह उठता है[2] वासवदत्ता के निरन्तर उसकी स्मृति में बने रहने के कारण ही ऐसा होता है । उदयन भी उसका कारण मानता है । "ततो वाणी तथैवेयं पूर्वाभ्यासेन निस्मृता" वह वासवदत्ता की स्मृति से आच्छादित अपने हृदय का ठीक–ठीक विश्लेषण करता है । उदयन ही नहीं, बद्वमूल प्रेम को तो कोई भी नहीं छोड़ सकता[3] । छठे अंक में वासवदत्ता की स्मृति युद्व में रत होने के कारण कुछ मंद सी पड़ गयी, लेकिन वीणा को देखकर स्मृति फिर से उभर आयी । उसे थोड़े समय से स्मृति वियोग भी पहाड़ जैसा लगता है । यथा[4] –

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः।"

सागरिका तूलिका से राजा । नायक । का चित्र व्यक्त कर देती है उसकी प्रिय सखी सुसंगता उससे इस चित्र के विषय में पूछती है कि यह किसका चित्र है । उस पर वह कहती है मेरे स्वामी हैं लेकिन उसी को वह चित्र अधूरा लगता है । वह उसमें सागरिका को भी चित्रांकित कर देती है, अचानक वह चित्रपट उसी स्थान पर छूट जाता है, उस नायिका का स्मरण करने लगते हैं और कह उठते हैं –

---

1. स्वप्न0, 5/8, पृ0 159, व्या0 गंगासागर राय, प्रका0 चौ0 संस्कृत संस्थान वाराणसी प्र0 सं0, वि0 सं0 2054.

2. स्वप्न0 चतुर्थ अंक पृ0 54, व्या0 गणेशदत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, प्र0 सं0 1968. –"वसन्तक! सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै।"

3. स्व0, पंचम अंक, ले0 जयपाल विद्यालंकार, पृ0 68, द्वि0 सं0 1972. "स्मराभ्यवन्ताध्यितेः सुतायाः ।"

4. स्वप्न0 षष्ठ अंक, पृ0 175, व्या0 गंगासागर राय, चौ0 संस्कृत, संस्थान वाराणसी प्र0सं0 वि0सं0 2054.

"लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः।

मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव।।"

जिस समय सागरिका अग्नि के चारो तरफ से घिर जाती है, वासवदत्ता उदयन से उसको बचाने के लिये आग्रह करती है, सागरिका उदयन को देखकर उसे पूर्व स्मरण हो आता है, अतः वह अपने बचने के लिये छटपटाती है जिस पर राजा कहता है–

" मुहुर्तमपि सहयतां बहल एष धूमोद्गमो।"

11. मूर्च्छा –

मन के साथ जब इन्द्रियाँ अतिशयशोक या शारीरिक कष्ट से चेतनवत कार्य नही करती तो मन एवं इन्द्रियों कि इस अचेतनावसथाको मूर्च्छा कहते है । जो निद्रा या स्वप्नावस्था से सर्वथा भिन्न होती है , क्योंकि निद्रा से मन की चेतना समाप्त नही होती । करूण रस में शोक तथा विप्रलम्भ श्रृंगार ममें स्थायी भाव रति जब शोक के रूप में परिणत हो जाती है तो उन्माददादि संचारी भावों के साथ मूर्च्छा मन इन्द्रियों को अचेतन सा बना देती है।

भास तथा हर्ष के नारी पात्रों की मुर्च्छावस्था का मानोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर चित्रण पाया जाता है। नायक को जब यह समाचार मिलता है कि उसकी प्रेमिका ने जीवन त्याग दिया, इस पर वह मूर्च्छित हो जाता है, लेकिन पुनः सॅभलकर वह कह उठता हैं यथा[3]–

"प्राणाः[4] परित्यजत काममदक्षिणं मां

श्रे दक्षिणा भ्सवत मद्वचनं कुरूध्वम्

शीघ्रं न यात यदि तन्मुषिताः स्थ नूनं

याता सुदूरमधुना गजगामिमनी सा ।।"

राजा के कहने का आशय यह है कि सागरिका के बिना मै क्षण भर भी जीवित नही रह सकता, क्योंकि सागरिका के प्रेम मे गंगा की पवित्रता थी।

---

1. रत्ना0 2/9,पृ090,व्या डॉ0राजेश्वर (राजू) शास्त्री मुसलगावँकर, चौ सं0सं0 प्र0 सं0 वि·2054.

2. रत्ना04/17, पृ0170, व्या0 परमेश्वरदीन पाण्डेय चौ0 सुर0 प्रका0 वाराणसी , चतु0 सं0 1989.

3. रत्ना 4/3,व्या0डॉ0 वैजनाथ पाण्डेय , प्रका0 मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्र0 सं01980.

4. आ0 को 01/1."प्राणो पानः समानश्रोदानाव्यानो च वायव; शरीरिस्था डमे ।"

दो प्राणी मिलने के लिए व्याकुल हो तो उस प्रेम मे मृत्यु भी श्रेष्यकर है।[1] इसलिए सागरिका से मिलने के लिये मुझे जीवित नही रहना नही चाहिए । राजा उदयन की व्याधि–अवस्था अभिवयक्त हो रही है।[2]

आण्यका विष का पान कर लेती है, क्योकि वह अपने मन को काबू मे ना रख सकी जिससे कि मूर्च्छित हो जाती है इस पर उदयन कह उठता है[3] –

एषा मीलयती दमीक्षणयुगं जाता ममान्धा दिशः

कण्ठोऽस्याः प्रतिरुधयते मम गिरो निर्यान्ति कृच्छ्रादिमाः।

एतस्याः श्वसितं ह्रत मम तनुर्निश्चेष्टतामागता

मन्येऽस्या विषवेग एव हि पंर सर्व तु दुःखं मम।।"

बेचारी वासवदत्ता अपना अपराधकबूल करती हुई कहती है[4], प्रियदर्शिका की मूर्च्छावस्था के साथ ही मूर्च्छाशनैः शनैः दूर होने का सुन्दर चित्रण हुआ है ।

12. परिकल्पना –

मन का स्वभाव जहॉ संकल्प विकल्प का है वहॉ बुद्धिसे प्रेरित किसी भी रागात्मक सांसारिक विषय के प्रति परिकल्पनाशील भी है । मन किसी भी तर्क पर पहुॅचने के पूर्व बुद्धि के माध्यम से परिकल्पना स्मृति, साम्य आदि के आधर पर विविध प्रकार से करता है। वस्तुतः मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर परिकल्पना का क्षेत्र अत्यन्त प्रभावी तथा व्यापक है । भास तथा हर्ष की नारी पात्र भी पर्याप्त परिकल्पनाशील परिलक्षित होते हैं ।

---

1. मालवि0 3/15–"अनोतुरोत्कण्ठितयोः प्रसिद्धतया व समागमेनापिरतिन मां प्रति।

परस्परप्राप्तनिराशयोर्वरंशरीरं नाशोऽपि समानुरागयोः।।"

2. आ0प्र0,पृ0 79– " मुमूर्षा जीविकोपेक्षा यतनं यत्र कुत्रचित ।

स्रस्ताक्षता निःश्वसितं स्तम्भश्च परिदेवितम्।।"

3. प्रिय0 4/9,ले रामनाथ त्रिपाठी ,चौ प्रेसवाराणसी , प्र0स0,वि0 स0 2035.

4. प्रिय0,चतुर्थ अकं, ले0 रामचन्द्र मिश्र, प्र0चौ0 विद्याभवन वाराणसी, द्वि0 1976 पृ0101–"वासवदत्ता– । सास्रम्र। प्रियदर्शने, उत्तिष्ठोतिष्ठ । पश्यैष महाराज तिष्ठति । कथ वेदनाप्यस्या नष्टा । किमिदानीं मयापराद्धमजानत्या, येन कुपिता नालपसि । तत्प्रसीद प्रसीद । उत्तिष्ठोतिष्ठ । न खुल पुनरपरात्स्यामि। ।ऊर्ध्वमवलोक्य। हा दैवहतक, किमिदानीं मयापकृत येनैतदवस्थां गता मे भगिन्यादर्शिता।"

समीक्षा –

उपर्युक्त विवेचन के आधर पर हम कह सकते है कि भास तथा हर्ष ने मनोवैज्ञानिक पृष्ठ भूमि पर नारी पात्रों के मनोगत विविध विकारों काम, क्रोध , सम्मोह , ईर्ष्या, देष, असूया, अहंकार, उन्माद, उद्वेग, भय, हर्ष शोक, स्वप्न, स्मृति, मूर्च्छा, परिकल्पना आदि का यथार्थ चित्रण किया है। चिन्ता के कारण नारी पात्र की विमनस्कता, दारूण शोक के कारण बुद्वि मन की विक्षिप्तता, रक्षा, कठोरता तथा चिड़चिड़ापन कभी–कभी आत्महत्या जैसे मनः प्रवृत्ति, अपराध बोध से मन की कातरता, विषम परिस्थति में मन का अन्तर्द्वन्द, मनोरोग का स्वप्न आदि की मनोवैज्ञानिक तथा स्वाभाविक अभिव्यक्ति इन कवियों के द्वारा की गयी है । कहीं–कहीं हर्ष की अपेक्षा भास मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर इन मनोविकारों को अधिक सशक्त रूप में व्यक्त करने में सफल हुये हैं ।

वस्तुतः जीवन में तन की अपेक्षा मन का नीरोग रहना अत्यन्त आवश्यक है । जो नारी मनोरोग ग्रस्त हैं उससे समस्त समाज एवं घर परिवार भी प्रभावित होकर रूग्ण सा हो जाता है । शरीर से स्वस्थ होने पर भी सद्लक्षणों या सहिष्णुता, उदारता, सेवा–परायणता जैसे गुणों से गृहणियॉ यदि युक्त नहीं हैं, तो ऐसी मनोरोग से पीड़त वामा युवतियॉ भास के मतानुसार कुल के लिये अर्द्वसवरूपा हो जाती हैं । अतः दोनों कवियों के नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से तुलनात्मक अध्ययन करने पर मानव जीवन में अनेक मनोविकार स्वाभाविक ही प्रतीत होते हैं ।

सप्तम अध्याय

जीवन के अन्य विविध क्षेत्रों मे नारी पात्रों की भूमिका तथा नाटकीयता की दृष्टि से अध्ययन

सप्तम अध्याय

जीवन के अन्य विविध क्षेत्रों में नारी पात्रों की भूमिका तथा नाटकीयता की दृष्टि से अध्ययन -

पूर्व अध्यायों में यद्यपि भास तथा हर्ष के नारी पात्रों का सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन के साथ सांस्कृतिक उत्कर्ष का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है तथापि जीवन के अन्य विविध महत्वपूर्ण क्षेत्रों में जिनका पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन से अत्यन्त घनिष्ठ सापेक्ष सम्बन्ध है, अनुसंधानपूर्ण विवेचन का प्रयास इस अध्याय में किया जा रहा है जिनमें नारी पात्रों के जीवन की आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि पक्षों की सक्रिय भूमिका उल्लेखनीय रहती है।

किसी भी राष्ट्र अथवा समाज के सर्वांगीण विकास के लिए पुरूष और नारी का परस्पर योगदान सर्वोपरि है। इन दोनों की संहति के बिना मानव जीवन की सार्थकता व्यर्थ हो जाती है। पुरूष और नारी समाज रूपी रथ के दो पहिये हैं यदि एक पहिया निर्बल है तो रथ की गति रूक जायेगी। अतः आवश्यक है कि रथ के पहिये रूपी पुरूष और नारी दोनों समान रूप से सक्षम हों। भारतीय संस्कृति में स्त्री को पुरूष की अर्धांगनी माना है।

नारी पुरूष की पत्नी, भगिनी तथा पुत्री होने के साथ–साथ जननी भी है। जननी होने से उसके उक्त सभी उदात्त गुणों का प्रभाव शिशु रूप पुरूष के जीवन पर पड़ता है और इन्हीं गुणों से अपने जीवन को ऊंचा उठाकर मानवता की प्रतिष्ठा करता है। युगीन परिस्थितियों के कारण नारी की उन्नति में अवरोध–विरोध अवश्य रहा परन्तु उस तमसावृत वातावरण की समाप्ति से आज के जागरण काल में है। अपने दिव्य गुणों से मानव समाज को उन्नत एवं गौरवान्वित कर रही है।

प्राचीन काल मे नारीत्व के गौरव की प्रतिष्ठा थी। वैदिक काल में नारी पुरूष की सहधर्मिणी थी। पुरूष के समस्त कार्यो में नारी का महत्वपूर्ण योगदान था। उस काल में नारियाँ ब्रह्मवादिनी होतीं थीं। पत्नी के रूप में उसका उच्च स्थान था। वेद संहिता के मंत्रों से सम्बद्ध रोमखा, लोपामुद्रा, श्रद्धा, कामयनी, विवस्वती, पौलोमी । सती । आदि प्रसिद्ध हैं। सूर्या, गार्गी, सुलभा, मैत्रयी, ममता आदि नारियां भी ब्रह्मवादिनी थीं।

रामायण और महाभारत में नारी शक्ति, सम्मान, श्रद्धा, प्रेम, त्याग, सौन्दर्य आदि विविध गुणों का प्रतीक थीं। पार्वती, अनुसूया, सीता, द्रोपदी, गान्धारी, आदि नारियाँ अपना महत्व इतिहास में अंकित किये हुए हैं और वे पुरूषों से विशिष्ट हैं। महाभारत के अनुसार स्त्री धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की जड़ है। वह पुरूष की सबसे बड़ी मित्र है। वह सुख मे मित्र तथा रूग्णावस्था में माता के समान है। इस प्रकार नारी के विविध कर्तव्यों की मीमांसा और उसका व्यावहारिक आचरण तत्कालीन समाज में हमारे प्राचीन साहित्यिक ग्रन्थों में देखा जा सकता है।

मनु द्वारा विरचित मानव धर्मशास्त्र जो हिन्दू समाज के जीवन का विधान है, स्त्रियों के विषय में स्पष्ट घोषणा करता है –

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रिया।[1]
शोचन्ति जाययो यत्र विनश्चत्याशु तत्कुलम्
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वथा।।[1]"

जहां नारियों का सत्कार होता है वहां देवता निवास करते हैं और जहां इनका अनादर होता है वहां सभी क्रियायें निष्फल हो जाती हैं। यही क्यों जिस कुल में शोकग्रस्त

रहतीं हैं वह कुल नष्ट हो जाता है, पर जहां इन्हे कष्ट, शोक नहीं होता वह कुल बढ़ता जाता है।

मनुस्मृति के उस उल्लेख से स्पष्ट है कि नारीत्व के सम्बन्ध में उस समय एक यथार्थवादी उद्यन्त भावना थी तथा व्यक्ति और समाज के जीवन में नारी को महत्व, गौरव एवं सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था।

आज हम नारी जाति के विशिष्ट गुणों के प्रतीक रूप में प्राचीन नारियों का उल्लेख करते हैं। माता के रूप मे कौशिल्या, पत्नी, सती और पवित्रता के रूप में सीता, पार्वती, गान्धारी, सावित्री इत्यादि। धर्म पालन करने वाली सहधर्मिणी के रूप में पति के साथ सुख–दुःख सहने वाली के रूप में शैव्या और दम्यन्ती शक्ति के रूप मे दुर्गा, भक्ति के रूप में मीरा, वीरता के रूप में लक्ष्मीबाई आदि का उल्लेख किया जाता है।

---

1. मनुस्मृति– 3/56, 57.

भारतीय इतिहास के मध्यकाल में नारी के प्रति जो विलासमय भावना थी उनके परिणाम स्वरूप ही संतो और भक्तों की वाणियों में नारी–निन्दा देखने को मिलती है। नारी के बाह्य रूप पर जोर देने के कारण समाज में उसके गुणों की प्रतिष्ठा समाप्त हो गयी। उसका कार्य केवल पुरूषों को रिझाना रह गया। समय का नवनिर्माण नहीं। वह युगीन प्रवृत्ति का दोष था, सिद्धान्त नहीं। काल की गति विचित्र होती है वह परिवर्तनशील है। समय सदा एक सा नहीं होता।

परिवर्तनशीलता विश्व की शाश्वत क्रिया है। रात के बाद दिन तथा अंधेरे के बाद प्रकाश आता है जो काल अवनत था, वह आज उन्नत के शिखर पर है। इसी प्रकार यहाँ देश की दशा बदली, बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के प्रथम और द्वितीय चरणों तक भारतीय नारी की दशा गिरती गयी परन्तु इसके पश्चात् समाज में नई चेतना आने लगी और नारी शिक्षा प्रारम्भ हो चुकी है। भारत सरकार ने नारी शिक्षा को प्राथमिकता दी। उसने नारी अधिकारों की रक्षा के लिए कानून बनाया।

नारियों में करूणा, सहनशीलता, दया आदि गुण प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, बौद्ध धर्म का प्रधान तत्व "करूणा" नारी के प्रधान गुण का आधार लिये हुए है। गांधी जी की अहिंसा नारी में सहनशीलता और दयाभावना से सम्बद्ध है। आज का जाग्रत विश्वास करने लगा है कि समाज मे केवल नारी के सम्मान और महत्व से ही काम न चलेगा वरन् उसके अर्न्तगत नारी सुलभ गुणों के विकास की आवश्यकता है। मानव समाज में मानवता के विकास और प्रतिष्ठा हेतु सुशीलता, शिष्टता, पर दुःख कातरता, क्षमा, प्रेम, आदि सद्‌गुणों की आवश्यकता है।

आज हमारे समाज में नव–निर्माण की आवश्यकता है। यदि हम अपने सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर यह निर्माण कर सकें तो समस्त विश्व के लिये यह एक

आधारभूत नवीन प्रयोग होगा। मानव जाति के लिए वांछित शान्ति सम्भव हो सकेगी। इसके लिए हमें नारी के बाह्रय सौन्दर्य एवं कामिनी रूप के असन्तुलित अभिनन्दन की आवश्यकता नहीं है वरन् उसके सामंजस्य पूर्ण सहयोग एवं रचनात्मक प्रतिभा की आवश्यकता है। नारी आज अपने त्याग से मधुर व्यक्तित्व एवं रचनात्मक कार्यो से समाज को स्वच्छ, सुन्दर और सम्पन्न बना सकती है।

आर्थिक क्रियाओं में नारी पात्रों की भूमिका -

अर्थ मनुष्य को धन प्राप्ति की मूल प्रवृत्ति और सम्पत्ति के भोग का परिचायक है। उसे जीवन का उद्‌देश्य मानकर हिन्दू शास्त्रकारों ने धन प्राप्ति को एक उचित आकांक्षा माना अर्थ और काम दोनों को ही उचित मानकर ऋषियों ने यह स्पष्ट कर दिया कि आर्थिक या उद्‌देश्यात्मक रूप मे संतुष्ट होने पर ही केवल व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कर सकता है। जहां धर्म और काम सांसारिक पदार्थो की प्राप्ति और भोग पर बल देते हैं। जियर के अनुसार "अर्थ से तात्पर्य मूल्यवान वस्तुओं, सम्पत्ति, सांसारिक, ऐश्वर्य, व्यापार मे लाभ आदि से है। इनमे हम सभी उन भौतिक पदार्थो को शामिल करते हैं जिन्हे प्राप्त किया, भोगा और खोया जा सकता है, जिसकी आवश्यकता हम अपने दैनिक जीवन में गृहस्थी चलाने के लिए, परिवार का निर्माण करने के लिए और धार्मिक कर्तव्यों को पूरा करने के लिए अनुभव करते हैं।"

सम्पत्ति की धारणा उतनी ही पुरानी है जितनी की आर्यकाल, क्योंकि ऋग्वेद में इसकी चर्चा है और इसमें पशु उपनिषदों में भी सम्पत्ति को एक अच्छी वस्तु बताया गया है। महाभारत में तो यहाँ तक कहा गया है कि जो कुछ भी हम इस संसार में धर्म कहतें हैं वह पूरी तरह सम्पत्ति पर निर्भर करता है। जो किसी की सम्पत्ति चुराता है वह उसका धर्म भी चुराता है। निर्धनता सब बुराईयों और पापों की स्थिति है। सम्पत्ति होने पर व्यक्ति अनेक

सत्कर्म कर सकता है। धार्मिक कृत्य, आनन्द, सुख, साहस, क्रोध और ज्ञान यह सब सम्पत्ति से ही निकलते हैं। जिसके पास धन नहीं है वह धार्मिक कृत्य नहीं कर सकता। कौटिल्य इस बात का विरोधी था कि लोग अपने समाज और परिवारों की मांगों और उनके प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा किये बगैर सन्यास लें। ऐसे व्यक्तियों को राज्य द्वारा दण्ड मिलना चाहिए। कौटिल्य के विचार में सन्यासियों को गांवों में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं मिलनी चाहिए क्योकि वे गांव की आर्थिक क्रियाओं मे विघ्न डालते थे।

पंचत्रंत के अनुसार सम्पत्ति व्यक्ति की शारीरिकशक्ति, आत्मविश्वास और शक्ति प्रदान करती है। धनी व्यक्ति का इस संसार में बेहद आदर होता है, जबकि उच्च कुल में उत्पन्न निर्धन लोग घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं। कथासरित् सागर, पंचतंत्र और हितोपदेश में श्रम को अधिक महत्व दिया गया है। और कहा गया है कि श्रम के द्वारा न कि इच्छा मात्र से सम्पत्ति प्राप्त होती है और सम्पत्ति केवल ऐसे व्यक्तियों के पास रह सकती है जो उद्योगी, बहादुर और बुद्धिमान हैं।

नारी पात्रों का आर्थिक जीवन भौतिक परिस्थितियों से सम्बद्ध समाज सापेक्ष आवश्यक आवश्यकताओं की सम्पूर्ति कर समद्ध प्रतीत होता है। अर्थिक पक्ष से जुड़ी प्राथमिक आवश्यकताओं में जहां भोजन, वस्त्र और आवास की सम्पूर्ति अपरिहार्यतः स्त्री पुरूष करते हैं वहां समाज में शिक्षा, स्वास्थ्य मनोरंजन, प्रभृति गौण आवश्यकतायें भी उपेक्षित नहीं की जातीं हैं। इनकी सम्पूर्ति हेतु ये विविध आर्थिक क्रियायें उद्योग धन्धे करते हैं। नारी पात्रों द्वारा भौतिक वस्तुओं के उत्पादन जैसे कृषि कार्य, कुटिर उद्योगों में भाग लेना आदि प्रदर्शित नहीं है परन्तु नर पात्रों को वे उत्पादन कार्य में सहयोग निश्चित रूप से देतीं होगीं। भास तथा हर्ष के नारी पात्रों के इस दृष्टिकोण पर आधृत आर्थिक पक्ष का तुलनात्मक अध्ययन यहां किया जा रहा है।

मानव जीवन की प्रमुख आर्थिक क्रियायें उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण एवं राजस्व क्रियायें हैं। इनमें नारी पात्रों की सहभागिता स्वाभाविक है। उपभोग का अर्थ है किसी वस्तु की उपयोगिता मे कमीं करना है। हमारे साधारण जीवन में इसके अर्न्तगत प्रमुखतः खान–पान, वेश–भूषा, दान–दक्षिणा, रहन–सहन का स्तर आदि का अध्ययन किया जाता है। उत्सव, प्रीतिभोज, शादी के समय विशेष भोजन बनवाया जाता था। यद्यपि संस्कृत के रूपकों में रंगमंच पर भोजन । खान–पान। करने का अभिनय नाट्य शास्त्र मे वर्जित होने के कारण भोजन सम्बन्धी विविध पदार्थो धन्यादि का बहुत कम उल्लेख इनकी नाट्य कृतियों मे प्राप्त होते हैं। तथापि यत्र तत्र बिखरे सन्दर्भो के आधार पर नारी पात्रों की खान–पान की स्थिति से आर्थिक पक्ष पर पर्याप्त प्रकाशं डाला जा सकता है।

कात्यायन के अनुसार "अभ्यवहारस्य पञ्चविधित्वं भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य पानीय भेदेन" अर्थात्– पांच प्रकार के सम्पूर्ण खाद्य पदार्थ भक्ष्य, भौंज्य, लेह्य, चोष्य तथा पानीय विषयक वर्गीकरण को मान्यता देते हुये कालीदास ने भी विक्रमोर्वशीयम् में एक स्थल पर पंच विधि का स्पष्ट उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज मे नारियाँ अपनीं पाकशाला में पांच प्रकार के भोज्य पदार्थ तैयार कर उनका परिवार के साथ स्वयं भी सेवन करतीं थीं। भास व हर्ष ने इन नाटकों में इसका स्पष्ट विश्लेषण नहीं किया गया है, इन्होनें अपने अन्य नाटकों मे इस विषय पर दृष्टिगोचर अवश्य किया होगा।

नारी पात्रों रत्नजटित बहुमूल्य स्वर्ण एवं रजत के आभूषण दासियों एवं परिचारिकाओं का बाहुल्य, राजमहल की भव्तया, महरानी एवं राजदरबार की अन्य नारियों की वैभव एवं सम्पन्नता का चित्रण करता है। बहुमूल्य वस्त्रों एवं आभूषणों का दान भी आर्थिक सम्पन्नंता की स्थिति का परिचायक है। उत्पादन का आशय किसी भी वस्तु या सेवा की उपयोगिता में वृद्धि करना है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार उत्पादन के अर्न्तगत केवल

भौतिक वस्तुओं का उत्पादन ही नहीं वरन् मानव पूंजी निर्माण भी सम्मिलित है। प्राचीन भारतीय नारी अधिकांश समय गृह में व्यतीत करती थीं। वे परिवार के लिए भोजन एवं खाली समय में वस्त्रों को सिलनें, काढ़नें एवं अन्य गृह उपयोगी वस्तुओं के निर्माण में लगातीं थीं। मानव पूंजी निर्माण के लिए अच्छा स्वास्थ्य, सफाई, शिक्षा एवं मनोरंजन बहुत आवश्यक है। प्राचीन भारतीय नारी गृह की सफाई व श्रृंगार के स्वास्थ्य पर अपना ध्यान केन्द्रित करती थी। वह परिवार के सभी सदस्यों को स्वास्थ्य के लिए उनको पौष्टिक आहार देती थीं, मंगल गीत गाती थी और पूजा–अर्चना करती थीं। प्राचीन समय से ही भारतीय नारियों को शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था थी। जो पुरूषों के साथ सभी कार्यो में हिस्सा लेती थीं। प्राचीन भारतीय इतिहास में अनेंको ऐसी प्रतिभा सम्पन्न नारियाँ हुई हैं जिन्होने अपनी शिक्षा एवं विद्वता के बल पर ख्याति अर्जित की। मनोरंजन के लिए संगीत, क्रीड़ा बिहार आदि की व्यवस्था थी। प्राचीन काल में ही भारत में मुद्रा प्रणाली का समुचित विकास हो गया था। मुद्रा मे स्वर्ण मुद्रायें व रजत मुद्रायें प्रचलन में थीं। उन पर राजाओं के नाम, चित्र या अन्य संकेतों का टंकण किया जाता था। इसके अतिरिक्त हीरा, मोती, जवाहरात आदि बहुमूल्य वस्तुओं का प्रयोग भी किया जाता था। व्यापार के लिए मुद्राओं व बहुमूल्य धातुओं का चलन था। पशुओं को भी धन के रूप मे सम्मिलित किया जाता था। इन मुद्राओं के चलन के बावजूद समाज मे वस्तु विनियम प्रथा भी प्रचिलित थी। नारी द्वारा इन मुद्राओं का प्रयोग किया जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। समाज में धन का असमान विभाजन था। एक तरफ साधन सम्पन्न व्यक्ति तथा दूसरी तरफ साधन हीन व्यक्ति थे। समाज मे राजा, राज परिवार के सदस्य, महामंत्री, सेनापति, जागीरदार, भूखा आदि भी विशिष्ट स्थान रखते थे, इनके पास धन एवं ऐश्वर्य की प्रसन्नता थी। दूसरी तरफ मेहनत करने वाले कृषक, श्रमिक एवं समाज के गरीब वर्ग के लोग थे। इनकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी।

प्राचीन समय में भी युद्ध के लिए सैनिक एवं मुद्रा की आवश्यकता पड़ती थी। इसके लिए राजा, व्यापारी, श्रमिक एवं कृषक वर्ग पर कर लगाया करता था। जागीरदार इन करों को एकत्र करने मे राजा की मदद करता था। मंत्री समय–समय पर राजा को आर्थिक एवं राजीतिक विषयों पर मंत्रणा देता था। करों से एकत्रित धनराशि राजकोष मे रखी जाती थी। राजा इस धनराशि का स्वेच्छा से प्रयोग कर सकता था। राजकोष से देश की बाह्य आक्रमणों से रक्षा, सैन्य व्यवस्था, आन्तरिक सुरक्षा, कुआं, तालाब, सड़के, गरीबों की मदद आदि कल्याणकारी कार्य कियें जाते थे। इन कार्यो में नारी का भूमिका अहम नहीं थी। परन्तु कुछ कल्याणकारी कार्य राजा–रानी के माध्यम से भी सम्पन्न करवाते थे।

भास व हर्ष के उदयन नाटकों की कथावस्तु राज परिवार के इर्द–गिर्द केन्द्रित होने के कारण नाटकों के नारी पात्रों की आर्थिक वैभव एवं सम्पन्नता की स्थिति में चित्रण स्वाभाविक है। हर्ष के नाटकों में कई स्थलों पर नारी पात्रों का अर्थ पर आधारित वैभव प्रदर्शन पूरे चातुर्य के साथ किया गया है। उनके उदयन रूपकों मे वर्णित कुछ महत्वपूर्ण प्रसंगों का विवरण इस कथन की पुष्टि करता है। भास के नाटकों मे वासवदत्ता पद्मावती एवं उसकी सखियों के नख–शिख वर्णन में अनेकों स्थलों पर उनकी आर्थिक सम्पन्नता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

हर्ष के नारी पात्र भास की तुलना मे आर्थिक दृष्टि से अधिक सम्पन्न हैं। भास ने किसी भी नारी पात्र की विपन्नता की स्थिति का वर्णन नही किया है जबकि हर्ष ने रत्नावली की विपन्नता की स्थिति का मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। एक राजकुमारी भाग्य के बन्धनवश दासी हो जाती है और शालीनता एवं विवशतावश वह अपने विषय में कुछ नहीं कह पाती है।

राजनीतिक क्षेत्रों में नारी पात्रों की भूमिका –

भास एवं हर्ष के उदयन रूपकों से राजशाही व्यवस्था की झलक मिलती है। उस समय देश मे छोटे–छोटे राजा थे जिनमें परस्पर युद्ध हुआ करते थे। युद्ध से बचने के लिए राजनीतिक सन्धियां भी होतीं थीं। प्रायः राजा की पुत्री का विवाह दूसरे राजा के साथ होता था। सैन्य शक्ति से उदयन नाटकों की पृष्ठभूमि में राजा उदयन को समृद्ध करनें के लिए यौगन्धरायण एक सुविचारित योजना के अनुसार कार्य करता है।

नाटक के प्रारम्भ में ही नागवन में काल्पनिक नीले हाथी को वास्तविक हाथी समझकर उसका आखेट करने गये, किन्तु वहां उन्हें प्रद्योत के सैनिकों ने युद्ध में पराजित कर बन्दी बना लिया। इस वृतान्त को सुनकर यौगन्धरायण बहुत चिन्तित होता है। वत्सराज के बन्दी होने के समाचार को सुनकर खिन्न होंती है और साथ ही यौगन्धरायण के बुद्धि वैभव की प्रसंशा करते हुए यह प्रार्थना करती है कि उसे उदयन को बन्धन मुक्त करना चाहिए। इस पर यौगन्धरायण कहता है–

यदि शत्रुबलग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव।
मोचयामि न राजानं नास्ति यौगन्धरायणः।।[1]

इसी समय निर्मुण्डक प्रवेश करता हुआ कहता है– आर्य! आश्चर्य निर्वृत्तम्। भर्तुः शान्तिनिमित्तमुपस्थित भोजन ब्राह्मण जनं प्रेक्ष्य केनापि किलोन्मत्त वेशधारिणा ब्राह्मणेनोच्चं हसित्वोक्तं स्वैरं स्वैरमश्नन्तु भवन्तः, अभ्युदयः खल्वस्य राजकुलस्य भविष्यतीति ततो वचनसमकालमेवादर्शनं गतः।[2]

तत्काल ब्राम्हण प्रवेश करता है। उसी से यौगन्धरायण कहता है–

उन्मत्तसदृशो वेषो धारितस्तेन साधुना।
मोचयिष्यति राजानं मां च प्रच्छादयिष्यति।।[3]

---

1. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, 1/16 "प्रकाश" संस्कृत–हिन्दी व्याख्योपेतम् चौ0 विद्याभवन वाराणसी।

2. प्रतिज्ञा0, प्र0 अंक, पृ0 39, टी0 डा0 गंगासागर राय, चौ0 सं0 वाराणसी प्र0 सं0 वि0 सं0 2051.

3. प्रति0, 1/17, "प्रकाश" संस्कृत–हिन्दी व्याख्योपेतम्, चौ0 विद्याभवन वाराणसी।

उदयन की वासवदत्ता से शादी कराने का पूर्ण रूप से राजनीतिक उद्देश्य है। नाटक का उद्देश्य यौगन्धरायण की योजना के अनुसार राजा की शादी कराके उसको शक्तिशाली बनाना है। प्रद्योत सर्वप्रथम अपनें प्रमुख कर्मचारियों से और बाद में अपनी रानी अंगारवती से वासवदत्ता के विवाह के विषय में परामर्श करता है। वह विवाह के निमित्त भिन्न–भिन्न देशों से आये हुए राजाओं के नाम एवं गुणों का परिचय देते हुए पूछता है कि इनमें से किसको योग्य एवं विवाह के अनुरूप समझती हो?[1]

वत्सराज के गुणों को व्यक्त करते हुए राजा कहता है कि– उत्सेकयत्नेनं प्रकाश राजर्षि नामधेयो वेदाक्षर समवाय प्रविष्टो भारतो वंशः। दर्पयत्येनं दायाद्यागतो गान्धर्वो वेदः। विभ्रमयत्येनं वयस्सहजं रूपम्। विस्रम्भत्येनं कथमप्युत्पन्नोऽस्य पौरानुरागः। इस पर देवी कहती है कि– अभिलषणीया वरगुणाः। कस्य वामतया दोषः संवृत्तः।[2] अर्थात् कुलीनता, सुन्दरता, कुशलता और प्रजा के प्रति वात्सल्य भाव यह सब तो ऐसे गुण हैं जो वर में होने चाहिए और यह सब वत्सराज में भी हैं परन्तु फिर भी आप इनकों दोषी ठहराते हैं, निश्चय ही आप उसके प्रति ईर्ष्या रखते हैं। ।

राजा–देवी तुम इस विषय में क्यों आश्चर्य करती हो? देखो–

अग्निः कक्ष इवोत्सृष्टो दहत् कात्स्न्येंन मेदिनीम्।

अस्य मे शासनं दीप्तं विषयान्तेऽवसीदर्ति।।[3]

नाटक में पहले युद्ध तथा बाद में सन्धि का वर्णन है। युद्ध मे यद्यपि राजा उदयन बन्दी बना लिये जाते हैं परन्तु बाद में वासवदत्ता को लेकर भागने में सफल हो जाता है और फिर दोनों विवाह सूत्र में बंध जाते हैं।

कारागार में राजा वासवदत्ता को अचानक देखता है और उसको देखते ही वह आसक्त हो जाता है तथा वसन्तक को सूचना देता है कि मैं वासवदत्ता को छोड़कर कारागार से भागने के लिए तत्पर नहीं हूँ।

---

1. प्रति0 2/1, पृ0 44 "प्रकाश" संस्कृत–हिन्दी व्याख्योपेतम्, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी–

   व्यक्तं न तावत् समुपैति तस्य दूतोवधूत्वे विहिता हि यस्य।

   ततो नरेन्द्रेषु गुणान् नरेन्द्रो न वेत्ति जानन्नति तत्प्रतीक्षः।।

2. प्रति0, द्वि0 अंक, पृ0 63, टी0डा0 गंगासागर राय, चौ0 संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

3. प्रति0, 2/11, पृ0 63, टी0डा0 गंगासागर राय, चौ0 संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

यौगन्धरायण राजा की बात सुनकर कहता है। यथा–

शक्ता दर्पयितुं स्वहस्तरचिता भूमिकटप्रच्छदा
पर्याप्तोः निगतस्वनश्चरणयो कन्दर्पमालम्बितुम्।
कः श्रुत्वा न भवेद्धि मन्मथपटुः प्रत्यक्षतो बन्धने
रक्षार्थं परिगण्यमानपुरूषैराजेति शब्दापनम्।।[1]

अपि च –

परित्यजाम सन्तप्तं दुःखेन मदनेन च।
सुहृज्जनमुपाश्रित्य यः कालं नावबुध्यते।।[2]

रूमण्वान् के द्वारा अनुमोदित बसन्तक यौगन्धरायण को उकसाता है और उसे राजा की मनोरथ को पूर्ण करने के लिए प्रेरित करता है। ऐसी स्थिति में यौगन्धरायण शपथ लेता है–

सुभद्रामिव गाण्डीवी नागः पद्मलतामिव।
यदि तां न हरेद् राजा नास्मि यौगन्धरायणः।।[3]

अपि च –

यदि तां चैव तं चैव तां चैवायतलोचनाम्।
नाहरामि नृपं चैव नास्मि यौगन्धरायणः।।[4]

वत्सराज नलागिरि को वश में करने के लिए मुक्त कर दिया जाता है जो यौगन्धरायण की चतुराई से उन्मत्त कर दिया गया है। इस सुअवसर का सदुपयोग करते हुए वत्सराज वासवदत्ता के साथ भद्रवती नामक हथिनी पर सवार होकर भाग जाता है और वह शत्रु द्वारा पकड़ लिया जाता है। प्रद्योत का मंत्री भरतरोहक उससे कारागार में मिलता है और उससे वाद–विवाद करते हुए –

---

1. प्रति0, 3/6, पृ0 99 "प्रकाश" संस्कृत–हिन्दी व्याख्योपेतम् "चौ0 विद्याभवन वाराणसी।
2. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् 3/7, " " " " " "
3. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् 3/8, " " " " " "
4. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् 3/9, " " " " " "

पश्यन्तु मां नरपतेः पुरूषाः ससत्त्वा

राजानुराग नियमेन विपद्यमानम्।

ये प्रार्थयन्ति च मनोभिरमात्यशब्दं

तेषां स्थिरीभवतु नश्यतु वाभिलाषः।।[1]

अन्त में यौगन्धरायाण की राजभक्ति एवं गुणा–गुणज्ञान की प्रशस्ति में एक स्वर्ण पात्र दिया जाता है लेकिन वह उसको लेने से इनकार करता है पर जब उसे ज्ञात होता है कि प्रद्योत ने वासवदत्ता और वत्सराज का विवाह एक चित्रफलक पर सम्पन्न किया–

स्त्रीजनेनाद्यं सहसा प्रहर्षव्याकुलक्रमा।

क्रियते मङ्लाकीर्णा सवाष्पा कौतुकक्रिया।।[2]

यौगन्धरायण ने आजीविका के लिए तपस्वी वेश धारण नहीं किया, बल्कि इसके पीछे उसका एक महान उद्देश्य निहित था। उदयन के खोये राज्य की पुनः प्राप्ति यौगन्धरायण का प्रमुख लक्ष्य है।[3]

अपनें राज परविार की महत्ता के कारण वह लगभग निश्चित समझती है कि यह विवाह हो ही जायेगा। तापसी भी इस प्रस्ताव को पद्मावती के लिए योग्य समझती है। उत्तरदायित्व विश्व में सबसे बड़ी वस्तु है और फिर धरोहर की रक्षा का उत्तरदायित्व और भी महत्वपूर्ण है। इसका निर्वाह सरल नहीं है। इस प्रकार कंचुकी की उक्ति भवति! महती खल्वस्य व्यपाश्रयणा। कथं प्रति जानीमः? कुतः –

सुखमर्थो भवेत् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः।

सुखमन्यद् भवेत् सर्वदुःखं न्यासस्य रक्षणम्।।[4]

---

1. प्रति0, 4/7, ''प्रकाश'' संस्कृत–हिन्दी व्याख्योपेतम्, चौ0 विद्याभवन वाराणसी।

2. प्रति0, 4/24, ''प्रकाश'' संस्कृत–हिन्दी व्याख्योपेतम्, चौ0 विद्याभवन वाराणसी।

3. स्वप्न0, 1/9, पृ0 16, व्या0 गणेश दत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, प्र0 सं0 1968–''कार्यं नैवार्थैर्नापि भोगैर्न वस्त्रे, र्नाहं काषाय वृत्तिहेतोः प्रपन्नः।

धीरा कन्येयं दृष्ट धर्मप्रचारा, शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः।।''

4. स्वप्न0, 1/10, पृ0 17, व्या0 गणेश दत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, प्र0 सं0 1968.

निम्न पद्य में मंत्री रुमण्वान् की राजा के प्रति अनन्य भक्ति प्रकट हो रही है–

अनाहारे तुल्यः प्रततरूदित क्षामवदनः

शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन्।

दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपतिं

नपृः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः।।[1]

राजा की रक्षा का असाधारण भार जिस मंत्री पर होता है राज की सारी क्रियायें एवं गतिविधियां भी उसी के अधीन रहती हैं–

सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः।

तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः।।[2]

कथा–सरितसागर के अनुसार वासवदत्ता के मृत्यु समाचार को सुनकर दर्शक ने स्वयं अपना दूत पद्मावती के विवाह प्रस्ताव को लेकर उदयन के पास भेजा है भास ने यहाँ कथा में कुछ परिवर्तन किया है। आरूण से छीने गये अपने राज को पुनः प्राप्त करने के लिए मगध नरेश से सहायता मांगना है।[3]

यौगन्धरायण की योजना का मुख्य उद्‌देश्य उदयन का खींचा हुआ राज शत्रु से पुनः प्राप्त करना है। यह अभी तक सम्पन्न नहीं हुआ है। इस योजना की मुख्य कड़ी ।पद्मावती से उदयन का विवाह। पूरी हो चुकी है। पर यदि इस समय भी दर्शक को सत्यता पता चल जाये तो हो सकता है इस धोखे से वह रूष्ट हो जाये और सैन्य सहायता न दे। वासवदत्ता को यदि कोई पहचान ले तो यौगन्धरायण की योजना असफल हो जाये। इसीलिये वह–

1. स्वप्नवासवदत्तम् 1/14, व्या0 गणेश दत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, प्र0 सं0 1968.
2. स्वप्न0 1/15, व्या0 गंगासागर रायः चौ0 संस्कृत संस्कृत संस्थान, वाराणसी, प्र0 सं0, वि0 सं0 2054.
3. स्वप्न0, द्वि0 अंक, पृ0 30, ले0 जयपाल विद्यालंकार, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, द्वि0 सं0 1972.
   "अन्यप्रयोजनेनेहागतस्याभिजनविज्ञानवयोरूपं दृष्टवा स्वयमेव महाराजेन दत्ता।"

कहती है– महान् खल्वार्य यौगन्धरायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फलः संवृत्तः।[1] यौगन्धरायण ने पूरी योजना राज्य के प्रधान पुरूषों के साथ मिलकर बनायी थी। वासवदत्ता को पद्मावती के पास रखना योजना का भाग था– स्वामिन्! सर्वैरेव ज्ञातम्।"[2] और यथा मन्त्रिभिः सह समर्थितं तथा परिणमति। ततः प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्रभवतीमुपनयती मे इहात्रभवती मगधराज पुत्री विश्वास स्थानं भविष्यति।[3] दर्शक के प्रासाद मे कोई नहीं जानता था कि आवन्तिका कौन है। किसी ब्राह्मण की बहन समझ जाती थी। उसके अनुपम सौन्दर्य एवं गुणों के कारण सम्भवतः उसे असामान्य समझा जाता था। कथा–सरित सागर के अनुसार उसने पद्मावती के लिए एक बार अम्लान माला और दिव्य तिलक भी बनाये थे। इनसे सुसज्जित पद्मावती को देखकर उसकी माता ने कहा था कि यह किसी मानुषी का काम न होकर देवी का काम प्रतीत होता है। मूल प्रसंग इस प्रकार है–

"तदभूषितां च दृष्ट्वा तां माता पद्मावती रहः।

पप्रच्छ मातातिलको केनेमो निर्मिताविति।।

ऊचे पद्मावती चैनामव मन्मन्दिरे स्थिता।

काचिदावन्तिका नाम तथा कृतमिदं मम।।

तच्छ्रुत्वा सा वभाषे तां माता पुत्रि! न तहि सा।

मानुषी कापि देवी सा यस्य विज्ञानमीदृशम्।।

देवता मुनुयश्चापि वञ्चनार्थ सतां गृहे।

तिष्ठन्त्येव तदा चैतामव पुत्रि! कथां श्रुणु ।।"[4]

---

1. स्वप्न0, पंचम अंक, पृ0 70, व्या0 जयपाल विद्यालंकार, द्वि0 सं0 वाराणसी, 1972.
2. स्वप्न0,षष्ठ अंक, पृ0 98, व्या0 जयपाल विद्यालंकार, द्वि0 सं0 वाराणसी, 1972.
3. स्वप्न0, प्र0 अंक, पृ0 14, द्वि0 सं0 वाराणसी।
4. स्वप्न0, व्या0 जयपाल विद्यालंकार, तृतीय लम्बक, द्वितीय तरंग, 32–35.

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः।

तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया।।[1]

उदयन पिछले दिनों युद्ध मे व्यस्त रहा है। पांचवे अंक के अन्त में हमने उसे वासवदत्ता को ही याद करते हुए छोड़ा था। दोनों अंकों के मध्य आरूणि से राज्य वापस लेने की घटना हुई है। इसमें कुछ दिन लगे होंगे। इन दिनों सम्भवतः उसे वासवदत्ता की याद में बहुत अधिक न सताया हो। उदयन के शत्रुओं द्वारा अपहृत राज की प्राप्ति के साथ-साथ मृत घोषिता वासवदत्ता की कुशलता की कामना आगे आने वाली घटनाओं का आभास कराता है। यथा –

सम्बन्धिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहर्षः

स्मृत्वा पुनर्नृपसुता निधनं विषादः।

किं नाम दैव! भवता न कृतं यदि स्याद्

राज्यं परैरपहृतं कुशलं च देव्याः।।[2]

सम्पूर्ण पृथ्वी के राजाओं को परास्त करनें मे समर्थ महासेन का नाम उनकी समर्थता का द्योतक है। महासेन अर्थात् विशाल वाहिनी से युक्त सेना ही राजाओं की शक्ति होती है अतः महासेन तत्कालीन राजाओं में सर्वाधिक समर्थ माने जाते है–

पृथिव्यां राजवंश्यानामुदयास्तमयप्रभुः।

अपि राजा स कुशली मया काङक्षितबान्धवः।।[3]

राजा वासवदत्ता के जीवनकाल में पद्मावती से विवाह नहीं कर सकते थे और खोये हुए राज्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक था। अतः यौगन्धरायण का यह कार्य राजा के कल्याण के लिए आवश्यक था। यथा–

---

1. स्वप्नवासवदत्तम्, 6/3, पृ0 175, व्या0 गंगासागर राय, चौ0 सं0सं0 वाराणसी।

2. स्वप्न., 6/5, पृ0 184, , व्या0 गंगासागर राय, चौ0 सं0सं0 वाराणसी, प्र0सं0वि0सं0 2054.

3. स्वप्न0, 6/6, पृ0 147, "चन्द्रकला" संस्कृत–हिन्दी व्याख्योपेतम् व्या0 शेषराज शर्मा रेग्मी, चौ0 सुरभारती प्रका0 वाराणसी।

प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपते हितार्थं

कामं मया कृतमिदं हितमित्वेक्ष्य।

सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ

किं बक्ष्यतीति ह्रदयं परिशङ्कितं मे।।[1]

राजनीतिक दृष्टि से महराज उदयन पाण्डववंशीय राजा थे। यथा–

भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवाऩ्वृद्धिभिः।

तन्नार्हसि बलाद्धर्तुं राजधर्मस्य देशिकः।।[2]

दृढ़वर्मा की पुत्री का नाम प्रियदर्शिका था उनको कलिंगाधिपति ने बन्दी बना लिया तो उनके कंचुकी ने जाकर वत्सराज उदयन से कहा–

राज्ञो विपद्बन्धुवियोगदुःखं देशच्युतिदुर्गममार्ग खेदः।

आस्वाद्यतेऽस्याः कटुनिष्फलायाः फलं मयैतञ्चिर जीवितायाः।।[3]

मै उनकी कन्या को आपको सौंपना चाहता था। रास्ते में मै अगस्त्य तीर्थ में स्नान करने चला गया, वह उनकी पुत्री को दृढ़वर्मा के मित्र बिन्ध्यकेतु के घर ठहरा दिया। जब तक मै वापस लौटा तो किसी ने बिन्ध्यकेतु का वध करके उस स्थान को जनशून्य कर दिया। उसी के विषय में मैं आपसे कहने आया हूँ।

नाटक के अन्त में जब अंगारवती का पत्र वासवदत्ता के द्वारा राजा को प्राप्त होता है तो उस सम्बन्ध मे उन्होनें वासवदत्ता से कहा कि शीघ्र ही दृढ़वर्मा का बध सा बन्धन हो, हमारी सेनायें यहां से चल चुकी है। यथा–

अस्मद्बलैर्विजयसेनपुरः सरैस्तै

राक्रान्तबाह्यविषयो विहत प्रतापः।

दुर्ग कलिङ्गहतकः सहसा प्रविश्य

प्राकारमात्रशरणोऽशरणः कृतोऽसौ।।[4]

---

1. स्वप्न0, 6/15, व्या0 गणेशदत्त शर्मा, प्र0सं0 सुभाष बाजार मेरठ।

2. स्वप्नवासवदत्तम्, 6/16, " " "

3. प्रिय0 1/4, टी0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री चौ0 अमर भारती प्रका0, वाराणसी, प्र0 सं0, वि0 सं0 2035.

4. प्रिय0 4/4, पृ0 90, "प्रकाश" संस्कृत–हिन्दी टीकोपेता पं0 रामचन्द्र मिश्र, चौ0 विद्याभवन, वाराणसी, द्वि0 सं0 1976.

अपि च–

निर्दिष्टाक्रान्तमन्दं प्रतिदिनविरम द्वीरदासरेवृत्तं

सध्वंसं शीर्यमाण द्विषतुरगनरक्षीण निःशेष सैन्यम्।

अद्य श्वो वा विभग्ने झटिति मम बलैः सर्वतस्तत्रदुर्गे

बद्धं युद्धे हतं वा भगवति न चिराच्छोष्यसि त्वं कलिङ्गम्।।[1]

हर्ष के नाटकों मे राजा उदयन की शादी राजनीतिक लाभ के लिए की जाती है।[2] राजा को राजनीतिक मंत्रणा देने के लिए मंत्री, महामंत्री होते थे। राज्य की राजनीतिक व्यवस्था की जिम्मेदारी उनके कंधो पर होती थी। राज्य का सारा भार उसने अपने योग्य मंत्री यौगन्धरायण के कंधों पर डाल दिया है। भलीभाँति लालन कर उसने प्रजा का पालन किया है, उसकी सारी कठिनाईयों को दूर कर दिया है। वह उत्सव का अद्वितीय प्रेमी है।[3] नगर के प्रशासनिक कार्यों को भी यह करते थे। प्राचीन भारतीय नारियों का शासन प्रबन्ध सैन्य व्यवस्था आदि कार्यों में भाग नहीं लेती थी। नाटक के नारी पात्र राजनीतिक क्षेत्र में नर पात्रों के पूरक के रूप में कार्य करते हुए दिखलायी पड़ते हैं।

---

1. प्रिय0, 4/5, टीका0 पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, प्र0 सं0 वाराणसी।
2. प्रिय0, 4/11, पृ0 106, "प्रकाश" संस्कृत–हिन्दी टीकोपेता, पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, प्र0 चौ0 विद्याभवन, वाराणसी, द्वि0 सं0 1976,

"निःशेषं दृढ़वर्मणा पुनरपि स्वं राज्यमध्यासितं

त्वं कोपेन सुदूरमप्यहृता सद्यः प्रसन्ना मम।

जीवन्ती प्रियदर्शना च भगिनी भूयस्तवया संगता

किं तत्स्यादपरं प्रियं प्रियतमे यत्साम्प्रतं प्रार्थ्यते।।"

3. रत्नावली, 1/19, पृ0 16, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी शास्त्री, द्वि0सं0 वाराणसी–

"राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः

सम्यक्पालनलालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गा प्रजाः।

प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं

कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः।।"

सांस्कृतिक क्षेत्रों में नारी पात्रों की भूमिका -

संसार मे दो प्रमुख विचारधारायें हैं जो विभिन्न संस्कृतियों मे पायी जाती हैं। एक है भौतिकवादी विचारधारा और दूसरी आध्यात्मिक विचारधारा। यद्यपि दोनों विचारधाराओं के अन्तिम लक्ष्य एक हैं– परमानन्द की प्राप्ति, परन्तु उस लक्ष्य को प्राप्त करने के मार्गो में भिन्नता है। इसी भिन्नता के आधार पर भौतिकवादी और अध्यात्मवादी संस्कृतियों की भिन्नता है। भारंत ने अध्यात्मवादी विचारधारा स्वीकार की अर्थात् जीवन के सबसे ऊँचे आदर्श को प्राप्त करने के लिए भौतिक सुखों का त्याग करना अनिवार्य बताया। आवश्यताओं की तृप्ति के बजाय इन्द्रिय दमन ही उत्तम मार्ग है। भौतिक सुख क्षणिक और अस्थायी है। स्थायी आनन्द की प्राप्ति के लिए चिन्तन के मार्ग मे सबसे अधिक बड़ी बाधा चिन्ता की है। चिन्ता सांसारिक उलझनों से होती है अतः व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति के लिए मोक्ष के बन्धन काटने पड़ेगे। इन्द्रिय दमन, संयम और चिन्तन जीवन की पूर्णता के लिए अनिवार्य है।

ऋषियों ने स्वयं अपने जीवन में अध्यात्म के मूल सिद्धान्तों को चरितार्थ किया और चिन्तन द्वारा ईश्वर की प्राप्ति और परमानन्द के साधनों की खोज की। उनके बताये गये सिद्धान्त तथा उनके द्वारा निर्धारित की गयी समाजिक व्यवस्था को आज भी सामाजिक विरासत के रूप में संजोये है। मनु, याज्ञवल्क्य, बोधायन आदि ऋषियों द्वारा प्रतिपादित मार्ग ही आज भी सर्वश्रेष्ठ जीवन दर्शन हैं। अध्यात्म तो भारतीय समाज के लिए इतना महत्वपूर्ण है कि जनजीवन मे व्याप्त हो गया है और अध्यात्म के सिद्धान्त भारत के छोटे–छोटे बालक जानते हैं चाहे व्यवहारिक जीवन में वे उनका पालन अब भले ही न कर रहें हों।

सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सभी प्रकार की सामाजिक क्रियाओं, विधियों और परम्पराओं का आधार धर्म है। भाग्य, कर्म तथा पुनर्जन्म जैसे सिद्धान्तों ने समाज व्यवस्था को नियंत्रित किया है। आत्मा की अमरता और पूर्व जन्म के कर्मो पर

आधारित अगले जन्म में विश्वास भारतीय संस्कृति का विशेष लक्षण है। कर्म के आधार पर मिलने वाला स्वर्ग और नरक ही भारतीय सामाजिक जीवन का मार्ग दर्शन करता है। आर्थिक और राजनीतिक जीवन भी धर्म पर आधारित है। राज्याभिषेक के समय सभी तीर्थ स्थानो के जल की आवश्यकता पड़ती थी। राज्याभिषेक करने वाला कोई धर्म प्रधान गुरू ही होता था। राजसूय और अश्वमेध यज्ञ एक सम्राट की राजनीतिक प्रभुता का द्योतक है। आर्थिक उत्पादन में भी धर्म की प्रधानता देखने को मिलती है। प्रत्येक आर्थिक अनुष्ठान का प्रारम्भ धार्मिक अनुष्ठान से ही होता है। यदि यह कहा जाय कि भारतीय जनजीवन और संस्कृति धर्म से ओतप्रोत है तो कोई अत्युक्ति न होगी। यह हिन्दू धर्म की व्यापकत्व और उदारता है कि उसने सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को आच्छादित कर लिया।

भारतीय संस्कृति व्यक्ति प्रधान न होकर समाज प्रधान है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति की कल्पना की भावना इस संस्कृति का आधार है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना से प्रेरित होकर प्रत्येक भारतीय ने आत्म चिन्तन द्वारा लोक कल्याण का मार्ग स्वीकार किया "पंचशील" जैसे सिद्धान्तो के द्वारा सहअस्तित्व की भावना का प्रसार ही भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र रहा है। एक और अद्वेत दर्शन का सिद्धान्त भारतीय संस्कृति का मूल आधार है –ईशमय जगत की कल्पना उसका मर्म है। संसार में ब्रह्म अपने विविध रूपों में प्रकट हुआ है। दूसरी ओर जितने देवी–देवतओं की पूजा की व्यवस्था भारतीय संस्कृति में है उतनी संसार के किसी भी संस्कृति में नहीं हैं। तेंतीस करोड़ देवताओं की कल्पना वाला देश भारत ही है। प्रकृति के विभिन्न तत्वों को नियंत्रित करने वाले अलग–अलग देवता हैं। सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार के लिए पृथक देवता है। धर्म की हानि होने पर स्वयं भगवान ने अवतार लिया। भारतीय संस्कृति में समन्वय की भावना के कारण देवताओं की संख्या बढ़ती ही गयी।

नारी की पूजा शक्ति के रूप मे होने लगी। दुर्गा, चण्डी, लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियाँ भारतीय संस्कृति, ध्यान, पूजा, चिन्तन व मनन की एक समन्वित योजना प्रस्तुत करतीं हैं। एक ओर मूर्ति पूजा है तो दूसरी ओर निर्गुण ब्रम्ह की उपासना, एक ओर अद्वैत सिद्धान्त है तो दूसरी ओर बहुदेवतावाद, एक ओर पुरूष प्रधान समाज रचना की व्यवस्था है तो दूसरी ओर शक्ति उपासना की सिफारिश, एक ओर संसार को मायामय घोषित किया गया है तो दूसरी ओर सौ वर्ष तक का जीवन प्राप्त करने की ईश्वर से प्रार्थना की गयी है। जीवन का प्रारम्भ ब्रह्मचर्य से होता था, फिर गृहस्थ और फिर वानप्रस्थ और फिर अन्त में संन्यास की व्यवस्था है। भारतीय संस्कृति अद्वैत तथा बहुदेवतावाद का सुन्दर समन्वय है। आज अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से हमारी सांस्कृतिक आशायें शिथिल होकर विकृत हो रहीं है। "खाओ पियो और मौज करो" की सभ्यता ने हमारे शिक्षित युवकों तथा युवतियों को उच्द्खंल और संयमहीन बना दिया है। यौवनोमुख युवक–युवतियों में अश्लील भावना से कामोत्तेजना पैदा होती है। कामोत्तेजना आधुनिक सिनेमा से आचारिक मान्यताओं का गम्भीर उल्लंघन हो रहा है। आधुनिक सिनेमा संयमहीन आचार स्वच्छन्दता का नग्न प्रदर्शन है। भारतीय संस्कृति में अश्लील, कामोत्तेजक कथनों का स्थान नहीं है। हमारे यहां आचार क्षेत्र में इन्द्रियों और मन की असंयमता वर्जित है लेकिन चलचित्र उसी दिशा का प्रेरक है।

आज अशिक्षित और अर्द्धशिक्षित किशोरियां जो भारतीय शुद्ध वातावरण में उत्पन्न और पोषित हुई, अपेक्षाकृत ठीक है। वे ईश्वर और देवी–देवताओं की पूजा करतीं हैं, व्रत रखतीं हैं और विवाहित होकर अपनें धर्म का पालन करतीं हुई सभी गृह कार्यो को सम्पादित करतीं हैं। पाश्चात्य पद्धति का अनुकरण करने वालीं वैसा करने मे अपना अपमान समझती हैं। वे रात–दिन शरीर की साज–सज्जा, अलंकरण और सौन्दर्य प्रसाधन आदि से आकर्षक वेशभूषा बनवानें में व्यस्त रहतीं हैं। सार्वजनिक मार्गो पर उनका यह कृत्रिम रूप देखा

जा सकता है। उनमें लज्जा तथा मर्यादा कम होती जा रही है। पाश्चात्य देशों की तरह भोगवादी सभ्यताओं में स्त्रियों का स्वच्छन्द तथा मनमाने आचरण करने की छूट देना कठिन नहीं है।

भारतीय दर्शन में स्त्री के लिए पर पुरूष का दर्शन एवं स्पर्श वर्जित है। उसका तो एक पति ही देवता है और पतिव्रता धर्म का पालन करना एकमात्र कर्तव्य है। पति–पत्नी का आत्मीय सम्बन्ध है, उसमें विच्छेद की कुत्सित भोगवादी भावना नहीं है। भारतीय नारी दूसरे जन्म में भी अपने पति का ही वरण करने की शुभकामना करती है। यदि सच पूछा जाये तो हिन्दू धर्म की रक्षा भारतीय नारियों द्वारा हुई है। यदि उनकी धार्मिक चेतना शिथिल और क्षीण हो गयी तो हमारा हिन्दू समाज अवनति के गर्त में गिर कर चकनाचूर हो जायेगा। भारतीय संस्कृति में पत्नी नारी देवी है।

भास एवं हर्ष के उदयन रूपकों में प्राचीन भारतीय संस्कृति के सभी महत्वपूर्ण लक्षणों का वर्णन किया गया है। नारी पात्रों का सांस्कृतिक क्षेत्र में भूमिका के रूप में कुछ प्रमुख उदाहरण दृष्टव्य हैं।

वसवदत्ता पति की समृद्धि के लिए अपनीं भावनाओं को दबाकर भी त्याग करने से नहीं झिझकती। अपने प्रिय की प्रतिष्ठा के लिए वह यौगन्धरायण की योजना को स्वीकार करती है। कालावधि विरह ही नहीं, अपने एकाकी प्रेम मे वह साझे को भी स्वीकार कर लेती है। इस प्रकार उदयन के केवल आसक्ति न होकर वास्तविक प्रेम हो जाता है। अतिशय प्रेम त्याग एवं विरह की तड़प को भीतर ही सहते रहना वासवदत्ता के चरित्र का उत्कर्ष है।

प्रेमिका के साथ–साथ वह पति परायण भी है। उदयन के प्रति उसके हृदय में उदारता एवं सम्मान की भावना है। वासवदत्ता ही नहीं बल्कि उदयन का भी उससे प्रगाढ़ प्रेम है। यथा–[1]

श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां
कालक्रमेण पुनरागतदारभारः।
लावाणके हुतवहने हृताङ्गयष्टि
तां पद्मिनीं हिमहतामिव चिन्तयामि।।[2]

निम्न श्लोक में [3] उदयन के प्रति अनुराग को स्नेह कहना अधिक संगत प्रतीत नही होता। हो सकता है आज जैसा इन शब्दों का अर्थ भेद है वैसा भास के समय न रहा हो क्योंकि इसी प्रकार का असंगत या प्राचीन प्रयोग कालिदास ने भी किया है।[4] दुष्यन्त ने शकुन्तला से प्रेम किया था, स्नेह नहीं।

---

1. स्वप्न0 5/1, व्या0 गणेश दत्त शर्मा, प्रका0 रतिराम शास्त्री, प्र0 सं0 1968, सुभाष बाजार मेरठ।

2. स्वप्नवासवदत्तम्, पृ0 73,– उपर्युक्त श्लोक में कवि ने उदयन का चरित्र बड़ी ही मनोहारिता के साथ चित्रित किया है। पता चलता है कि नायक वासवदत्ता के प्रति कितना प्रगाढ़ प्रेम । रतिभाव। रखता है। वास्तव में उदयन का चरित्र एक धीर ललित नायक का चरित्र है। उसका चरित्र उदात्त है। यही नहीं आगे चलकर वासवदत्ता भी पद्मावती को कितना स्नेह करती है, इस बात का भी पता चलता है।

अपि च– रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां, लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः।
पूर्ताभिघातसरूजोऽप्यनुभूतदुःखः, पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि।। 5/2

3. स्वप्नवासवदत्तम् 5/5, पृ0 145, गंगा संस्कृत हिन्दी व्याख्योपेतम् व्या0 गंगासागर राय

स्मराम्यवन्त्यधिपतेः सुतायाः
प्रस्थान काले स्वजनं स्मरन्त्याः।
वाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं
स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्या।।

4. अभि0 शा0 4/17,

अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन
स्तवय्यस्याः कथमप्यबान्धवाकृतां स्नेह प्रवृत्ति च ताम्।
समान्य प्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः।।

वासवदत्ता का स्वजनों के प्रति अत्याधिक स्नेह एवं प्रेम था, फिर भी वह उन सबको छोड़कर उदयन के साथ चलीं आयीं थीं। यह इस पद्य से ज्ञात होता है कि अवन्तिका ने भी यही बात चौथे अंक मे कही थी–

" यद्यल्पः स्नेहः सा स्वजनं न परित्यजति। "

वासवदत्ता अपने पति के प्रति निष्कपट एवं गम्भीर प्रेम रखने वाली महिला है। उसकी ईर्ष्यालु का हेतु उसका पति के प्रति सच्चा एवं गम्भीर प्रेम ही है।

वह उदयन को प्रेम के बदले प्रेम प्रदान करती है। उन्हे प्राणों से अधिक मानती है। उनके बिना एक क्षण भी जीना नहीं चाहती।[1] उसके लिए महराज उदयन जीवन धन हैं, प्राण हैं, आराध्य देव हैं। देवता की तरह वह उनकी पूजा करती है।[2] उनके अस्वस्थ हो जाने पर चिन्तित हो उठती है।[3] उदयन ही उनके लिए प्राण हैं, जीवन धन हैं। सुन्दरी स्वभाव के अनुरूप यदि वह अपनें पति देव से रूठती है तो बाद मे इसके लिए उसका प्रीति प्रवण हृदय पश्चाताप करता है और वह उन्हें मनाने के लिए स्वयं उनके पास जाती है।[4] भला अब इससे अधिक भारतीय ललना से क्या आशा की जा सकती है। वस्तुतः वासवदत्ता भारतीय संस्कृति सभ्यता में पली ललनाओं की अग्रिम श्रेणी की सदस्या है।

कुल और पति की प्रतिष्ठा के प्रति समर्पित वासवदत्ता परिजनों के समक्ष राजा का अपमान नहीं करती है। पति की प्रतिष्ठा के लिए यौगन्धरायण की प्रत्येक बात मान लेती है। यहां तक कि उसे जब यह ज्ञात होता है कि रत्नावली के साथ उदयन का विवाह हो जाने पर उसका पति चक्रवर्ती सम्राट होगा तो वह प्रसन्नता और हर्ष के साथ अपने आभूषणों से सजाकर रत्नावली को उदयन के हाथों समर्पित कर देती है। इतना ही नही वह

---

1. रत्नावली, पृ0 158, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसी, वाराणसी, द्वि0 सं0, 1976, चतुर्थ अंक –

" तदहमप्यार्य पुत्रमेवानुगमिष्यामि "

2. 2. रत्नावली, प्रथम अंक, पृ0 36, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, प्रका0 मोतीलाल बनारसी दास, द्वि0 सं0, 1976.

" भर्त्रि, अर्चितो भगवन्प्रद्युम्नः तत्कुरूभर्तुरूचितं पूजासत्कारम् "

3. रत्ना0, तृतीय अंक, पृ0 96 " अहं खल्वस्वस्थशरीरस्य भर्तुः कुशलवृत्तान्तं ज्ञातुं गता त्वं चिरयसीत्युत्तम्यन्त्या देव्या तव सकाशं प्रेषितास्मि "।

4. रत्ना0, तृतीय अंक, पृ0 124, " तं तथा चरणनिपतितमार्यपुत्रमवधीर्यागच्छन्त्या।"

उदयन से निवेदन करती है कि रत्नावली को वह इतनी प्यार की मदिरा पिला दे कि वह अपने पितृकुल को भूल जाये।[1] इस प्रकार पति प्रेम की तृषा को दूर करने के लिए वह सपत्नीं जैसे विष का सहर्ष पान कर लेती है।

समीक्षा -

जीवन के विविध क्षेत्रों जैसे– राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक में नारी की महती भूमिका की चर्चा, प्रसंगानुसार भास एवं हर्ष ने की है।

राज परिवार के नर एवं नारियों के आर्थिक, वैभव, विलासिता एवं सम्पन्नता की स्थिति का अनेक स्थानों पर वर्णन किया गया है। यह सभी कथानक और अधिक प्रभावशाली बनाने में सहायक होते हैं। भास ने नारी पात्रों की विपन्नता की स्थिति का वर्णन कहीं नही किया है। जबकि हर्ष ने एक प्रसंग में रत्नावली की विपन्नता की स्थिति का भी किया है।

राजनीतिक क्षेत्र । शासन प्रबन्ध, सैन्य व्यवस्था आदि। में नारी की कोई अहं भूमिका उदयन रूपकों में दृष्टिगोचर नही होती है परन्तु राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शादी किये जाने का विवरण अवश्य मिलता है। उदयन रूपकों के नारी पात्र नर पात्रों के हाथों की कठपुतली प्रतीत होते हैं।

नारी पात्रों की सांस्कृतिक क्षेत्रों में भूमिका का अवलोकन प्राचीन भारतीय संस्कृति की विशालता एवं भव्यता परं प्रकाश डालता है। भास व हर्ष दोनों ने उदयन रूपकों में नारी को सम्मानजनक स्थान प्रदान नारी सौन्दर्य के वर्णन में किया गया है। अश्लील तथा कामोत्तेजक प्रसंग यत्र–तत्र हैं। आचार क्षेत्र में नारी पात्रों की मन की संयमता तथा इन्द्रियों का वशीकरण का अद्भुत वर्णन किया गया है। पतिव्रत धर्म का पालन करते हुए भारतीय नारी अपने पति एवं परिवार के लिए सर्वस्व न्योछावर कर देती है। कुत्सित भोगवादी भावना से परे

पति–पत्नी के मध्य आत्मीय सम्बन्ध हमारी भारतीय संस्कृति की अनुपम उपलब्धि है। नारी पात्रों की धर्म पर अटूट आस्था एवं विद्वानों के प्रति श्रद्धा रहती है।

---

1. रत्नावली, चतुर्थ अंक, पृ0 168, व्या0 डा0 रामशंकर त्रिपाठी, द्वि0 सं0 1976.

" तत्तथा कुरू यथा न बन्धुजनं स्मरति।"

उपसंहार

शोध निष्कर्षों का मूल्यांकन

शोध निष्कर्षों का संक्षिप्त विवरण

उपसंहार -

भारतीय संस्कृति की अनुपम निधि स्वरूप संस्कृत साहित्य सहृदय सामाजिकों की ज्ञान वृद्धि एवं रसानुभूति को दृष्टि मे रखते हुए अनेक काव्यात्मक विधाओं से विलसित है। काव्य प्रधानता श्रव्य तथा दृश्य काव्य की प्रभावशीलता अधिक होती है जिसमें पात्रों के साभिनय सरस संवादों से नाटकादि रूपों में सहृदयों को श्रव्य की अपेक्षा अधिक रम्य माना जाता है। जैसा कि कहा गया है–

"काव्येषु नाटकं रम्यम्"

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत नाटक की उदभव सम्बन्धी अनेक प्रमाणों पर आधृत परिकल्पनायें प्रस्तुत की किन्तु इसके क्रमिक विकास में अनके शब्दालियां लगीं, जिसमें भारतीय साहित्य की कलात्मक प्रतिभा, मौलिकता, स्वाभाविकता एवं सैद्धान्तिकता के साथ लगभग 700 सरल नाटक ग्रन्थों में अभिव्यक्त हुई। संस्कृत के समग्र नाट्य साहित्य में जो महत्व एवं गौरवपूर्ण स्थान भास व हर्ष को प्राप्त हुआ उतना अन्य किसी नाटककार को नहीं।

हर्ष का स्थान संस्कृत नाटककारों की श्रेणी में भास के बाद ही है किन्तु नाटकीयता तथा भाषा प्रौढ़ि आदि के लिए नहीं कही जा सकती।

समस्त सामाजिक सम्बन्धों के मूल मे प्राचीन काल से ही नारी की स्थिति एवं रचनात्मक भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही। नारी जीवन की वैयक्तिक एवं विविध सीमायें होतीं हुई भी पुरूषों की प्रत्येक परिस्थिति में पूरक होकर वह सांस्कृतिक और सुशिक्षित होकर कलात्मक क्रियाओं से कुशलता पूर्वक बुद्धि वैभव के सहारे सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक

अनेक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करती है। समग्र संस्कृत साहित्य मे महिमामण्डित नारी का सुन्दर चित्रण उसके नख शिख सौन्दर्य से लेकर अनेक आन्तरिक सद्‌गुणों के वर्णन से पूर्ण पाया जाता है तथापि संस्कृत रूपकों के नाटकादि में नारी की महत्वपूर्ण एवं अपरिहार्य भूमिका का निर्देश भरत आदि नाट्यशास्त्रियों ने भी किया है, जिसमें अनेक सामाजिक सम्बन्धों का निर्वाह करती हुई वह कलुजा नायिका के साथ उसकी सखियां, सेविकाओं, सम्बन्धिनी आदि विविध रूपों में अंकित हुई हैं।

संस्कृत नाट्य साहित्य में भास के पश्चात् कालिदास, हर्ष एवं भवभूति ही श्रेष्ठ नाटककार हैं जिन्होनें जीवन के केन्द्र बिन्दु में नारी का मुग्धा, कन्या, प्रेयसी, युवती, पतिव्रता पत्नी, मातृत्व एवं वात्सल्यमयी मां, लोकज्ञान समन्वित गुरू पत्नी आत्मीय, प्रेमभाव मय अन्तरंग सखी , सेवा परायण सेविकाओं आदि के रूप में हृदयावर्जक चित्रण नाटकीयता की दृष्टि से सोद्‌देश्य ही किया है। इसका प्रमुख आधार तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ पूर्ववर्ती साहित्यिक सामग्री । वैदिक साहित्य, पूराणेतिहास, रामायण, महाभारत, भास के नाटक आदि । हैं।

भास तथा हर्ष ने सामान्यतया सोद्‌देश्य नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर नारी पात्रों के अन्तर्गत उत्तम कोटि की नायिकाओं को अनेक गुणों से अभिमण्डित किया है। ये मृदुभाषणी, अदीर्घदोषा, संगीत शिल्प, कलादि निपुणता, अभिन्न रूप सौन्दर्य शालिनी, सरल, नम्रता, निराकार, कृतज्ञा, सुहृतप्रिया आदि रूप से सहृदय हृदय को आकर्षित करती है जिनमें सागरिका । रत्नावली । वासवदत्ता, प्रियदर्शिका । आरण्यका । वासवदत्ता, पद्‌मावती उल्लेखनीय हैं। दोनों नाटककारों के इन नायिकाओं के नाट्य शास्त्रीय आधार पर आंगिक, स्वाभाविक और अयत्नज अनेक भावगत अलंकारों को भी यथास्थान अभिव्यक्त किया है।

सागरिका एवं रत्नावली, प्रियदर्शिका, पद्मावती दोनों नाटककारों की नायिका, नृत्यादि ललित कलाओं में पारंगत नही प्रतीत होती है। रत्नावली जैसी मुग्धा व प्रियदर्शिका जैसी मुग्धा तथा पद्मावती जैसी अद्वितीय सुन्दर नायिकायें नायक को लुभाने वालीं भास तथा हर्ष के नाटकों में पायी जातीं हैं। नाटक में वर्णाश्रम धर्म के प्रति कहीं भी अरूचि अथवा अश्रद्धा प्रकट नहीं होती है। नायक उसके माता पिता और नायिका सभी को हिन्दू धर्म का पालन करते हुए चित्रित किया गया है और पूरे नाटक में आदि से अन्त तक हिन्दू धर्म का वातावरण छाया हुआ है।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से दोनों कवियों ने नायिका के अतिरिक्त सखियां सुसंगता, मनोरमा, कांञ्चनमाला, निपुणिका, चूतलतिका, वसुन्धरा, इन्दीवरिका, सांकृत्यायनी, तापसी, चेटी, पद्मिनिका, मधुरिका, कुञ्जरिका आदि नारी पात्रों की योजना की है।

वाग्विदग्धता, सरसता एवं आत्मीयता में भास पद्मिनिका मधुरिका, हर्ष की कांञ्चनमाला, सुसंगता आदि के साथ की जा सकती है। इसी प्रकार वयोवृद्धा नारियों में साकृत्यायनी, तापसी तथा परिव्राजकाओं में कौशिकी की कामन्दकी से करना सर्वथा समीचीन है।

दोनों कवियों के नारी पात्रों की अभिनेयता का आधार नाट्यशास्त्र में निर्दिष्ट सभी चारों तत्व हैं। कायिक और आहार्य अभिनय में दोनों नाटककारों के नारी पात्र निपुण हैं किन्तु वाचिक अभिनय में हर्ष नारी पात्रों के लम्बे सामायिक शैली सम्वाद अनुपयुक्त तथा भास के नारी पात्रों से कम प्रभावी प्रतीत होते हैं। सात्विक अभिनय में भास की अपेक्षा हर्ष के नारी पात्र अधिक सशक्त एवं सिद्धहस्त पाये जाते हैं।

सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन की दृष्टि से नारी पात्रों का विविध रूपों कन्या, युवती, पत्नी, माता आदि का चित्रण भास तथा हर्ष ने दोनो ने किया है। हर्ष के समान भास ने कन्या के विविध क्रियाओं का विस्तृत वर्णन न कर उसके शैशव के स्वरूप एवं बाल सुलभ चेष्टाओं का स्वाभाविक चित्रण किया है।

वैवाहिक दृष्टि से हर्ष की अपेक्षा भास के नाटकों में सुन्दर व मनोरम वर्णन किया गया है। भास की नायिका को स्वयं अपनीं सौत के लिए वरमाला को गूंथना पड़ता है फिर भी उसमें सौतिया डाह उत्पन्न नहीं होती। हर्ष की नायिकायें नाटक के अन्त में पूर्ण विवरण जानने के पश्चात् प्रेमिका को राजा के हाथों समर्पित करतीं हैं। भास तथा हर्ष की नायिकायें अपने–अपने नाटकों में सुन्दर प्रतीत होतीं है।

हर्ष की नायिका अपने नाटकों मे मदिरा पान करती हुई दिखायी गयी है जबकि भास की नायिकाओं में ऐसा कुछ देखने को नहीं मिलता।

दोनों महाकवियों ने अपने रूपकों में परिब्राजिका को सांसारिक विषयों मे लिप्त नायिका के प्रणय सम्बन्ध को सिद्ध करने के प्रयास में निरत चित्रित किया है। दोनां नाटककारों ने भारतीय संस्कृति के आदेशो पर आधृत व्यापक सामाजिक जीवन की दृष्टि से नारी पात्रों के विविध स्वरूपों एवं सम्बन्धो का तदानुरूप चित्रण किया है। इनकी वेशभूषा, खान–पान, दायित्वपूर्ण क्रियायें, गृहस्थ जीवन के देशकाल पात्र के अनुरूप लगभग एक सी दोनो कवियों के द्वारा चित्रित है, हां कहीं–कहीं ताल एवं वर्ण विषयगत भिन्नता के कारण इनके स्वरूप चित्रण मे पर्याप्त अन्तर भी पाया जाता है।

भास तथा हर्ष के नारी पात्र अपनें सुसंकृत आचार विचार, यज्ञ हवन, के अतिरिक्त यम नियम पूर्ण अनेक वृत्तों पुत्र पिण्ड पालन, प्रियानुप्रसादन, पतिविरह वृत आदि। धार्मिक अनेक अनुष्ठानों पूजा, बलि कर्म आदि में निरन्तर निरत अंकित हैं। हवन यज्ञ जैसे

धार्मिक अनुष्ठानों मे पुरूष के साथ इनका सहभागित्व अपरिहार्य रूप में था। हर्ष की भांति भास ने नारी पात्रों के विविध प्रकार के वृत्तों का उल्लेख नही किया है। इससे यह निष्कर्ष निकालना असमीचीन प्रतीत होता है कि हर्ष युगीन नारियां धार्मिक वृत आदि रखती थीं।

दोनो कवियों द्वारा नारी पात्रों का सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर कम या अधिक मात्रा में अनेक उत्सव, समारोहो, । कामदेव, महोत्सव, विवाहोत्सव, वसन्तोत्सव, नववधूगृहप्रवेशोत्सव, पानभूमिरचना, पुरूहूतोत्सव, तीर्थ यात्रा एवं तीर्थ स्थान आदि। मनोरंजन पूर्ण क्रियाओं । वनविहार, जल क्रीड़ा, संगीत एवं लोकनृत्य, चित्रकला, कथा आख्यायिका, क्रीड़ा पशुपक्षी आदि। का उल्लेख किया गया है।

जहां जगत के विविध भौतिक विषयों मे दोनों कवियों के नारी पात्रों को हम प्रभावी रूप से लिप्त पाते हैं, वहां गहन एवं सूक्ष्म आध्यात्मिक विषयों लोक परलोक, कर्मवाद, पुर्नजन्म, ब्रम्हईश्वर, मायादि के सम्बन्ध में उनका दार्शनिक दृष्टिकोण दृष्टव्य है।

दोनों कवियों की कृतियों मे चित्रित अनेक नारी पात्र परिष्कृत, सास्कृतिक प्रवृत्तियों से परिपूर्ण परिलक्षित होते है जिनमें समुन्नत समाज की प्रचलित व्रत, हवन यज्ञादि धार्मिक प्रवृत्तियों के साथ उच्च स्तरीय सांस्कृतिक समारोहों और मनोरंजन पूर्ण क्रियायें उल्लेखनीय हैं, जिनसें नारियां अपनीं अभिरूचि के अनुकूल गौण आवश्यकताओं की आपूर्ति कर समाज को सांस्कृतिक उत्कर्ष प्रदान करतीं थीं।

मानव समाज में रहकर नारियों ने अपनीं सुकुमार एवं सात्विक उत्प्रेरक भावनाओं को जहां कागज, प्रस्तर, धातु आदि के माध्यम से चित्रकला, मूर्तिकला के रूप में साकार किया, वहीं स्वराज के माध्यम से अमूर्त रूप मे अभिव्यक्त किया है। अतः दोनों नाटककारों के नारी पात्र पुरूषों की अपेक्षा ललित कलाओं मे अधिक असाधारण अभिरूचि और निपुणता रखते हैं। फलतः वे नृत्य, नाट्य काव्य, संगीत । गीत–काव्य। चित्रादि विविध ललित कलाओं को दक्षता

पूर्वक प्रकट करते है। रत्नावली जैसे नृत्य नाट्य गीत के साथ संगीत शिल्पादि में अद्वितीय चित्रित हैं। वहीं मौलिक काव्य रचना, चित्र एवं ललित कला विधान में सागरिका और पद्मावती कम नैपुण्य नहीं रखतीं।

इस दृष्टि से हर्ष के भी नारी पात्र ललित कलाओं में शून्य दृष्टिगत नहीं होते। उनकी रत्नावली, प्रियदर्शिका, वासवदत्ता जैसी नायिकाओं के अतिरिक्त सुसंगता, कांञ्चनमाला, इन्दीवरिका जैसे नायिका के सहचर नारी पात्र नृत्य गीत, संगीत चित्रकला आदि मे पूर्ण पारंगत पाये जाते हैं। दोनों कवियों के चित्रित नारी पात्रों की व्यक्त ललित कलायें वैयक्तित उपयोगिता के साथ उनकी अभिरूचि को पोषित करतीं थीं, जहां विरहावस्था में अपने प्रियतम की मिलन कामना लिये मनोंभावों की मार्मिक अभिव्यक्ति के माध्यम से साथ ही ये उनके मनोविनोद का भी सुन्दर साधन बनतीं हैं। यही इन ललित कलाओं की मानवीय संवेदना एवं सुकुमार मनोभावों की सुन्दरतम् अभिव्यक्ति की दिशा में इन नारी पात्रों के लिए चरण सार्थकता है।

अपने आसपास के परिवेश अथवा आवास के अतिरिक्त अपनें आपको वेशभूषा, साजसज्जा से अलंकृत रूप में पुरूषों की अपेक्षा नारियों मे कम नही पायी जाती है। भास तथा हर्ष के नारी पात्रों मे यह "सौन्दर्य प्रतिष्ठा" की प्रवृत्ति सर्वांग समन्वित है, जिसे विराट प्रकृति के माध्यम से देशकाल पात्रानुरूप विविध वस्त्र अलंकारों एवं सौन्दर्य प्रसाधनो से उन्होने अपने आपको अलंकृत रूप में प्रस्तुत किया है। नैसर्गिक सौन्दर्य का निरूपण करते हुये हर्ष ने नारी सौन्दर्य निरूपण में निसर्ग के उपमानों के आलोक में नख–शिख । सर्वांग । का सुन्दर चित्रण किया है, जबकि भास ने नारी पात्रों के वाह्य सौन्दर्य का चित्रण न कर उनके गुणगत अन्तः सौन्दर्य का प्रभावी रेखांकन किया है।

वेशभूषा के अर्न्तगत विविध । क्षौम, कौशेय, अंशुक, चीनांशुक, पत्रोण, दुकूल, चीर, वल्कल आदि। रंगबिरंगे सूती, रेशमी तथा ऊनी उत्कृष्ट कोटि के चिकने, कोमल, हल्के वस्त्रों के अतिरिक्त अनेक रत्न, मणि, मोती, स्वर्ण पुष्पादि से निर्मित आभूषण और विविध प्रकार के प्रसाधनों । कुमकुम, केशर, कस्तूरी, चन्दन, गौरोचन, अगरू, धूप, अंजन, आलत्तक, आदि। से इन दोनो महाकवियो के नारी पात्रों की साज–सज्जा दर्शनीय एवं मनमोहक प्रतीत होती है।

भास तथा हर्ष के सभी नारी पात्रों में रत्नावली और पद्मावती, आरण्यका भी निसर्ग कन्या रूप में प्रस्तुत हुई हैं जिनका नाना प्रकार के नैसर्गिक उपकरणों । पुष्पादि। से उसकी दो प्रिय सखियां मगलमय मण्डन कार्य सम्पन्न करतीं हैं, जबकि अन्य नायिकाओं प्रियदर्शिका, वासवदत्ता, पद्मावती आदि का रत्नाभरणमय श्रंगार प्रसाधनों को सेविकायें करतीं हैं।

हर्ष के कतिपय नारी पात्र प्रेयसी आरण्यका को देखकर प्रियदर्शिका का नायक पुरानी शराब को नई बोतल मे रखकर तथा अपनीं वियुक्तावस्था का रमणीय "लेबुल" लगाकर कवि ने कितना चमत्कार उत्पन्न किया है। इस प्रकार मदिरा पीकर भास का कोई भी नारी पात्र दृष्टिगत नही होता। हर्ष के कतिपय नारी पात्रों । नायिकाओं । का श्रंगार प्रसाधन उनके प्रेमी नायक वर्णित करते हैं। जबकि भास का कोई भी नारी पात्र भारतीय नारी की मर्यादा को समझता हुआ इस रूप में चित्रित नहीं हैं। दोनो महाकवियों के नारी पात्र उच्चस्तरीय सौन्दर्य प्रतिष्ठा की सहज प्रवृत्तिवश श्रृंगारिक सुरूचि से सम्पन्न पाये जाते हैं।

मानवीय मूल अन्तः प्रवृत्तियों में काम, क्रोध, सम्मोह, ईर्ष्या, असूया, द्वेष । मात्सयी।, अहंकार उन्माद, मूर्च्छा, भय, स्वप्न, स्मृति, परिकल्पना आदि पुरूषों के समान नारियों मे भी सामान्यतः विद्यमान रहती है। दोनो महाकवियों ने मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर नारी पात्रों के उपर्युक्त मनोगत विविध विकारों का यथार्थ चित्रण किया है। चिन्ता के कारण विशिष्ट नारी

पात्र की विभनस्कता, दारुणशोक के कारण बुद्धि एवं मन की विक्षिप्तता, रुक्षता । कठोरता। तथा चिड़चिड़ापन कभी–कभी उनकी आत्महत्या जैसी मनः प्रवृत्ति, अपराध बोध से मन की कातरता, विषम परिस्थितियों में मानसिक अन्तर्द्वन्द्व मनोरोग की मनोविज्ञान समस्त अभिव्यक्ति इन दोनों कवियों के द्वारा की गयी है।

कहीं–कहीं भास की अपेक्षा हर्ष ने सागरिका।रत्नावली। वासवदत्ता, प्रियदर्शिका। आरण्यका। आदि नारी पात्रों के मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर मनोविकारों को अधिक सशक्त रूप में व्यक्त करने मे सफल हुए हैं। इन नारी पात्रों के मनोविकारों को दृष्टि मे रखते हुए इन कवियो का यह मन्तव्य समीचीन है कि शरीर से स्वथ्य सुन्दर होने पर भी गृहणियां यदि प्रेम, सहिष्णुता, उदारता, सेवा परायणता जैसे सद्‌गुणों से समन्वित नहीं हैं तो मनोरोग से पीड़ित वामा युवतियां परिवार–समाज के लिए अभिशाप हो जातीं हैं। अतः नारी पात्रों के मनोविकारों को समझते हुए यथासम्भव मुक्त होने के लिए नारियों को प्रयास करना चाहिए जिससे वे समाज में सदैव मर्यादित एवं सुसंस्कृत सदा आचरण कर सकें।

दोनों कवियों के नारी पात्रों का आर्थिक जीवन भौतिक परिस्थितियों से सम्बद्ध, समाज, सापेक्ष आवश्यक आवश्यकताओं की सम्पूर्ति कर समृद्ध प्रतीत होती है। विविध प्रकार के सूती, ऊनी, रेशमी वस्त्र और कच्चे पक्के आवास की आपूर्ति होती है, वहां समाज में शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, प्रभृति गौण आवश्यकतायें भी उपेक्षित नही हुई हैं। खेत, खलिहान और कुटियों से लेकर राजप्रासादों तक धात्री, पुष्पलावी, उद्यान, पालिका, ताम्बूलवाहिनी, इन्दीवरिका, कांञ्चनमाला, चूतलतिका, निपुणिका प्रभृत इन नारी पात्रों को आजीविका निर्वाह हेतु आर्थिक क्रियाओं में तत्कालीन देख सकते हैं।

तत्कालीन राजकीय अन्तःपुरों की वासवदत्ता, प्रियदर्शिका जैसी रानियों में न केवल राजा के एकनिष्ठ प्रणय सिद्धकी प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति व्याप्त थी, वरन् राजा के

माध्यम से राज की एकमात्र प्रभुसत्ता को अपनीं मुट्ठी मे रखकर राजनीतिक क्षेत्र की एकछत्र स्वामिनी बनने की उत्कृष्ट अभिलाषा रहती थी। इन्दीवरिका, चूतलतिका, निपुणिका, परिचारिका, मधुकरिका से भी राजा एवं रानी से निरन्तर सम्पर्क रहने के कारण अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक वातावरण को प्रभावित करनें में महत्वपूर्ण भूमिका रहती थी।

दोनों महाकवियों ने नारी पात्रों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्षों को सर्वथा उजागर किया है। सम्भोग श्रृंगार की पृष्ठभूमि में जितना आलम्बन या उद्दीपन विभावों में, हर्ष ने नारी पात्रों को उत्तेजक रूप में उभारा है, उतना भास ने नहीं। हर्ष की नायिकायें केवल कामोपभोग की सामग्री से चित्रित हैं जबकि भास ने अपनीं नायिकाओं को नारी महिमा से मण्डित मर्यादित एवं पूज्य रूप में प्रस्तुत किया है। भास ने हर्ष की अपेक्षा अपनीं नायिकाओं को वासनामुक्त पावन प्रेम को अंकित करने में कम सफल हो सके हैं। इन दोनों कवियों ने नारी जाति की विभिन्न पदवी या आचार व्यवहार का पार्थक्य पाया जाता है, वह दोनों रचनाकारों की भिन्न रूचि का ही परिचायक हो सकता है।

सहायक ग्रन्थ सूची -

1. अथर्ववेद – सम्पादक श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल संस्करण 1948 वि0।
2. अभिषेक नाटक– भास विरचित सहित, प्रकाश – संस्कृत हिन्दी टीका।
3. अष्टाध्यायी।पाणिनी। सं0 ब्रम्हदत्त जिज्ञासु, वाराणसी सं0 1978.
4. अत्रि स्मृति– सं0 श्री राम शर्मा, बरेली, प्रथम सं0 बीस स्मृतियां भाग।
5. आपस्तम्ब गृह्य सूत्र, सं0 डा0 उमेश चन्द्र पाण्डेय, वाराणसी 1967.
6. आपस्तम्ब धर्मसूत्र ।हिन्दी टीका सहित। " " ". प्रथम सं0।
7. आश्वलायन गृह्य सूत्र ।नारायणी टीका सहित। एस0एन0शर्मा, वाराणसी, प्र0सं0।
8. आश्वलायन श्रोत सूत्र, चौ0 सं0सी0 वाराणसी, प्रथम सं0 ।
9. उर्वशी– डा0 रामधारी सिंह दिनकर, दिल्ली, प्र0 सं0 ।
10. उरूभंग– भास विरचित, प्रकाश संस्कृत हिन्दी टीका सहित।
11. ऋग्वेद– सायण भाष्य सहित, वैदिक संसोधन मण्डल, पूना प्र0सं0 स्वाध्याय मण्डल, तारा सं0 1940.
12. ऋग्वेद– सं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर।
13. ऋग्वेद– पर एक ऐतिहासिक दृष्टि–पं0 विश्वनाथ रेऊ, दिल्ली 1967.
14. ऋग्वैदिक भूगोल–डा0 कैलाश नाथ द्विवेदी, कानपुर, 1984.
15. कादम्बरी ।बाणभट्ट कृत। डा0 श्री निवास शास्त्री, मेरठ, 1964.
16. केनोपनिषद्– ।शंकर मा0 आनन्दगिरि व्याख्यायुक्ता। काशी।
17. कामसूत्र।वात्स्यायन। ।जय मंगला टीका सहित। देवदत्त शास्त्री, काशी, 1980.
18. कौषीताकि ब्राम्हण, सं0 मंगलदेव शास्त्री, वाराणसी, प्र0 सं0।
19. गौडवहो, वाक्पतिराज, काशी, प्र0 सं0।

20. गोमिल गृह्य सूत्र म0म0 मुकुन्द शर्मा, वाराणसी, सं0 2037 वि0।

21. गौतम धर्मसूत्र ।हरदत्तकृत मिताक्षरा वृत्ति युक्त। " " "

22. तैत्तिरीय संहिता ।सायण भाष्य सहित। काशी, प्र0 स0।

23. तैत्तिरीय ब्राम्हण आनन्दाश्रम, पूना, प्रथम संस्करण ।

24. तैत्तिरीयोपनिषद ।शंकर भाष्य। व्याख्याकार आनन्द गिरि, काशी, प्र0 सं0।

25. दशरूपक ।धनंजय कृत। सं0 डा0 भोला शंकर व्यास, वाराणसी, 1955.

26. दशरूपक ।धनंजय कृत। सं0 डा0 श्री निवास शास्त्री, मेरठ, 1969.

27. ध्वन्यालोक ।आनन्दवर्धन कृत। आचार्य विश्वेश्वर, वाराणसी, 1964.

28. धर्म शास्त्र का इतिहास ।पी0वी0काणेकृत। अनु0 अर्जुन चौवे काश्यप, लखनऊ, प्र0सं0।

29. नागानन्द नाटक, भावार्थ दीपिका, संस्कृत–हिन्दी टीका सहित।

30. नागानन्द नाटक, संसार चन्द्र, वाराणसी, पटना, संस्कृत–हिन्दी टीका सहित।

31. नाट्य शास्त्र "अभिनव गुप्त विवृति युक्त" ।गायकवाड ओ0सी0। सं0 बड़ौदा, 1926.

32. नाट्यशास्त्र भरतमुनि प्रणीत पं0 बटुकानाथ शर्मा पं0 बल्देव उपाध्याय, वाराणसी।

33. प्राचीन वेशभूषा, डा0 मोतीचन्द्र, पटना, दिल्ली, प्र0 सं0 ।

34. प्रतिज्ञा यौगन्धरायणम्–भास विरचित प्रकाश संस्कृत–हिन्दी टीका सहित।

35. प्रियदर्शिका– प्रकाश संस्कृत–हिन्दी टीका सहित।

36. प्रियदर्शिका– पं0 श्री रामचन्द्र मिश्र, द्वि0 सं0 वाराणसी।

37. प्रियदर्शिका– पं0 रामनाथ त्रिपाठी शास्त्री, प्र0 सं0 वाराणसी।

38. पाराशर स्मृति ।हिन्दी व्याख्या सहित। चौ0 सी0 वाराणसी, प्र0 सं0।

39. पारस्कर गृह्य सूत्र, चौ0 सं0सी0, वाराणसी, प्रथम संस्करण।

40. बोधायन धर्मसूत्र, गोविन्द स्वामी, ए0 चिन्न स्वामी, काशी, प्र0 सं0।

41. भासनाटक चक्र–सं0 बलदेव उपाध्याय, प्रकाश संस्कृत–हिन्दी व्याख्या।

42. मुण्डकोपनिषद् |शंकर भाष्य। सच्चिदानन्देड, वाराणसी, प्र0 सं0।

43. मानव गृह्य सूत्र, आनन्दाश्रम, पूना, प्र0 सं0।

44. मनुस्मृति– सं0 पं0 जनार्दन झा, कलकत्ता, प्र0 सं0।

45. महाभाष्य पतंजलि सं0 चारूदेव शास्त्री, दिल्ली, 1968.

46. निरूपण विद्यालंकार, मेरठ, 1964.

47. यजुर्वेद– सं0 श्री पाद दामोदर सातवलेकर स्वाध्याय मण्डल, सं0 1948 वि0।

48. याज्ञवल्वय स्मृति– सं0 डा0 उमेश चन्द्र पाण्डेय, वाराणसी सं0 2029 वि0।

49. रत्नावली– डा0 बैजनाथ पाण्डेय, संस्कृत टीका सहित, वाराणसी, पटना।

50. रत्नावली– डा0 रामशंकर त्रिपाठी, संस्कृत, हिन्दी टीका सहित, वाराणसी।

51. रत्नावली– पं0 परमेश्वरदीन पाण्डेय, "सुधा" संस्कृत–हिन्दी टीका सहित।

52. रत्नावली– डा0 राजेश्वर (राजू) शास्त्री मुसलगांवकर, किरणाली संस्कृत–हिन्दी टीका सहित।

53. वशिष्ठ धर्म सूत्र, पी0स0सी0 बनारस, प्र0 सं0।

54. वृहदारण्यकोपनिषद्, आचार्य श्री राम शर्मा, बरेली, प्र0 सं0।

55. शतपथ ब्राम्हण, सं0 वंशीधर शास्त्री, अच्युत ग्र0मा0 काशी सं0 1967.

56. श्रृगार प्रकाश ।भोजराज कृत। सिंह भूपालकृत व्याख्या, काशी, दिल्ली, 1979.

57. श्रृंगार प्रकाश ।भोज कृत। निर्णय सागर सं0, बम्बई प्रथम सं0।

58. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, निर्णय सागर प्रेस संस्करण बम्बई, 1929.

59. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0 2029 वि0।

60. श्रीमन्महाभारतम् |सं0रा0ना0 पाण्डेय। गीता प्रेस, गोरखपुर सं0 2039 वि0।

61. श्रीमद्भगवत्गीता– ।सं0रा0ना0 पाण्डेय। गीता प्रेस, गोरखपुर सं0 2039 वि0।

62. स्वप्नवासवदत्तम्– भासविरचित, प्रकाश संस्कृत–हिन्दी टीका सहित।

63. स्वप्नवासवदत्तम्– ।जयपाल विद्यालंकार। द्वि0 सं0 वाराणसी।

64. स्वप्नवासवदत्तम्– "चन्द्रकला" संस्कृत–हिन्दी टीका, श्री शेषराज शर्मा रेग्मी।

65. स्वप्नवासवदत्तम् प्रबोधनी, संस्कृत हिन्दी व्याख्या नोट सहित।

66. संस्कृत नाटक समीक्षा– डा0 इन्द्रपाल सिंह "इन्द्र" कानपुर 1977.

67. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास– डा0 कैलाशनाथ द्विवेदी, इटावा, 1971.

68. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा– पं0 चन्द्रशेखर पाण्डेय, कानपुर 1958.

69. संस्कार प्रकाश ।वीरमित्रोदयः।, मित्र–मित्र, काशी, प्र0 सं0।

70. सिद्धान्त कौमुदी ।बालमनोरमा तत्वबोधिनी टीका सहित। भट्टो जी दीक्षित, दिल्ली, 1965

71. संस्कार रत्नमाला, गोपीनाथ भट्ट चौ0 सं0 सी0 वाराणसी।

72. साहित्य दर्पण ।विश्वनाथकृत। सं0 दुर्गाप्रसाद द्विवेदी, बम्बई, 1915.

73. साहित्य दर्पण ।विश्वनाथकृत। डा0 सत्यवृत सिंह, वाराणसी, 1957.

74. साहित्य दर्पण– शालिग्राम शास्त्री, वाराणसी, पटना।

75. साहित्य दर्पण– शशिकला हिन्दी टीका सहित।

76. हनुमन्नाटक ।विभा टीका युक्त। चौ0 स0 सी0 वाराणसी, प्रथम संस्करण।

77. हर्ष चरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल, वाराणसी, पटना, 1964 प्र0 सं0।

78. हर्षचरित ।बाणभट्ट कृत। जगन्नाथ पाठक, वाराणसी, 1958.

79. भास के नाटक– सं0 मनोहर लाल, कानपुर, प्रथम संस्करण।

शोध पत्रिकायें -

1. अजस्रा (4/3 अंक) लखनऊ 1982.
2. ऋतम्भरा (स्वर्ण जयन्ती स्मारिका, वि० सि० सनातन धर्म कालेज) कानपुर 1971.
3. कादम्बिनी (दिसम्बर 85 अंक) नई दिल्ली – 1, 1985.
4. पारिजातम्, 2/4 अंक, कानपुर, 1983.
5. विश्वभारती पत्रिका, वर्ष 16 अंक 1, 1967 वर्ष 20/3–4 अंक, 1971.
6. विश्वभारती पत्रिका, वर्ष 16 अंक 1, 1967, वर्ष 24/3–4, शान्ति निकेतन, 1980.
7. सागरिका (21/1, 22/4 अंक) सागर वाराणसी, ि0 2040 वि0।
8. शोध प्रभा, वर्ष 6 अंक, 3–4, दिल्ली, 1982.
9. Journal of Bihar and Orissa research society, 1916.
10. Journal of royal asiatic society, calcutta 1909.
11. Journal of u.p. historical society, Val. XXII pt. I and II, 1949.